इन्द्र विद्यावाचस्पति

लेखक

सत्यकाम विद्यालंकार

अवनीन्द्र विद्यालंकार

प्रकाशक

आर्य केन्द्रीय प्रचार समिति

दिल्ली राज्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्र विद्यावाचस्पति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्र विद्यावाचस्पति

लेखक

सत्यकाम विद्यालंकार

अवनीन्द्र विद्यालंकार

प्रकाशक

आर्य केन्द्रीय प्रचार समिति

दिल्ली राज्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशकीय वक्तव्य

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की स्मृति में प्रकाशित यह पुस्तक प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है। पंडितजी के प्रशंसकों की चिर-अभिलाषा, अनेक बाधाओं के बावजूद, इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्ण होगी, ऐसी हमारी आशा है।

इस पुस्तक को पढ़कर यदि कुछ युवक अपने जीवन को उन्नत करने की ओर पं० इन्द्रजी के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा ले सकेंगे तो हम इस पुस्तक को प्रकाशित करने का श्रम और व्यय सफल समझेंगे।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने में आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले महानुभावों व संस्थाओं का हम विशेष रूप से धन्यवाद करना चाहते हैं। हम आर्य सार्वदेशिक सभा दिल्ली और गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त साढ़े तीन - साढ़े तीन हज़ार रुपये की सहायता प्रदान की है। इन दोनों संस्थाओं को उन्नत तथा गौरवान्वित करने में पं० इन्द्रजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिए दोनों संस्थाओं ने यह सहायता करके जहां अपने कर्तव्य का पालन किया है, वहां एक उपयोगी सामाजिक सेवा भी की है।

पुस्तक का लेखन तथा सम्पादन श्री सत्यकाम विद्यालंकार और श्री अवनीन्द्र विद्यालंकार ने बड़ी योग्यता और लगन से किया है और इसके लिए हम उनके आभारी हैं। क्योंकि पुस्तक का बहुत बड़ा आधार पं० इन्द्रजी के अपने लेख और डायरियां हैं, इसलिए कहीं-कहीं उद्धृत उनकी सम्मतियों के लिए उन्हींका उत्तरदायित्व समझा जाना चाहिये।

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती जी के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने पंडितजी की डायरियां अवलोकनार्थ प्रदान कीं, जिनके बिना इस पुस्तक का लेखन व प्रकाशन संभव नहीं था।

स्व० पं० सत्यदेव विद्यालंकार तथा पं० सोमदत्त विद्यालंकार के प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व इस दिशा में बहुत परिश्रम किया था, यद्यपि उसका उपयोग नहीं हो सका।

समिति के समस्त सहयोगी सदस्यों का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने इस कार्य में समय व परामर्श प्रदान कर इसे सफल बनाने में हाथ बंटाया है।

—रामनाथ सहगल
—मनोहर विद्यालंकार
संयोजक, इन्द्र विद्यावाचस्पति
स्मारक समिति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तावना

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की स्मृति को स्थायी बनाने के उद्देश्य से लिखी गयी इस पुस्तक के लेखन एवं सम्पादन का कार्य जब मुझे सौंपा गया तब इसके स्वरूप की कल्पना विभिन्न संस्मरणों और श्रद्धांजलियों के संकलन तक सीमित थी। मैंने इसे जीवनी का रूप देने का प्रस्ताव रखा, जो श्री इन्द्र स्मारक समिति ने स्वीकार कर लिया। अतः यह पुस्तक अब श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की जीवन-यात्रा के रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

मैं अपनी अन्य व्यस्तताओं के कारण इस कार्य को शायद स्वीकार न करता यदि मुझे यह मालूम न होता कि श्री इन्द्रजी के जीवन की घटनाओं एवं उनके विचारों का प्रामाणिक विवरण उनकी अपनी ही डायरियों में पूर्णतः निबद्ध है और वे सब मुझे श्री इन्द्रजी की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती से प्राप्त हो जायेंगी।

श्री इन्द्रजी ने अध्ययन काल १९१० से मृत्यु पर्यन्त १९७० तक की डायरियाँ सुरक्षित रखी थीं।

यह पुस्तक मुख्यतः उन डायरियों की सहायता से ही लिखी गयी है। इसलिए इसकी प्रामाणिकता में कभी सन्देह हो ही नहीं सकता।

उन डायरयों के पारायण के बाद मेरे सामने श्री इन्द्रजी के चरित्र की जो विशेषताएँ प्रगट हुईं वे असाधारण थीं। उनके अत्यन्त निकट रहते हुए भी मैं उन्हें वैसा असाधारण गुण सम्पन्न व्यक्ति न समझता था जैसा मैंने उन्हें उनकी स्वलिखित डायरियों के माध्यम से पाया।

पहले मैं यही मानता था कि वे प्रखर प्रतिभाशाली लेखक और विचारक थे। उनके अन्य गुणों पर भी मेरी श्रद्धा थी, किन्तु उन्हें मैं केवल उनके तेजस्वी पिता की विरासत से ही उपलब्ध माना करता था। मैं यह स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि उनके उपार्जन में श्री इन्द्रजी ने अखण्ड साधना की थी, निरन्तर योजनाबद्ध अभ्यास किया था।

उनकी सब डायरियों का कई बार पारायण करने के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि श्री इन्द्रजी को अपने महान् पिता से प्रेरणा अवश्य मिली थी किन्तु उन्होंने अपनी साधना और सतत अभ्यास से स्वयं अपने ऊँचे चरित्र का निर्माण किया था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बचपन में ही उन्होंने अपने देश, धर्म, और जाति की सेवा का व्रत ले लिया था। इस सेवा व्रत से वे कभी विचलित नहीं हुए। अन्तिम श्वास तक वे यही कहते रहे—'तावज्जीवितुमिच्छामि यावच्छक्नोमि सेवितुम्'। अर्थात् मैं तभी तक जीना चाहता हूँ जब तक यह शरीर सेवा योग्य रहे।

इस अखण्ड सेवा व्रत को निभाने के लिए उन्होंने गहन तपश्चर्या की थी। उनकी जीवन कथा इसी अटूट तपस्या की कहानी है।

इस तपस्या का रूप आत्मपीड़न नहीं था, शरीर को अनावश्यक कष्ट देना भी नहीं था। उसकी अभिव्यक्ति हुई थी उनकी सहज सादगी में, मितव्ययिता में और विवेक-पूर्वक संकल्प द्वारा सब संसारी प्रलोभनों के परित्याग में।

इस असाधारण त्याग-तपस्या ने ही उन्हें आत्माभिमानपूर्ण जीवन बिताने की योग्यता दी थी। अपनी गौरव-भावना को उन्होंने कभी अपमानित नहीं होने दिया। बड़े से बड़े पद या धन के लोभ में उन्होंने आत्मा की आवाज नहीं दबायी।

उनका सम्पूर्ण जीवन ऐसे आत्मगौरवपूर्ण वृत्तों से भरा हुआ है। पाठक उसे अगले पृष्ठों में पढ़ेंगे ही। इसलिए यहाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं। फिर भी एक घटना, जो अगले पृष्ठों में नहीं आ सकी, सदा स्मरणीय रहेगी।

गुरुकुल का शिक्षाकाल समाप्त करके आप जब जालन्धर गये तो आपके मामा लाल वृन्दावनजी ने कहा : 'तुम्हारे पिता (स्वामी श्रद्धानन्द) तो अपनी कोठी दान में दे गये। तुम्हारे रहने का ठिकाना भी न छोड़ा-मगर, हम तुम्हें कुछ जमीन दे देते हैं। वहीं कुटिया भी बना देते हैं, पास ही गाय-भैंस भी बाँध देंगे। तुम्हारे खाने-पीने का सहारा हो जायेगा।'

श्री इन्द्रजी ने बड़ी नम्रता से किन्तु दृढ़ता से जवाब दिया था : 'मामाजी आप हमारे खाने-पीने के सहारे की चिन्ता न करें। मैं कोई भी सहारा ढूढ़ूँ—ऐसा मेरा स्वभाव ही नहीं है। कुटिया भी न बनवायें। कुटिया न होगी, वृक्ष की छाया तले ही रह लूँगा मैं। मगर, किसी सहारे की खोज नहीं करूँगा। अपने परिश्रम पर मुझे भरोसा है। पिताजी ने कोठी दान में दे दी—अच्छा ही किया। मुझे आत्मनिर्भर होने के लिए परिश्रम करने का अवसर दे दिया।'

आत्मगौरव की भावना उन्हें अपने वन्दनीय पिता स्वामी श्रद्धानन्दजी से मिली थी। इन्द्रजी ने लिखा है : 'मेरे जीवन की प्रत्येक घटना की पृष्ठ भूमि में मेरे पूज्य पिताजी विद्यमान रहे।" यह बात अक्षरशः सत्य है। विचित्र बात यह है कि चरित्र की दृष्टि से स्वामीजी की घनी छाया में ही रहते हुए भी वह अपने विचारों में सदा सर्वथा स्वतन्त्र रहे।

एक बार हिन्दू महासभा के सदस्य बनने के सम्बन्ध में आपका मन सन्देहशील हुआ तो आपने स्वामीजी से कहा : 'मैं हिन्दू महासभा के विधान और उसकी विधि से पूर्णतः सहमत नहीं हूँ—कुछ विरोध भी है—किन्तु मैं आपका विरोध भी नहीं चाहता।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आपकी आज्ञा का पालन करना मैं अपना पहला धर्म मानता हूँ । अब आप जो भी कहेंगे वही मैं करूँगा ।'

स्वामीजी ने कहा : 'इन्द्र । तुम्हें एक भूल हुई है । मेरी आज्ञा का पालन करना तुम्हारा पहला धर्म नहीं है । पहला धर्म है अपने अन्त:करण की आज्ञा का पालन करना । अन्त:करण की आवाज सुनो और उसकी बात मानो, वैसा ही आचरण करो, यही पहला धर्म है ।'

इस बात पर टिप्पणी करते हुए इन्द्रजी ने लिखा है :—'मैं कितना भाग्यवान् हूँ कि मुझे इतने महान् और इतने उदार पिता मिले ।'

इससे भी अधिक श्री इन्द्रजी का सौभाग्य था कि उन्हें अपने परम पूज्य पिता स्वामी श्रद्धानन्द का अटूट विश्वास, प्रेम और आदर प्राप्त था । इन्द्रजी के स्नातक होने के बाद स्वामीजी अपने प्रत्येक निश्चय से पूर्व इन्द्रजी से परामर्श कर लेते थे । यह बात उनके पत्रों से स्पष्ट होती है । इन्द्रजी के नाम लिखे स्वामीजी के कुछ पत्र मैंने पुस्तक में उद्धृत किये हैं । उन्हीं की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

"जिस दिन के लिए मैं रातों रात जागकर परमेश्वर से प्रार्थना करता, जिसके लिए मैं संसार के असह्य से असह्य दुखों को सहन करता रहा वह दिन आज मैंने देखा ।" (यह पत्र तब लिखा गया था,—जब इन्द्रजी ने आजीवन गुरुकुल सेवा का व्रत लिया था)

"इस समय तुम ही मेरी आशाओं के केन्द्र हो । सब सम्मतियाँ तुम से ही लेता हूँ ।"

"तुम मेरे ज्येष्ठ शिष्य हो । मेरे सब शिष्यों के ज्येष्ठ भ्राता तुम ही हो ।"

"मेरे सबसे आज्ञा पालक शिष्य तुम रहे हो । इसलिए तुम्हारे साथ प्रेम का अटूट सम्बन्ध है ।"

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के हृदय में इन्द्रजी के प्रति कितना अगाध प्रेम था और इन्द्र की सम्मतियों का वे कितना आदर करते थे, उपरिलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट है ।

स्वामीजी की ही यह महानता थी कि उन्होंने इन्द्रजी को अपनी आज्ञाओं में बाँधा नहीं, बल्कि अपने अन्त:करण की आवाज पर चलने को स्वतन्त्र रखा ।

इन्द्रजी ने भी अपने अन्त:करण की बात को ही धर्म मानकर सब संसारी प्रलोभनों का परित्याग करते हुए जिस प्रकार त्याग और तपस्या का कर्तव्यनिष्ठ—जीवन बिताया वह अनुकरणीय आदर्श था । उस आदर्शपूर्ण जीवन यात्रा को लेखबद्ध करने के लिए ही इस पुस्तक की रचना हुई है ।

त्यागी व्यक्ति को सादगी और गरीबी का जीवन बिताना ही पड़ता है । इन्द्रजी ने प्रथम दिन से ही गरीबी को अपने गले लगाया और सादगी को अपना सदा साथ रहनेवाला साथी बनाया ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गरीबी का यह हाल था कि जब पत्नी विद्या का स्वर्गवास हुआ तो दाह-संस्कार का व्यय भार उठाने का नकद पैसा भी हाथ में नहीं था ।

कार्यालय के मुंशी वृजनारायण को गहनों की पोटली देते हुए आपने कहा था : 'जाओ, संस्कार का पूरा खर्च इसे बेंचकर पूरा कर लो ।'

सादगी की यह सीमा थी कि कभी रेशम का कुर्ता भी नहीं पहना । एक बार लड़की ने खादी भण्डार से रेशमी कुर्ता खरीद दिया था । वह रेशमी कुर्ता उम्र भर उसी प्रकार अल्मारी में बन्द पड़ा रहा ।

अपने संकल्पों में इतनी दृढ़ता रखने के लिए जिस चरित्र की आवश्यकता होती है वह साधारण व्यक्ति की क्षमता से बाहर होती है । इतने दृढ़व्रती थे आप कि एक बार जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने के बाद कभी एक कदम भी टस से मस न हुए । उस लक्ष्य की पूर्ति में सारा जीवन सर्मपित कर दिया । चरित्र की ऐसी दृढ़ता के स्वामी होते हुए भी आप और दुराग्रही नहीं थे । स्वाभाव से ही आप भावुक नहीं बल्कि विवेकशील और सन्तुलित मस्तिष्क के या ठण्डे दिमाग के आदमी थे । कभी-कभी तो यह ठण्डक इतनी ज्यादा हो जाती थी कि आस-पास वाले आपको भावावेश शून्य व्यक्ति समझने लगते थे ।

सच तो यह है कि चिन्तन और भावना का विचित्र सन्तुलन था आपके चरित्र में । बड़े से बड़ा त्याग भी आप भावाभिभूत होकर नहीं बल्कि कर्तव्य पालन की भावना से कर जाते थे ।

बचपन में ही आपने डायरी में लिखा था :

"मैंने खूब सोचा है और जाना है कि मातृभूमि कई पुत्रों का बलिदान चाहती है । बलिदान यह नहीं कि क्षणभर जीकर मर जाना—अपितु अपना दीर्घ जीवन पूर्णतः मातृ-भूमि को अर्पित कर देना ।"

यह पुस्तक ऐसे ही सर्मपित जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से भरी है । घटनाएँ सभी प्रामाणिक हैं, क्योंकि उनका आधार श्री इन्द्रजी के हाथों लिखे डायरयिों के पन्ने हैं । उनकी डायरियों से उनके अनगिन गुणों पर प्रकाश पड़ता है । उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि इतना दृढ़वती, संयमी, सहिष्णु, स्थितप्रज्ञ, ईश्वर विश्वासी, राष्ट्र भक्त, जाति सेवक व्यक्ति किसी दिन हमारे बीच में था और हम उसका सामाजिक दृष्टि से समुचित आदर न कर सके ।

इन्द्रजी का व्यक्तित्व ही आदर्श और अनुकरणीय नहीं था, उनके विचार भी ऊँचे और मार्ग-दर्शक थे । और जिस निर्भीकता से उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये थे वह भी अद्वितीय थी ।

उनमें से कुछ लेखांश रूप में मैंने इस पुस्तक में दिये हैं । मैंने इनका विशेष चुनाव नहीं किया, बल्कि अर्जुन की फाइल में से जो लेखांश आसानी से मिल गये उन्हीं में से कुछ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंश ले लिये हैं । आज भी उनके पढ़ने से इन्द्रजी की ओजस्विनी लेखनी का परिचय मिलता है । उनमें कही गयी बातें आज भी सजीव मालूम होती हैं । उनके कुछ शीर्षक हैं—

'राष्ट्रीय नेताओं से निवेदन : शासन करो या गद्दी छोड़ दो'

'रक्त की नदी'

'पाकिस्तान पर कोई समझौता नहीं'

'विभाजन का पागलपन'

'क्या पाकिस्तान भारत पर आक्रमण कर सकता है'

'कांग्रेस की मौलिक भूल'

'कश्मीर पर संकट'

'भारतवासियों को सशस्त्र बनाओ'

'राजदण्ड हाथ में लो'

'नेहरूजी से निवेदन'

'दब्बू नीति से काम नहीं चलेगा'

'विशुद्ध राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता'

'हिन्दुओं के साथ अन्याय'

'भारतीय संस्कृति की रक्षा'

ये लेखांश यद्यपि अर्जुन के अग्रलेख के रूप में लिखे गये सम्पादकीय लेखों के अंश मात्र हैं—किन्तु इनका ऐतिहासिक महत्त्व है । इनमें कही गयी बातें आज भी उसी रूप में कही जा सकती हैं ।

उन्हें पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्रजी कोरे साहित्यिक, चिन्तक या पत्रकार नहीं थे बल्कि राष्ट्र के मार्ग-दर्शक भी थे । उनके विचारों से उस समय लोकमत बनता था और जनता में विवेक जागृत होता था । देश में राष्ट्रीय जागृति पैदा करने में उनके लेखों ने अद्वितीय कार्य किया था ।

अच्छा तो यह होता कि उन लेखों को सर्वांश रूप में अलग से प्राकाशित किया जाता । ये लेख न केवल मार्ग दर्शन कर सकते हैं बल्कि भारतीय पत्रकारिता में विद्यार्थियों के सामने शैली की दृष्टि से भी सदैव अनुकरणीय रह सकते हैं ।

अच्छा यह भी होता कि इन्द्रजी कुछ वर्ष और जीवित रहते और अपने अनुभवपूर्ण महान् जीवन के संस्मरण अपनी कलम से लिखते । आत्म-संस्मरण लिखने का संकल्प उनके मन में था भी । मगर, दैव को यह अभीष्ट न था । अकस्मात् ही उनका रोग असाध्य बन गया और वे अपना काम अधूरा छोड़ गये ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके बाद इन अनमोल डायरियों में सुरक्षित सामग्री का उपयोग होना ही चाहिये था। उस उपयोग का प्रारम्भ मेरे द्वारा हुआ, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

यह कार्य कभी संपन्न न होता यदि श्री अवनीन्द्र विद्यालंकार मुझे इस कार्य में पूरी सहायता न देते। इसे सम्पन्न करने का मुख्य श्रेय उन्हीं को है। अधिकांश लेखन उन्होंने ही किया है। निर्देशन चयन और सम्पादन अवश्य मेरे द्वारा हुआ—किन्तु लेखन में उनका ही भाग अधिक है। अतः मैं श्री अवनीन्द्रजी को उनके अथक परिश्रम के लिए हार्दिक धन्यवाद दूँगा।

यदि श्री इन्द्रजी की पत्नी श्रीमती चन्द्रवतीजी का स्नेहपूर्ण सहयोग न मिलता और श्री प्रकाशवीर शास्त्री की सतत् प्रेरणा न रहती तो भी यह कार्य पूरा नहीं हो सकता था।

वाराणसी के ज्ञानमण्डल प्रेस ने बड़ी तत्परता से मुद्रण कार्य पूरा किया है अतः मैं उनका भी आभार मानता हूँ। नवनीत के उप संपादक श्री गिरिजाशंकर त्रिवेदी ने प्रूफ संशोधन में जो सहायता की है वह भी उल्लेख योग्य है।

—सत्यकाम विद्यालंकार

संपादक **'नवनीत'**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषयानुक्रमणिका

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी के पिता श्री आचार्य महात्मा मुन्शीरामजी संन्यास ग्रहण के बाद स्वामी श्रद्धानन्द

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक, आर्य समाज के अग्रणी नेता,

हिन्दू-जाति के क्रान्तिकारी सुधारक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
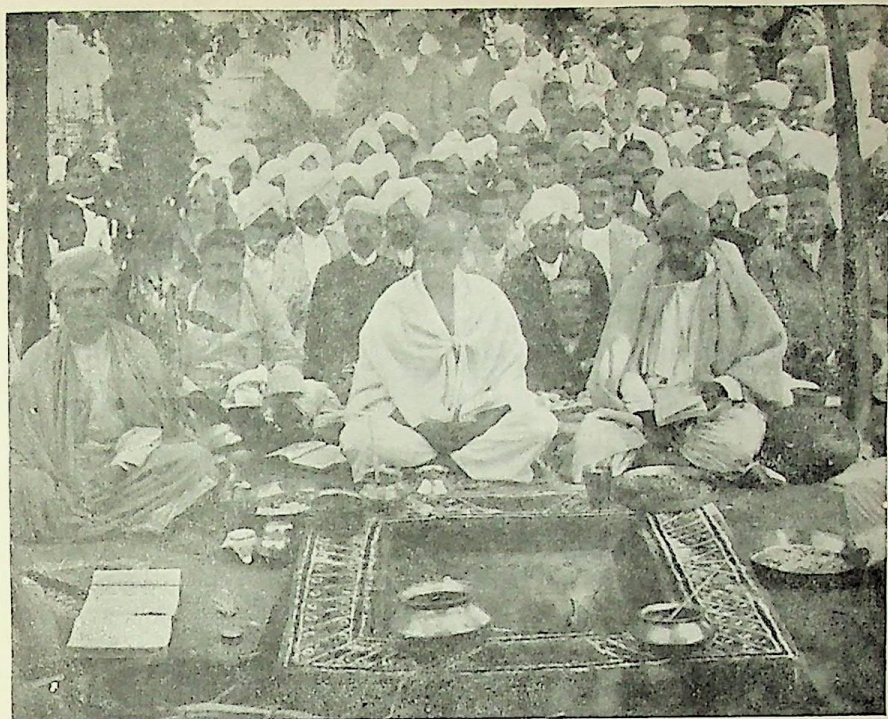
गुरुकुल की स्थापना के लगभग १४ वर्ष बाद महात्मा मुन्शीरामजी ने संन्यास ग्रहण किया। यह चित्र संन्यास-आश्रम में प्रवेश की दीक्षा का है। आपके एक ओर स्वामी सत्यानन्दजी, दूसरी ओर श्री आचार्य गंगादत्तजी बैठे हैं।

श्री इन्द्रजी की बहन श्रीमती वेदकुमारीजी (बायें से दूसरी) और श्री इन्द्रजी के पुत्र श्री जयन्त (बायें से तीसरे) सत्याग्रह के बाद जेल जाते समय।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
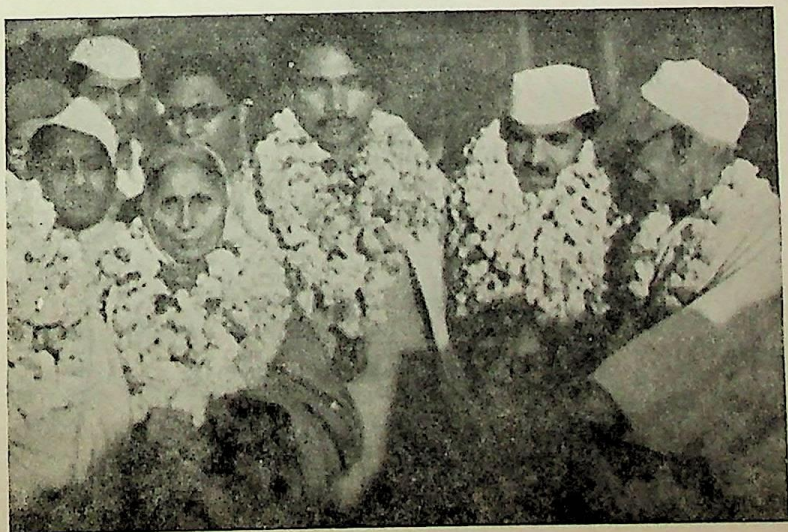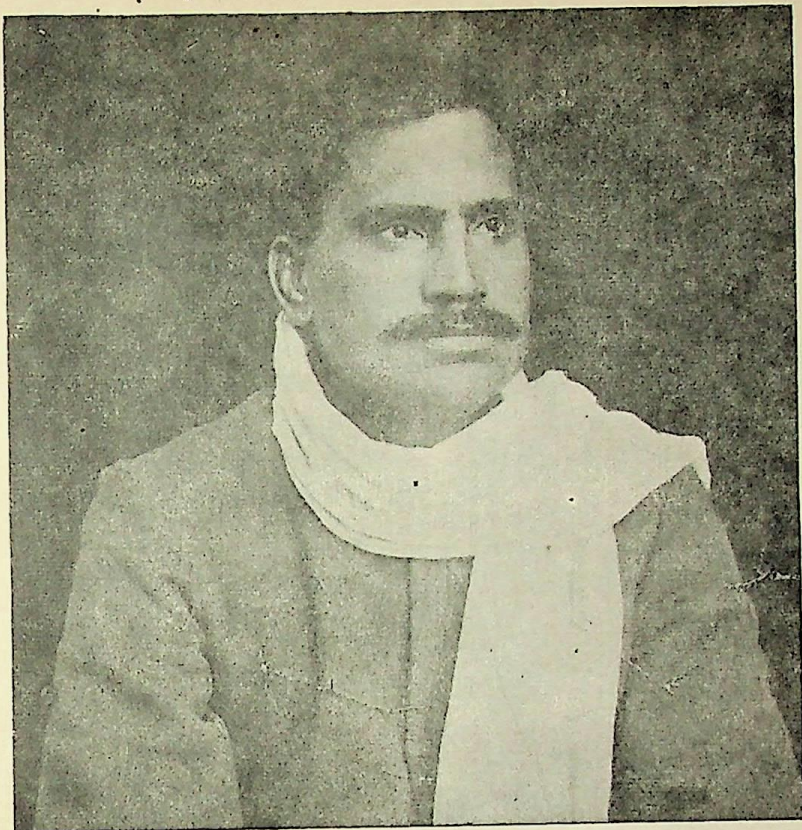
▲ श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति पूर्ण युवावस्था में । अपूर्व संयम और नियमित आहार-व्यवहार से आपने स्वास्थ्य बनाये रखा, यद्यपि बचपन में ही आप एक फेफड़े से वंचित हो गये थे ।

◄ श्रीमती चन्द्रवतीजी । आपकी अथक सेवा से ही श्री इन्द्रजी सार्वजनिक सेवा के दुर्वह भार को सफलतापूर्वक उठाने में सफल हुए ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कल्याण कामना—श्रीइन्द्रजी की हस्तलिपि में

राज्य परिषद् सदस्य

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु

मा कश्चिद् दुःखभाग्

भवेत्

परमात्मा परिवार के सब जनों को सुखी नीरोग और कल्याणमार्ग का यात्री बनादें।

इन्द्र

८.११.५४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कुल कथा

भारतीय ही नहीं, अन्य देशों के लोग भी जात्याभिमान और कुलाभिमान को गर्व की वस्तु मानते हैं । फिर भारत तो संस्कारों का देश है । यहाँ पैतृक संस्कारों का जीवननिर्माण में महत्व बहुत अधिक माना जाता है ।

पंजाब के मालवा और माझा नाम के प्रदेश अपने शारीरिक बल और जोश के लिए प्रसिद्ध हैं ।

इस बलशाली और शक्तिशाली प्रदेश का जालंधर जिला एक भाग है । तलवन गांव श्री इन्द्र के पूर्वजों की जन्मभूमि है ।

जन्म-स्थान

इन्द्रजी के परदादा तलवन में आकर बसे थे । इससे पहले यह कुल कपूरथला और लाहौर में रहता था । मुंशीरामजी के दादा के एक भाई ला० कन्हैयालाल महाराजा रणजीतसिंह के यहां कपूरथला की ओर से वकील (एलची) थे । महाराजा रणजीतसिंह ला० कन्हैयालाल को बहुत मानते थे । उनके लिए एक शिवालय बनवा दिया था । उनके पिता भी लाहौर आकर उनके साथ रहने लगे ।

श्री इन्द्र के परदादा और ला० कन्हैयालाल के छोटे भाई ला० गुलाबराय कपूरथला में रानी हीरादेवी के मुखतार थे । महाराजा नौनिहालसिंह के सिंहासनासीन होने पर रानी अपने दोनों पुत्रों सहित जालंधर आ गई । इनके साथ ही लाला गुलाबराय भी जालंधर आ गए ।

जालंधर और तलवन के विषय में प्रसिद्ध लेखक सन्त निहालसिंह को भी गर्व है । जालंधरी हरेक जगह अपनी विशेषताओं और अपने गुणों से शीघ्र विख्यात हो जाता है । यह अपनी निडरता और निर्भीकता के लिए जग-प्रसिद्ध है । सतलुज नदी जहां किनारों को गिराती है, तटों को उखाड़ती है, वहाँ मरुभूमि को शस्य श्यामला भी बनाती है । उसी प्रकार यहाँ के निवासी कल्पना लोक में विचरने के साथ-साथ निर्माण और विध्वंस के काम में भी आगे रहते हैं ।

चरित्र नायक के परदादा लाला गुलाबराय अपने पिता के समान पराक्रमी थे । आप प्रतिदिन भगवद्गीता का पाठ करते थे । इसके बाद कबीर और भक्तों के शब्दों का पाठ करते । पाठ उच्च स्वर से करते थे । इससे राजा विक्रमसिंह की नींद खुल जाती ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इससे तंग आकर उन्होंने एक दिन कहा—"लाला जी ! क्या आप परमेश्वर का नाम मन में नहीं ले सकते ?" लालाजी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध थे। झटपट उन्होंने जवाब दिया, "मेरे मन में तो हरदम परमात्मा बसते हैं। परन्तु जो मूढ़ भजन की अमृत वेला में बेहोश सोये रहते हैं, उन्हें सचेत करने के लिए उच्च स्वर से भजन बोलता हूं।"

ऐसे निर्भय और ईश्वर-भक्त के सबसे बड़े पुत्र नानकचंद हुए। इन्होंने अपने दादा से शिव-पूजा सीखी और शिव-पूजा वे आजन्म करते रहे। आपको रामायण से भी प्रेम था। तलवन के शिवालय के प्रति श्री इन्द्र की भी ममता कम नहीं थी। इसके लिए आपने जमीन दान की थी।

ला० नानकचंद ने सरकारी नौकरी में बहुत पैसा कमाया। पुलिस की नौकरी थी। भाग्य के धनी थे। इनके सबसे छोटे पुत्र महात्मा मुंशीराम के नाम से विख्यात हुए। महात्मा मुंशीराम भी अपने पिता के समान रामायण के भक्त थे। वेद-उपनिषदों के साथ रामायण का भी वे प्रतिदिन पाठ करते थे। बाद में उन्होंने श्रद्धानन्द नाम से संन्यास लिया। यह नाम इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि पुराना नाम इसके सामने फीका पड़ गया।

जन्म-काल

इन्द्र विद्यावाचस्पति का जब जन्म हुआ तो उससे चार साल पहले देश में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। ऋषि दयानंद का निर्वाण हुए ६ साल बीत चुके थे। राजनीतिक चेतना देश में जग रही थी। नये ढंग के उद्योग-धंधे प्रारम्भ होने लगे थे। प्रतिष्ठा मान-सम्मान की सीढ़ी सरकारी नौकरी मानी जाने लगी थी। पढ़े-लिखे लोग शहरों में आ-आकर बसने लगे थे। गांवों का जीवन नीरस और सूखा होना प्रारम्भ हो गया था। शिक्षित वर्ग गांवों में रहना अच्छा नहीं मानता था।

चरित्र नायक के पिता वकील थे, एक माने हुए वकील। निर्भय निडर। यदि वे वकालत करते रहते, तो लाहौर चीफ कोर्ट के पहले जज होते, यह मानी हुई बात थी। लाहौर में जब बैरिस्टर नार्टन को वकील मुंशीराम ने हराया तो लाहौर के छात्र ही नहीं, सारा पंजाब एक नये अभिमान से भर गया। यह पहला मौका था जब एक भारतीय वकील ने एक अंग्रेज बैरिस्टर को अदालत में बौद्धिक पराजय दी थी। इस पराजय का फल यह हुआ कि बैरिस्टर नार्टन कांग्रेस के फिर अध्यक्ष नहीं बन सके। उनके नाम का प्रभाव माननेवालों का भी साहस छूट गया। इतने यशस्वी पिता के घर इन्द्रचन्द्र का जन्म ९ नवबंर १८८९ को हुआ। दैवयोग की बात देखिये कि इसके पांच दिन बाद ही भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ। दोनों के पिता एक साथ कालेज में पढ़ते थे और घनिष्ठ मित्र थे। दोनों कुश्ती लड़ते थे। इन पुत्रों के नाम ने उस सूत्र को और आगे बढ़ाया। यह पुरानी दोस्ती यहाँ तक बढ़ी कि जब इन्द्रजी ने अपना घर दिल्ली में बनवाया तो वह भी जवाहरनगर में बनवाया। यह योगायोग क्या अद्‌भुत नहीं है ?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तब आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी। ऋषि का निर्वाण होने के बाद आर्य-समाज का एक नयी शक्ति के रूप में पंजाब में उदय हुआ। महात्मा मुंशीराम के आर्य-समाज में प्रवेश करने के साथ आर्य समाज ने अनुभव किया कि एक नयी शक्ति ने उसमें प्रवेश किया। आर्य समाज का केन्द्र लाहौर से हटकर, जालंधर बनने लगा। देश के राजनीतिक जीवन के लिए जैसे यह परिवर्तन काल था, उसी प्रकार सामाजिक और धार्मिक जीवन भी वदल रहा था। इस परिवर्तन के मध्य बालक इन्द्र का जन्म हुआ।

बालक इन्द्र के संस्कार

बालक इन्द्र अपने बड़े भाई हरिश्चन्द्र से दो साल छोटा था। उसकी दोनों बहनें उससे बड़ी थीं। बालक इन्द्र का ननिहाल भी पितृकुल के समान यशस्वी और विख्यात था। माता शिवदेवी के भाइयों में से श्री बालकराम के प्रति महात्मा मुंशीराम का अधिक लगाव था। उनके अन्य मामा भी जालंधर कन्या महा-विद्यालय के संस्थापक ला० देवराज, बैरिस्टर रायजादा भगत राम और केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य श्री रायजादा हंसराज थे। ये तीनों समाज-सुधार के क्षेत्र में अग्रणी थे। किंतु महात्मा मुंशीराम के समान नहीं। अतः बचपन से ही बालक इन्द्र को आदर्श और प्रेरणा के स्रोत की खोज में भटकने की जरूरत नहीं पड़ी।

आर्य समाज नया था, परन्तु यह नित्य बदल रहा था। आर्य समाज के जीवन में वह समय भारी हलचल का था। बालक इन्द्र के जन्म से दो साल पहले १८८७ में आर्य-पत्रिका में लिखा गया था: "उसका (डी० ए० वी० कालेज का) उद्देश्य प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन को उत्साहित करना और हिन्दू साहित्य की उन्नति करना होगा।" १९ अप्रैल १८८७ की आर्य पत्रिका में यह सूचना थी "इस बोर्डिंग हाऊस के कठोर नियम हैं। इसमें अनुशासन और नियंत्रण का पूरा प्रयत्न किया गया है। इस बात की व्यवस्था की गयी है कि उन बालकों को, जो इसमें प्रविष्ट हों, इस प्रकार रखा जाये जैसे घरों में माता-पिता के पास बच्चे रहते हैं।" ये दोनों उपबन्ध बताते हैं कि बालक इन्द्र के जालंधर में जन्म लेने से दो साल पहले ही नियति ने उसके निर्माण की दिशा निर्धारित कर दी थी। बालक इन्द्र के जन्म से केवल १४ साल पहले आर्य समाज की स्थापना ऋषि ने बंबई में इस उद्देश्य से की थी—"सब मनुष्यों के हितार्थ आर्य समाज का होना आवश्यक है। आर्य समाज का उद्देश्य सब मनुष्यों का हित करना है।" इस संस्था की सदस्यता बालक इन्द्र के जन्म से दो साल पहले ही यशस्वी पिता ने स्वीकार की थी। आर्य-समाज में पिता का प्रवेश बालक के जीवन को बदलनेवाली घटना थी। बालक के जन्म के वर्ष ही पिता ने सद्धर्म प्रचारक उर्दू में निकाला जो कि आर्य समाज का मुखपत्र माना जाता था। इस घटना ने बालक के भविष्य की सूचना दी। परिस्थितियाँ भी यदि व्यक्ति का निर्माण करती हैं, तो मानना चाहिए कि बालक इन्द्र को जिन परिस्थि-तियों ने बनाया, वह क्रांतिकारी थीं, नये-नये परिवर्तन लानेवाली थीं। इन सबके पीछे स्वतंत्रता-प्राप्ति की उद्दाम आकांक्षा थी। यह परिवेश था, वातावरण था, जिसमें

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बालक इन्द्र का पालन-पोषण हुआ और बालक बार-बार रोगी पड़ने पर भी बराबर बढ़ता गया और दो साल की आयु में रोग के साथ जो भीषण संग्राम शुरू हुआ, वह जीवनपर्यंत चलता रहा।

बालक इन्द्र का जन्म तलवन में नहीं, जालंधर में हुआ। तलवन की तो बालक साल में कई बार यात्रा ही करता था। उस समय तलवन गांव तीन भागों में विभक्त था। एक भाग में समृद्ध लोगों की बस्ती थी—इसी में बालक इन्द्र के पिता की हवेली थी। दूसरे भाग में बाजार था। और तीसरे भाग में काश्तकार या मुजायरे रहते थे, जो प्रायः अराई मुसलमान थे। कस्बे की जमीनों के मालिक ब्राह्मण खत्री थे और मुजायरे मुसलमान थे जो बस्ती के बाहरी भाग में रहते थे।

बालक इन्द्र का जन्म जालंधर में हुआ और वह भी कचहरी के पास के एक किराये के मकान में। परंतु लालन-पालन हुआ अपने घर के मकान में। यह बड़ी कोठी होशियार-पुर के अड्डे के पास सड़क पार बनी हुई थी। "यह किले के ढंग पर बनायी गयी थी। सड़क की ओर जो दीवार थी, उसके दोनों ओर कोनों पर गोलाई लिए हुए बुर्ज थे। दीवार के मध्य में बड़ा फाटक था। फाटक के दाईं ओर अस्तबल था, अस्तबल में दो गाड़ियां थीं, वहां एक गाड़ी का घोड़ा और एक सवारी का घोड़ा था। प्रायः दो गौएं भी वहां रहती थीं। फाटक के दूसरी ओर सद्धर्म प्रचारक प्रेस और अखबार का कार्यालय था।

"अस्तबल और प्रेस के बाद दूसरा सर्वथा बंद होने वाला फाटक था। इसमें एक खिड़की थी। शाम के समय यह खिड़की भी बंद हो जाती थी।

"फाटक के अन्दर एक छोटी-सी वाटिका थी। वाटिका में एक कुंज था, जिसका पानी बहुत ठंडा और स्वच्छ था। वाटिका में सब कुछ था। घास के मैदान के चारों ओर बहुत सुन्दर फुलवारी थी। फुलवारी से लगता हुआ लंबा-चौड़ा पक्का चबूतरा था। इसके पीछे तीन मुख्य कमरे थे। ये अन्य सब कमरों से ऊंचे और विशाल थे। इनकी सजावट भी बहुत बढ़िया थी।

"वाटिका से दूसरा रास्ता हवेली में जाता था—जिसकी दो ड्यौढ़ियां थीं। अन्दर की ड्यौढ़ी दायें-बायें दो ओर खुलती थी। दांयें ओर की ड्यौढ़ी रसोईघर में और बायीं ओर की हवेली में ले जाती थी।"

इस कोठी में समृद्धि के मध्य रमणीक स्थल में बालक इन्द्र का लालन-पालन हुआ। कोठी का यह वर्णन इस महान् लेखक ने स्वयं ६० साल बाद के अपने संस्मरणों में किया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस कोठी ने बालक की प्रवृत्तियों के विकास में कितना योगदान दिया। सौंदर्य-प्रेम और बागवानी से प्रेम इन्द्रजी ने बचपन में यहीं से प्राप्त किया। कविता का बीज-वपन भी यहीं हुआ।

मातृ-वियोग

सौभाग्य के साथ दुर्भाग्य भी लगा रहता है, जैसे प्रकाश के साथ अंधकार है। अभी बालक दो साल की आयु का ही था कि मां का देहांत हो गया। मातृ सुख

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से बालक वंचित हो गया। दो साल की उम्र में ही निमोनिया का हमला हुआ, इस समय ताई जमुनादेवी ने बालक को अपनी गोद में ले लिया। ताई के प्रेम को बालक कभी नहीं भुला सका। बालक रोगी था। उसे लाल शरबत की याद बराबर बनी रही। चिररोगी बालक को कब्जियत, खांसी, जुकाम में से कोई-न-कोई सालभर सताता ही रहता था। बालक के जो जीवन-संगी हुए वे सदा के लिए संगी-साथी हो गये। रोग जीवन-शक्ति को क्षीण करते हैं, परंतु इस रोग ने बालक इन्द्र को बचपन से ही रोगों से लड़ने का मनोबल दिया और ये शारीरिक व्याधियां जीवन को क्षीण करने के बदले जीवन में आस्था और विश्वास ही बढ़ानेवाली सिद्ध हुईं। यही कारण है कि जब नये डाक्टरों ने निराशा प्रकट की, कुटुंबियों के चेहरों पर विस्मय की रेखा दिखाई, उस समय भी इन्द्रजी ने जीवन के प्रति अडिग विश्वास बनाये रखा। रोग इन्द्र को घेरे रहते थे, और बालक भी मानता था कि कुछ काल बाद ये स्वयं चले जायेंगे।

बचपन में बालक नटखट नहीं था। शरारती भी नहीं कहा जा सकता। अस्वस्थ रहने के कारण अपने बड़े भाई के समान साहित्यिक कार्य भी नहीं करता था। बालक की सहन शक्ति भी अद्भुत थी। बालक शायद ही कभी हवेली से बाहर निकल कर शहर के बालकों के साथ मिलकर खेला हो। उसके बचपन के साथियों में बड़ा भाई और बड़ी दो बहनें थीं। घर में पिता की उपस्थिति का तो बच्चों को भान होता था, पर कभी उनका सान्निध्य प्राप्त नहीं होता था। चरित्र नायक ने इस अवस्था के विषय में लिखा है : "बचपन में हमारे लिए वह आवाज (खड़ाऊँ की आवाज) एक संदेश देनेवाली होती थी। उस आवाज को सुनकर हम बच्चों को यह अनुभव होता रहता था कि हमारे पिता घर में ही हैं और हमारी देखभाल कर रहे हैं।"

पिता नेता थे और बालक भी अपने पिता को नेता के रूप में देखता था। शाम को प्रतिदिन पिता का जो दरबार भरता था, उसको वह भी ध्यान से देखता था, उसका काम ध्यान से सुनता था। शाम को कौन-कौन आये हैं और क्या काम कर रहे हैं, इसकी खबर वह ताई को भाग-भाग कर देता था। यही बालक का खेल था। इन्द्रजी ने अपनी ताई का स्मरण सदा बड़े आदर और प्रेम से किया। जैसे :

"ताईजी को भोजन बनाने का बड़ा शौक था। वे इस अर्थ में अपने कमाल को जानती थीं और उसे करने में संतोष भी अनुभव करती थीं। पिताजी को भी वे उस शौक से भोजन कराती थीं, जिस शौक से उन्होंने दादाजी को कराया था। जब मैं स्नातक बनकर गृहस्थ हुआ और मुझे ताईजी की सेवा करने का अवसर मिला, तो ताईजी ने मुझे और घर के अन्य व्यक्तियों को भी उसी शौक से अपने हाथ के फुलके खिलाये। सत्तर साल से ऊपर उम्र हो जाने पर भी उनका शौक कम नहीं हुआ। चलने-फिरने में कष्ट होने लगा था, दृष्टि लगभग जाती रही थी, और वे प्रायः बीमार रहने लगी थीं, तो भी उनका आग्रह था कि उन्हें रसोई बनाने से न रोका जाये।"

बालक का भी बचपन बड़े भाई से इस स्पर्धा करने में बीता था "बाबूजी की थाली में खाना कौन खाये?" इस प्रतिस्पर्धा में जीत बालक इन्द्र की होती थी। छोटे होने के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अतिरिक्त ताईजी उसके पक्ष में रहती थीं। बाबूजी की थाली में खाना बालक का एक शौक हो गया। यह इतना बढ़ा कि "यदि किसी कारण से देर से खाना खायें तो मैं सब भाई-बहनों के साथ खाना न खाकर उस समय की प्रतीक्षा करता कि जब बाबूजी खाना खाकर जायें तो मैं उनकी थाली का उपयोग कर सकूँ।" पिता के साथ बैठकर पिता की थाली में खाने का सौभाग्य शायद बालक इन्द्र को कभी नहीं मिला।

बालक इन्द्र से उसकी दोनों बहनें वेदकुमारी और हेमन्तकुमारी (अमृत कला) बड़ी थीं। बालक की दृष्टि में दोनों बहनों के स्वभाव एक-दूसरे से बहुत मिलते थे। बड़ी बहन के स्वभाव में ठहराव था और छोटी बहन के स्वभाव में तेजी। ताईजी के स्वभाव में भी उस समय काफी उग्रता थी। जब ताईजी तेज होती थीं, तब बहन वेदकुमारी भी चुप हो जाती, परन्तु बहन हेमन्तकुमारीजी जवाब दिये बिना नहीं छोड़ती थीं। इस पर ताईजी का क्रोध भड़क जाता था। जिसका परिणाम यह होता था कि कभी-कभी छोटी बहन की पिटाई भी हो जाती थी।

पिता के प्रति बालक का आकर्षण बहुत अधिक था। उसके सिंह पिता का "लम्बा कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर, लम्बी दाढ़ी और साफ-सुथरा पहिरावा ये सब चीजें मिलकर उनकी मूर्ति को काफी शानदार बना देती थीं।" फिर भी पिता का रूप बच्चों को दुर्लभ था। यह संपर्क "ऐसे सौभाग्यशाली दिनों को छोड़कर जबकि पिताजी के साथ वे घूमने जाते या पिताजी शाम को कहानी सुनाते, नहीं मिलता था।"

इन्द्रजी ने लिखा है :—"हम लोग यह तो अनुभव करते थे कि उनकी आँख हम पर है, परन्तु उनका हाथ हमसे दूर ही रहता था।"

बालक इन्द्र का बचपन इस रीति से बीता। इस बाल्यावस्था को सुखद और मनोरंजक बनानेवाली तलवन-यात्रा होती थी, क्योंकि उसकी तैयारी घर में धूमधाम से होती थी। तीर्थ-यात्रा के समान यह तैयारी होती थी। दूध के परांठे बनते थे, साग में आलू की सब्जी और दही का नया भोजन होता था। बालक इन्द्र भी पिता के साथ प्रचार-यात्रा में जाता था। पर यह तब होता था, जब सारा परिवार जाता था। रोपड़ की प्रचार यात्रा बालक कभी नहीं भूला। यहाँ पर ही बालक इन्द्र ने पं० लेखराम को इस रूप में देखा :—

"एक सज्जन वहाँ और खड़े थे, जो देखने में पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के मुसलमान दिखायी देते थे। मजबूत शरीर, दरम्यानी कद, छोटी-छोटी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूँछें, सिर पर लम्बे शल्के वाली बड़ी-सी पगड़ी, कोट के बटन खुले हुए और हाथ में एक किताब थी। वे ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त धर्मवीर लेखराम थे।"

उस समय की बात का स्मरण भी इन्द्रजी ने किया है।

"किश्तियों से उतरने पर पिताजी से पं० लेखरामजी ने आगे बढ़ते हुए कहा—"प्रधानजी नमस्ते, देख लीजिए मैं आपसे पहले यहाँ पहुँच गया ?"

"पिताजी ने उत्तर दिया—'आपको तो पहले पहुँचना ही चाहिए था, क्योंकि आप तो आर्य-मुसाफिर हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस संस्मरण पर लेखक और ऐतिहासिक इन्द्र ने यह टिप्पणी भी की है :

"आर्य समाज के कल्याण-मार्ग के इन दोनों पथिकों का यह वार्तालाप भविष्यवाणी से कैसे भरा हुआ था, यह किसी को उस समय मालूम नहीं था। दोनों एक ही राह के राही थे तथा एक ही डगर से होकर इस संसार से विदा हुए। भेद केवल वही रहा जो रोपड़ की उस बातचीत में झलक रहा था। पं० लेखरामजी की गति बहुत तेज थी। इस कारण वह रास्ते को जल्दी तय कर गये और कुर्बानी के द्वार से होकर विश्राम-स्थल में पहुँच गये। पिताजी की तबीयत में उनकी अपेक्षया अधिक ठहराव था। इस कारण वह रास्ते पर देर तक चलते रहे। परन्तु पहुँचे उसी कुर्बानी के द्वार से और उसी विश्रान्ति स्थान पर।"

बालक इन्द्र की स्मृति और महान् शक्ति का यह एक चमत्कार है। एक बार दिमाग में जो चित्र तैयार हो गया, वह अमिट हो गया।

बालक इन्द्र को अपने पिता की डांट कभी नहीं मिली, इस कारण वह उस समय चकित हो गया, जब उसने अपने महान् पिता और आदरणीय मामा लाला देवराजजी को परस्पर जोर-जोर से विवाद करते हुए सुना और देखा। उन्होंने लिखा है : "हमारे लिए पिताजी का किसी से झगड़ा बहुत ही असाधारण चीज थी। वे घर में कभी किसी पर गुस्सा तक नहीं होते थे।"

बचपन में बालक इन्द्र कोई खेल नहीं खेलता था। दोनों भाई 'सत्य प्रकाश व असत्य विचारक' नामक अखबार निकालते थे। 'सरस्वती' के चित्र को दोनों भाई इकट्ठे बैठकर देखा करते थे। कहानियाँ पढ़ते थे। इन्द्रजी लिखते हैं : "हमारे सहोद्योग से तैयार होनेवाले उस हस्तलिखित पत्र पर 'सद्धर्म प्रचारक' और 'सरस्वती' दोनों की छाप रहती थी। हम दोनों उसके लेखक तथा प्रकाशक थे और दोनों पाठक थे। तीसरा कोई व्यक्ति हमारा सहायक नहीं था। जब अवसर मिल जाता तो प्रेस से कुछ कोरे कागज उड़ा लाते और स्कूल से बचे समय में लेख लिखते थे। हम लोग द्वाबा हाई स्कूल में शिक्षा पाते थे; मेरी आयु सात वर्ष की होगी और हरिश्चन्द्र की नौ की। यह पत्रकारिता का पहला अनुभव था।"

बालक इन्द्र की आयु तीन वर्ष की ही थी कि पिता आर्य-प्रतिनिधि के रूप में पंजाब के प्रधान निर्वाचित हुए। इस घटना ने भी बालक का जीवन-क्रम और शिक्षा-क्रम निश्चित कर दिया।

प्रारम्भिक शिक्षा

पिता आर्य-समाज के भाग्यविधाता थे, आर्य-समाज की गति को प्रवाह और नयी दिशा देनेवाले थे। उस प्रवाह को लक्ष्य तक पहुँचानेवाले उनके दोनों पुत्र हुए। फलतः बालक इन्द्र की शिक्षा का प्रारंभ ठीक समय पर विधिवत् हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। द्वाबा हाईस्कूल में शिक्षा का प्रारंभ हुआ। पर यह कोई विशेषता नहीं थी। उस समय पढ़नेवाले सभी बच्चे उसी तरह के स्कूल में पढ़ते थे। किन्तु उस शिक्षा का आर्य समाज से कोई संबंध नहीं था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य-समाज का विस्तार तेजी से हो रहा था। इसके साथ ही उपदेशकों की माँग बढ़ रही थी। उपदेशक तैयार करने के लिए १८९१ में 'उपदेशक श्रेणी' नाम से एक पाठशाला प्रारंभ की गयी थी। यह पाठशाला १८९३ में लाहौर से आकर जालंधर में पहुँच गयी। इसका नाम यहां बदलकर वैदिक पाठशाला हो गया। इस वैदिक पाठशाला के आचार्य पं० गंगादत्तजी थे और इसके छात्र थे पं० भगतराम (डीमा निवासी), पं० विश्वमित्रजी, पं० पद्मसिंह शर्मा और पं० नरदेव शास्त्री। इस पाठशाला के प्रबंधक बालक इन्द्र के पिता महात्मा मुंशीराम थे। इस कारण इस पाठशाला के साथ बालक इन्द्र का संबंध होना अनिवार्य था।

यह पाठशाला जालंधर में भी अधिक दिन नहीं रही। प्रधानजी को इसकी देख-भाल करने का समय नहीं था। अतः यह १८९३ में गुजरांवाला भेज दी गयी। वहाँ इसने गुरुकुल का रूप धारण किया। यह कांगड़ी में स्थापित होनेवाले गुरुकुल की भूमिका थी। उसका यह प्रारूप था।

गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना नगर से दो-तीन मील की दूरी पर पक्की सड़क के किनारे रेल-पटरी के समीप एक दो मंजिली कोठी में हुई थी। बालक इन्द्र का गुरुकुलीय जीवन इसी कोठी में प्रारंभ हुआ था। कोठी के ऊपर वाले हिस्से में बड़े ब्रह्मचारी रहते थे। ब्रह्मचारी इन्द्र की गिनती बड़े ब्रह्मचारियों में थी।

ब्रह्मचारियों के इस काल के जीवन के विषय में वेदोपाध्याय श्री विश्वनाथजी विद्यालंकार ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार लिखा है :

"कोठी की ऊपर की मंजिल में इन्द्र, इनका बड़ा भाई हरिश्चन्द्र, जयचन्द्र तथा कतिपय अन्य विद्यार्थी रहते थे। मैं और अन्य छोटे ब्रह्मचारी निचली मंजिल में रहते थे। कोठी के ऊपर के हिस्से में रहने वाले ब्रह्मचारियों को बड़े ब्रह्मचारी कहते थे। छोटे ब्रह्मचारियों का बड़े ब्रह्मचारियों के साथ मेल-मिलाप निषिद्ध था। सायंकाल को समस्त ब्रह्मचारी अध्यापकों समेत कोठी के सहन में इकट्ठे हुआ करते थे और संस्कृत के समस्त शब्दों के पदच्छेदों में बड़े ब्रह्मचारियों में प्रायः संवाद हुआ करते थे। ब्रह्मचारी इन्द्र इन संवादों में अच्छा भाग लेते थे। ब्रह्मचारी कबड्डी खेला करते, परंतु खेल में अंगुली द्वारा या हाथ द्वारा स्पर्श वर्जित था।"

इन्द्रजी ने लिखा है :—"गुजरांवाला के गुरुकुल में भर्ती होने के बाद वातावरण और शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के कारण पुराने सब सिलसिले और शौक टूट गये। गुरुकुल में हम दोनों संस्कृत वाङमय में डुबकी लगाने लगे।"

पं० गंगादत्तजी यहाँ भी आ गये थे। आपने ब्रह्मचारी इन्द्र को जालंधर में ही यज्ञोपवीत संस्कार कराया था। यहां तलवन के पुराने पुरोहित पं० दीनानाथजी आये थे। संस्कृत का पहला पाठ यहीं ब्रह्मचारी इन्द्र ने लिया। तालाब के किनारे एक बुर्जी के नीचे चटाई बिछाई गयी। उस पर दो ब्रह्मचारी बैठे। ये दोनों सहाध्यायी बंधु थे।

पर बालक इन्द्र का भाग्य पंजाब से दूर ले जाने पर तुला था। महात्मा मुंशीराम का संकल्प पूरा हो गया था। गुरुकुल की स्थापना के लिए ३०,००० रुपये वे एकत्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर चुके थे। सभी ने आपको गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता नियुक्त कर दिया। मुंशी अमन-सिंह ने अपना कांगड़ी गांव महात्माजी को गुरुकुल की स्थापना के लिए भेंट कर दिया था। महात्माजी की आशा पूरी हो गयी। फूंस के कुछ छप्पर छवाने के बाद आप गुजरांवाले पहुँचे और ब्रह्मचारियों को कांगड़ी लिवा ले गये।

गुरुकुल कांगड़ी जाने से पहले बालक इन्द्र ने पितृ-प्रेम के स्वर्गीय-सुख का अनुभव किया। उन्होंने लिखा है :––"महात्माजी धन-संग्रह का दौरा समाप्त करके लाहौर में आर्य होटल में ठहरे हुए थे। हम दोनों भाई उस समय जीवन में पहली वार (और शायद अंतिम बार भी) अपने पिताजी के दोनों ओर चारपाइयों पर सोये। उस रात सोने से पहले पिताजी हमारी चारपाइयों पर आये और प्रत्यक्ष में प्यार किया। वह अनुभव हमारे बाल्य-जीवन में बिल्कुल नया था। अन्यथा पिताजी सदा हम से दूर ही रहकर वात्सल्य से हमें देखते थे। कभी उसे अनुभव में आने नहीं दिया। उस समय उन्होंने प्रेम से हम दोनों के मस्तक चूमे, हम दोनों भाइयों ने उस समय स्वर्गीय सुख का अनुभव किया।"

इसके बाद पिता-पुत्र का संबंध आचार्य और अंतेवासी में बदल गया। बालक इन्द्र के पिता जीवित थे, पर वे आचार्य हो गये थे। वे एकमात्र बालक इन्द्र के पिता नहीं रहे थे, सैकड़ों बालकों के पिता हो चुके थे। यह मिलन-बेला वस्तुतः विदाई बेला थी।

उन दिनों का स्मरण भी इन्द्रजी ने इन शब्दों में किया है :––

"इन वर्षों में जितनी आर्य-समाजों की स्थापना हुई, इतनी किन्हीं दो सालों में नहीं हुई। कई स्थानों में शास्त्रार्थ हुए, परंतु जब यह प्रश्न कीजिये कि आर्य-समाज की ओर से कौन-सा पंडित था, तो उत्तर में ऐसा नाम लिया जायेगा जो शहर से बाहर किसी को ज्ञात ही न हो। उस समय का धर्मयुद्ध सिपाहियों का था। अन्य किसी का उसमें कोई दखल नहीं था। न बड़े-बड़े सेनापति थे, न फौज के जबरदस्त हैडक्वार्टर थे, न विशाल तोपें थीं और न मशीनगनें। उस समय प्रत्येक आर्य-पुरुष सिपाही होकर धर्मयुद्ध में आता था। यह युद्ध खास-खास क्षेत्रों में नहीं लड़ा जा रहा था, यह शहर-शहर, गांव-गांव और घर-घर में लड़ा जा रहा था। उस समय युद्ध की कला की नहीं, सामर्थ्य की जय हो रही थी। यह समय सचमुच स्वर्गीय था।"

––इन्द्र (आर्य-समाज का इतिहास १ भाग)

गुजरांवाला से कांगड़ी में ब्रह्मचारियों का आगमन आर्य-समाज के जीवन में ही नहीं, अपितु ब्रह्मचारी इन्द्र के जीवन में भी एकदम परिवर्तनकारी घटना थी। दोनों के जीवन में एक नया मोड़ आया। दोनों के जीवन ने एक नयी दिशा ली। गुरुकुल कांगड़ी में आते समय ब्रह्मचारी इन्द्र की आयु १२-१३ वर्ष की थी। इसी आयु में ब्रह्मचारी इन्द्र ने ऋषि-सन्तान के समान आश्रमवासी का जीवन बिताया। ये गुरुकुल की अपनी शिक्षा-प्रणाली थी। यह एक नया प्रयोग था। बालक इन्द्र इस प्रयोग से पूर्णतः अनभिज्ञ था।

इन्द्र अपनी जिम्मेदारी को बचपन से अनुभव करता था। उसके मन में एक चिन्ता सदा रही कि ध्येय की ओर किस मार्ग से आगे बढ़ना है। उस पर वह दृढ़ तथा सतर्क

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रहते हुए चला भी। उसने इसी लक्ष्य की पूर्ति में विद्याध्ययन काल के एक-एक क्षण का सदुपयोग किया।

बालक इन्द्र ने शरीर को स्वस्थ, बलवान् और दृढ़ बनाने का निरन्तर यत्न किया। कभी दिनचर्या में अन्तर नहीं आने दिया। डायरी रोज लिखी। डायरी साहित्य में उनकी डायरी एक अनमोल निधि है।

गुजरांवाला से हरद्वार स्टेशन पहुँचने पर ब्रह्मचारियों का दल गुरुकुल तक कैसे पहुँचा, इसका वर्णन इन्द्रजी ने अपनी डायरी में निम्न प्रकार लिखा है :—

"स्टेशन से निकलने पर एक जुलूस बनाया गया। सबके आगे महात्माजी और पं० गंगादत्तजी थे, उनके पीछे महर्षि दयानन्द का बड़ा चित्र लिये तोताराम चल रहा था। उसके पीछे दो-दो की पंक्ति में हम लोग थे। स्टेशन से निकलते ही हम लोगों ने प्रार्थना के आठ मंत्रों का ऊँचे स्वर से पाठ प्रारंभ कर दिया और निरन्तर करते रहे, जब तक जुलूस कनखल से पार न हो गया। हम लोग स्टेशन से चलकर मायापुर के पुल से उतरकर कनखल के बाजार में पहुँचे और सारे बाजार का चक्कर काटते हुए दक्ष के मंदिर पर जा पहुँचे। इस सारे रास्ते में सब लोग निरन्तर वेद-मंत्रों का उच्च स्वर से पाठ करते रहे। हरद्वार और कनखल तब मुख्य रूप से यात्रियों और पंडों के शहर थे। वे सनातन धर्म के गढ़ समझे जाते थे। अब तो धीरे-धीरे उनमें कुछ नवीनता का संचार हो गया है, पर उस समय तो वे सनातनता के स्तंभ थे। ओ३म् के झण्डे और वेद-मंत्रों के खुले पाठ को वह बहुत ही आश्चर्य-भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे हम लोगों को किसी दूसरी दुनिया के प्राणी समझकर विनोद अनुभव कर रहे थे। दक्ष का मंदिर पार करके हमने वेदपाठियों का रूप छोड़कर प्राणियों का रूप धारण कर लिया।"

यह ब्रह्मचारी इन्द्र की द्विग्विजय-यात्रा का प्रारंभ था। कुम्भ पर हरद्वार में ही महर्षि दयानन्द ने पाखंडखंडिनी पताका फहराई थी और कौपीन लगायी थी और १२ बजे तक गंगा तट पर रहने का निश्चय किया था। ब्रह्मचारी इन्द्र और उसके साथी भी उसी लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए कांगड़ी गांव जा रहे थे।

गुरुकुल की पहली रात

ब्रह्मचारी इन्द्र ने पहली रात गुरुकुल में क्या देखा और वह रात कैसे बितायी ? इसका वर्णन भी इन्द्रजी के शब्दों में है—"खैरों के कांटों को रौंदता हुआ हमारा दल जब गुरुकुल पहुँचा, तब चाँद आसमान में आ चुका था। उसका धवल प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था। घने जंगल के बीचों-बीच कोई दो बीघे का मैदान साफ किया गया था। उसमें एक ओर फूस के छप्परों की एक लम्बी पंक्ति थी, जो छात्रों के रहने का आश्रय स्थान था। उसके साथ दूसरी छप्परों की पंक्ति में भोजन-भंडार था। उनके बीच के कोने में एक कुटीर बनी हुई थी, जो प्रधानजी का दफ्तर भी था और रहने का स्थान भी। इन छप्परों से कुछ दूर पर दो छप्पर डालकर गोशाला बनायी गयी थी। यह फूस के छप्पर का डेरा उस समय खिली हुई चाँदनी में अद्भुत शोभा दिखा रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमें उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि हम सचमुच स्वर्ग के किसी टुकड़े पर पहुंच गये हैं। यह गुरुकुल का प्रारम्भिक रूप था।"

इन्द्रजी ने लिखा है—"इस आश्रम में निवास करते हुए लगभग सात वर्ष विद्याध्ययन में व्यतीत हो गये। साहित्यिक विकास लगभग एक ही रंग पर होता रहा। प्रारम्भिक चार वर्ष केवल संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन में व्यतीत किये। उन वर्षों के साहित्यिक अवशेष मेरे पास संस्कृत श्लोकों के रूप में विद्यमान हैं। कापियों और फाइलों को संभाल कर रखने की मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। संस्कृत अध्ययन के उस प्रारम्भिक काल में मैंने और भाई हरिश्चन्द्रजी ने जो संस्कृत श्लोक बनाये, वे प्रायः सभी मेरे पास सुरक्षित हैं। उनमें से बहुत से श्लोक छपे भी थे, शेष अनछपे पड़े हैं।"

ये श्लोक जिस भूमि में रहकर बनाये गये, उस भूमि का वर्णन भी उन्हीं के शब्दों में देखिये :— "हमारे रहने का स्थान खैर और बेरी के घने जंगलों से घिरा हुआ था। कहीं-कहीं बिल्व के पेड़ थे। इन तीनों प्रकार के पेड़ों की बहुतायत के कारण वह जंगल वस्तुतः 'कंटकाकीर्ण' शब्द का अधिकारी था। नीचे काँटे ऊपर काँटे, और चारों ओर भी काँटे। इस प्रकार वह जंगल सचमुच कंटकमय था। रहने के स्थान से दस कदम बाहर जाने के लिए काँटेदार पगडंडियों को पार करना पड़ता था। शाम को जब अंधेरे का राज्य हो जाता था, तब कभी-कभी हमारे आश्रम के आंगन में और प्रधानजी के तंबू की छतरी के नीचे स्यारों का हल्ला सुनायी देता था। किसी-किसी दिन यह समाचार भी मिल जाता था कि कल रात किसी कुत्ते या लवारे को गुलदार (छोटा शेर) उठा ले गया। स्नान के लिए सिर्फ गंगा की धारा थी और क्रीड़ा-क्षेत्र का आनन्द गंगातट की बालू से लिया जाता था। ऐसी दुनिया में हम रहते थे।"

विद्याध्ययन का क्रम

इस वातावरण में ब्रह्मचारी इन्द्र ने गुरुमुख से विद्याध्ययन किया। ब्रह्मचारी का दिन प्रातःकाल चार-साढ़े-चार बजे से प्रारम्भ होता था। व्यायाम दिनचर्या का मुख्य भाग था। दोनों समय व्यायाम अनिवार्य था। दो-दो सौ दंड-बैठक निकालना साधारण बात थी।

गुरुकुल का जीवन दूसरे रूप में सामूहिक था। गुरु-शिष्य के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध था। व्यायाम, हवन, उपदेश, भोजन और सायंकाल के खेल के समय सभी कुलवासी इकट्ठे होते थे। "एक दूसरे के सुख-दुःखों की सभी को खबर रहती थी। सब इकट्ठे ही हँसते थे और इकट्ठे ही रोते थे। प्रतीत ऐसा होता है कि किसी संस्था में कुल की भावना और छात्रों की परिमित संख्या का गहरा सम्बन्ध है।"

ब्रह्मचारी इन्द्र इस जीवन में पूर्णतया रम गया था।

"अनध्याय प्रिया : हि छात्रा :" इस पुरानी उक्ति का ब्रह्मचारी इन्द्र और उसके संगी ब्रह्मचारी अपवाद नहीं थे। गर्मियों में अनध्याय के दिन हवन के बाद गुरुकुल के सामने की पहाड़ी पर धावा बोला जाता था। वहाँ प्याल का फल तोड़ा और खाया जाता था। यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खट्टा-मीठा फल गुरुकुल का तोहफा था। पहाड़ पर तेजी से चढ़ने में प्रतिस्पर्धा रहती थी। "कांटे और पत्थरों को नंगे पैरों से कुचलते हुए पर्वत की चोटी पर एक दूसरे से पहले पहुँचने का यत्न करते थे। दो-तीन घंटे तक सब लोग बाहुबल से प्राप्त हुए इस प्याल के सह-भोजन का आनन्द लेते थे और दोपहर होते-होते गुरुकुल वापस आ जाते थे।"

गंगा जब झरझर कर उफनती हुई चलती थी, तब ब्रह्मचारी गुरुकुल से ढाई मील ऊपर चंडी की पहाड़ी के नीचे कालका के मंदिर के पास गंगा में कूदते थे और पानी-ही-पानी में गुरुकुल तक आते थे। सब ब्रह्मचारी अच्छे तैराक थे। पानी, जंगल और पहाड़ के खतरों को खतरे न समझना गुरुकुलीय जीवन का एक स्वभाव-सिद्ध अंग था।

खेलों में रुचि

क्रिकेट खेलने का भी ब्रह्मचारी इन्द्र को शौक था। क्योंकि उसका विश्वास था—"वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के क्रीड़ा-क्षेत्र में ही जीती गयी थी। लार्ड विलियम ने पूरे जोर से लड़ना और हारकर भी हार न मानना और हार में से जीत निकाल लेना क्रिकेट के खेल में से ही सीखा था।"

सर्दियों में अनध्याय के दिन ब्रह्मचारियों के दल का हवन के बाद गाँव की ओर प्रयाण होता था। जहाँ कोल्हू चल रहा होता था, वहाँ यह दल ठहर जाता था। रास्ते में यदि कोई गाँव आता, तो यह दल वेद-मंत्रों का पाठ करने लगता था। यह दल केवल रस-पिपासुओं का समूह मात्र न था। यह वैदिक-धर्म के प्रचारकों का दल था। रास्ते भर इस प्रकार प्रचार होता था। वेद-मंत्रों की ध्वनि उन गांवों तक पहुँचती थी, जहां सदियों से किसी ने कभी वेद-मंत्र नहीं सुने थे।

शहर में जाना ब्रह्मचारियों का निषिद्ध था। ब्रह्मचारी इन्द्र का अनुभव इस विषय में है—"कांगड़ी में पहुँचने के पश्चात् कम-से-कम पांच वर्ष तक हम ब्रह्मचारियों ने गंगा का पुल पार करके कनखल में पाँव नहीं रखा था।"

नगर-निवास का ही निषेध नहीं था, प्रत्युत नगर-यात्रा भी वर्जित थी। ब्रह्मचारियों के प्रधान ने कुछ भी दिखाया, तो चंडी की पहाड़ियों के नीचे जहाँ से गंगा की कई धाराओं के पार वृक्षों का जमघट दिखायी देता था।

गुरुकुलवासियों को बड़ी कड़ाई से नियमों का पालन करना पड़ता था। "कोई ब्रह्मचारी अधिष्टाता के बिना न अपने संरक्षकों से मिल सकता और न उन सबकी ओर जा सकता था। मिलने के लिए भी आश्रम के पीछे तंबू लगाये जाते थे।"

इस प्रकार नियंत्रण में रहते हुए ब्रह्मचारी ने अध्ययन किया और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। इस व्रत के पालने में महिला मात्र का दर्शन वर्जित था। वार्षिकोत्सव के समय एक दिन ही महिलाएँ ब्रह्मचारियों के आश्रम में आ सकती थीं। इस दिन ब्रह्मचारियों को गुरुकुल से विदा होना पड़ता था। उस युग में सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखे नियम की ऐसी ही व्याख्या की जाती थी। हम लोग भोजन से पूर्व ही बड़ी गंगा के किनारे छायादार झाड़ी में जाकर डेरा जमा लेते थे। भंडार में तैयार होकर भोजन बहँगियों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर वहीं पहुँच जाता था। वहाँ श्लोकों और सूत्रों की अंत्याक्षरी होती थी। व्यवहार और न्याय के शास्त्रार्थ होते थे। शाम को खेलें होती थीं। जब हम लोग आश्रम में वापस आते थे, तब सब महिलाएँ गुरुकुल देखकर जा चुकी होती थीं।" साल में एक दिन ब्रह्मचारियों का वनवास होता था।

चिन्तनशील शिष्य

ब्रह्मचारी इन्द्र अपने साथियों में गुरु था और गुरुओं के मध्य शिष्य था। उसका छात्रावस्था में भी अध्ययन गंभीर और चिन्तन-मनन बहुत गहरा था। महाविद्यालय (कालेज) में पहुँचने से पहले ही उसने कई बार बाल्मीकि रामायण और महाभारत का पारायण कर लिया था। इसके फलस्वरूप श्लोक-रचना करना बहुत सरल हो गया था। छात्रावस्था में ब्रह्मचारी इन्द्र कवि और मंत्रकार था।

छात्रावस्था से ही श्री इन्द्र एक विचारक और चिन्तक थे। एक दार्शनिक और तत्त्वज्ञ में जो गुण चाहिए, वे इस काल में ही उनमें थे। उनकी डायरियों के पन्नों का अध्ययन बताता है कि विद्यार्थी इन्द्र को अपना निर्माण करने और अपने निश्चित ध्येय पर पहुँचने का हर समय ध्यान रहता था!

ब्रह्मचारी इन्द्र ने अध्ययन करने में पुस्तकों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया। जो विशाल साहित्य वे हिन्दी जगत् को विरासत में दे गये हैं, उसके निर्माण की तैयारी इस समय हो गयी थी। पढ़ने के साथ गुनना और गुने हुए को लिखना, इस समय भी जारी था। निबन्ध लिखने की प्रवृत्ति इस समय जोरों पर थी। सभा-समितियों की स्थापना में भी उसका मन लगता था। खेलने का--विशेषतः घुड़सवारी करने और क्रिकेट खेलने का--उसे शौक था। कुश्ती का शौक डाक्टरों की सलाह से छूट गया। दो, चार और १६ वर्ष की अवस्था में निमोनिया के प्रबल हमले हुए, प्लुरिसी भी हुई। इसने एक फेफड़ा खराब कर दिया। इसलिये एक फेफड़े के बल पर जीवन-यात्रा पूरी करनी पड़ी। पर आप हिम्मत कभी नहीं हारे। स्वभाव में इस दृढ़ता का विकास आपने छात्रावस्था में ही कर लिया था।

इन डायरियों का अध्ययन यह बात भी बताता है कि विद्यार्थी इन्द्र के पिता ने यद्यपि पुत्र को बैरिस्टर बनाने की कभी इच्छा की थी, किन्तु पुत्र के मन में उसके प्रति कोई उत्साह नहीं था। इसके विपरीत वह बैरिस्टर होने को ध्येय नहीं मानता था। देश की अवस्था को देखते हुए बैरिस्टर होना उसको देशभक्तिपूर्ण कार्य नहीं मालूम देता था। स्वतंत्रता पाने का संकल्प उसके हृदय में इसी समय उत्पन्न हो गया था। छात्र-जीवन में ही श्री इन्द्र का यह विचार हो गया था कि "दासों का धर्म कभी नहीं फैलता। अतः आर्य समाज को स्वाधीनता-प्राप्ति में योगदान करना चाहिये।" इन विचारों का व्यक्ति बैरिस्टर बनने के लिये विदेश जाने की कामना ही कैसे कर सकता था। अतः पिता की वसीयत को फाड़ने का श्री इन्द्र को कभी पछतावा नहीं हुआ, न पिताजी की जालंधर स्थित कोठी के गुरुकुल को दान देने का दुःख हुआ। ब्रह्मचारी इन्द्र ने वसीयतनामा फाड़ने से पहले ही बैरिस्टर न होने का निश्चय कर लिया था। बात यह कुछ विचित्र अवश्य है। एक मामा के प्रख्यात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बैरिस्टर होते हुए भानजे का उस पर न चलने का निश्चय करना वस्तुतः अद्भुत और विस्मयजनक है ।

राष्ट्रीय विचारों का सूत्रपात

१९०२ से १९११ तक का काल श्री इन्द्र का शिक्षा-काल है । यह काल आर्य समाज और देश के राष्ट्रीय जीवन में भी महत्वपूर्ण है । इस काल में बंग-भंग की महत्वपूर्ण घटना हुई । श्रीमती कन्हाई दत्त को फांसी दी गयी । अरविंद घोष जेल गये । 'लाल-बाल-पाल' की राजनीतिक आंधी आयी । सूरत में कांग्रेस विभक्त हो गयी । लोकमान्य तिलक मांडले जेल में कैद रखे गये । इन सब घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव छात्र इन्द्र पर भले ही न पड़ा हो, पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़े बगैर नहीं रहा । ब्रह्मचारी इन्द्र मन से और हृदय से लोकमान्य तिलक का अनुयायी था । मन-ही-मन उसने लोकमान्य को अपना राजनीतिक गुरु मान लिया था । इस राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव गुरुकुलीय जीवन पर भी पड़ा । गुरुकुल में अंग्रेज अधिकारियों का आना उसको अच्छा नहीं लगता था । उनका वहिष्कार तक करने के आंदोलन का नेतृत्व उसने किया ।

ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में गुरुकुल क्या था, इसका पता ब्रिटिश मजदूर दल के नेता रैमजे मैकडानल्ड ने, जो बाद में ब्रिटेन के दो बार प्रधान मंत्री (१९२४ और १९२९) बने, जो कुछ लिखा था, वह सरकारी मनोवृत्ति का यथार्थ परिचायक है । आपने लिखा था "भारत के राजाओं के सम्बन्ध में जिन्होंने कुछ थोड़ा-सा भी पढ़ा है, उन्होंने गुरुकुल का नाम अवश्य सुना होगा । यहाँ आर्य-समाजियों के बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं । आर्यों की भावना और सिद्धान्तों का यह अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्त रूप है । इस उन्नतिशील धार्मिक संस्था और आर्य समाज के विषय में जितने भी संदेह किये जाते हैं, वे सब इस गुरुकुल पर लाद दिये गये हैं । इसलिए इस पर शासन की तिरछी नजर है । पुलिस अफसरों ने इसके विषय में गुप्त रिपोर्टें दी हैं । अधिकांश इंडियन लोगों ने इसकी निन्दा की है ।"

इस प्रकार के शिक्षालय में श्री इन्द्र का छात्र-जीवन बीता । धर्मशाला में आर्यों पर जिन दिनों मुकदमे चल रहे थे, उन दिनों ब्रह्मचारी इन्द्र ने जमीन पर सोना शुरू कर दिया था, और प्रतिज्ञा भी की थी कि नेताओं के रिहा न होने तक वह भूमि पर ही सोयेगा । विद्यार्थी इन्द्र का हृदय देश में चल रही आँधियों और तूफान से प्रभावित होता था । इनमें वह गुरुकुल में रहते हुए और पढ़ते हुए भी मन से और हृदय से भाग लेता था । छात्र-जीवन में ही आपने राष्ट्रभक्ति का यह गीत लिखा था :—

"हे मातृ-भूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ
मैं भक्ति भेंट अपनी तेरी शरण में लाऊँ ।
तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मंत्र गाऊँ
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढ़ाऊँ ।"

इसकी वह केवल तैयारी ही नहीं कर रहा था, बल्कि वस्तुतः इसके अनुसार अपना जीवन ढाल रहा था । उसका जीवन समर्पित जीवन था ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विद्यार्थीकाल में ब्रह्मचारी इन्द्र ने बहुत कुछ लिखा। कुछ तो निबन्ध लिखे सभाओं में पढ़न के लिए। कुछ लेख लिखे समाचार पत्रों के वास्ते। शिक्षा काल में भी लेखनी अव्याहत रूप से चलती रही। उठने के बाद प्रातःकाल प्रतिदिन श्लोक बनते रहे। संस्कृत के प्रति यह अनुराग यहाँ तक बढ़ा कि डायरी भी संस्कृत में लिखनी प्रारंभ कर दी।

गुरुकुल की शिक्षा से तरुण इन्द्र को भी एक वार असंतोष उत्पन्न हुआ। उसे लगता था, कि इससे कुछ बनेगा नहीं। इससे वह न तो काशी के पंडितों के समान संस्कृत धुरंधर विद्वान् हो सकेगा और न इंग्लैंड से शिक्षा प्राप्त कर लौटे भारतीयों के समान अंग्रेजी और पश्चिमी विद्याओं का अगाध ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। दोनों भाइयों ने प्रधानजी से प्रार्थना की कि उन्हें पढ़ने के लिए काशी भेज दिया जाये। वहां पं० शिवकुमार शास्त्री, पं० जयदेव मिश्र और श्री भगवताचार्य सदृश पंडितों से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। गुरु-कुल-शिक्षा की कमी प्रकट करने का परिणाम यह हुआ कि आचार्यजी ब्रह्मचारियों को देहरादून की यात्रा पर ले गये। इस यात्रा ने उनका सन्देह दूर कर दिया। असंतोष भी मिट गया। यह घटना बताती है कि बचपन में भी बालक इन्द्र अपने ध्येय के प्रति कितना सजग और सावधान था।

इस रीति से सदा सजग रहनेवाले अध्ययनशील व्यक्ति ने छात्र जीवन में जो लिखा होगा, वह अवश्य उपयोगी होगा। सद्धर्म प्रचारक के संपादन का भार भी ब्रह्मचारी इन्द्र पर आ गया था। अध्ययन काल में ही यह कार्य होता था। इसके तीन पृष्ठ प्रति सप्ताह ब्रह्मचारी इन्द्र की लेखनी से लिखे होते थे।

पत्रकारिता के प्रति झुकाव

पत्रकारिता का शौक इन्द्रजी को बचपन से था। हाईस्कूल में पढ़ते हुए दोनों भाई छिपकर पत्र निकालते थे। यह शायद तब उनके पिताजी को भी मालूम न था। गुरुकुल कांगड़ी की ९ वीं कक्षा में आने पर दोनों भाई अलग-अलग हस्तलिखित पत्र निकालने लगे। हस्तलिखित पत्र-पत्रिकायें निकालने का जो रिवाज ब्रह्मचारी इन्द्र ने चलाया, वह आज भी जारी है। पत्रकारिता करते हुए तरुण इन्द्र ने अपनी अनेक शक्तियों का विकास किया। सभी सभाओं का संगठन किया। उनका मंत्रित्व किया। विद्यालय में पढ़ते हुए साहित्य-संर्बधिनी चलायी। विद्यालय में पहुँचने पर साहित्य-परिषद् के मंत्री रहे, विद्यालय सभा का भी संचालन किया।

प्रचारक-संपादन

छात्र जीवन में 'सद्धर्म-प्रचारक' का संपादन करते हुए कैसे अनुभव हुए, यह देखने से ज्ञात होगा कि विद्यार्थी इन्द्र का जीवन किस प्रकार सतत विकासशील था।

एक बार एक लेख का प्रूफ संशोधन ठीक-ठीक नहीं हुआ। लेख गलत छप गया। इसकी ब्रह्मचारी इन्द्र पर झट प्रतिक्रिया हुई। इसका परिणाम यह निकला कि उसने निश्चय किया :

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१) लेख स्पष्ट अक्षरों में लिखूँगा।
(२) अंग्रेजी के अक्षर कभी न लाऊँगा।
(३) उसे स्वयं शोध लिया करूँगा।
(४) सरल भाषा में लिखा करूँगा।

प्रचारक में छपे लेखों ने पं० इन्द्र में यह विश्वास उत्पन्न किया कि वह एक लेखक बन सकता है। इसकी कहानी उन्हीं के शब्दों में पढ़िये :

"पं० शिवशंकरजी के लिखे ग्रंथों को पढ़कर मेरे मन में न जाने क्यों कुछ विद्रोह-सा पैदा हुआ——उस समय मैं शायद गुरुकुल की तेरहवीं श्रेणी में पढ़ता था। एक दिन जोश जो आया तो काव्यतीर्थजी के ग्रंथ की आलोचना में एक लम्वा लेख लिख डाला। यद्यपि इसका कोई विशेष कारण नहीं था कि उस लेख में काव्यतीर्थजी और उनके ग्रंथों के सम्बन्ध में उतने व्यंग्यों और तीखे उपहासों का प्रयोग किया जाता। पर संभवतः उस समय की हिन्दी समालोचना प्रणाली का मेरे युवक हृदय पर ऐसा असर हुआ कि उस लेख में तीव्रता के साथ रोचकता आ गई। यह लेख लेकर मैं संपादकजी के पास पहुँचा और निवेदन किया कि आप इस लेख को 'सद्धर्म प्रचारक' में प्रकाशित कर दीजिये। वे दुविधा में पड़ गये। लेख उन्हें पसंद आया, पर उसे छापें कैसे? गुरुकुल के एक छात्र का लिखा हुआ लेख और वह भी एक अध्यापक के ग्रंथों की आलोचना। लेकिन संपादकजी को लेख पसंद आ चुका था। अतः परामर्श के बाद यह निश्चय हुआ कि लेख तो प्रकाशित किया जाये, परन्तु उसमें मेरा नाम न रहे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि यह बात सर्वथा गुप्त रखी जाये कि लेख किसका है। प्रेसवालों को सावधान कर दिया जाये कि वे रहस्यो-द्भेद न होने दें। मैंने अपना उपनाम उस लेख के लिए 'था' रखा।

"सब लोगों ने 'था' के बारे में अपनी-अपनी कल्पनाएँ कीं। आर्यसमाज में ऐसे विद्वान् तो अनेक थे जो सर्वथा कट्टरपंथी होने के कारण उस लेख के छिपे लेखक समझे जा सकते थे। परन्तु वे संस्कृत के विद्वान् नहीं थे और जो संस्कृत के विद्वान् थे, वे नवीन शैली की हिन्दी के लेखक नहीं थे। लोग इसी चक्कर में पड़कर यह न समझ सके कि 'था' के आवरण में छुपा हुआ कौन व्यक्ति है।

"ये तीन लेख पत्रकारिता के क्षेत्र में मेरे पहले पत्र थे। उनकी स्थायी उपयोगिता कुछ भी नहीं थी। तो भी मुझे यह अनुभव करके कुछ संतोष-सा हुआ कि जिसने भी उनकी स्तुति या निंदा जो कुछ भी की, खूब जोर से की। मैंने समझ लिया कि मैं और कुछ बनूँ या न बनूँ, लेखक अवश्य बन सकूँगा।"

सम्राट् पंचम जार्ज का राज्याभिषेक १९११ में दिल्ली में हुआ था। इस अवसर पर हुए दरबार में सम्मिलित होने के लिए वायसराय ने महात्माजी को भी आमंत्रित किया था। इसका लाभ उठाकर ब्रह्मचारी इन्द्र ने भी 'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण निकाला। दैनिक के संपादन का भार ब्रह्मचारी इन्द्र ने उठाया। दरबार के समाचार भेजने की व्यवस्था

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महात्माजी ने की। दैनिक 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रकाशन का अनुभव सम्पादक के ही शब्दों में देना उचित होगा :

"मैं अभी विद्यार्थी ही था, स्नातक नहीं बना था। दैनिक के सम्पादन का कार्य मैंने अपने जिम्मे लिया। गुरुकुल का प्रेस तो काफी बड़ा था। गंगा के पार उस वनस्थली में दैनिक पत्र के लिए सामग्री कहाँ से मिलती। तो भी वहुत प्रयत्न करके कुछ दिनों तक शायद दस दिन तक—'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण निकाला गया। आर्थिक दृष्टि से तो वह पूरी तरह घाटे का सौदा था—न स्थानीय बिक्री थी और न एजेन्सियों का प्रबन्ध। बस, इतनी संतोष की बात समझो कि दैनिक संस्करण निकालने के कारण 'सद्धर्म प्रचारक' की ख्याति हो गयी, और मैं यह अनुभव करने लगा कि दैनिक पत्र निकाल सकता हूँ।"

तरुणावस्था का मनोमन्थन

छात्रावस्था निर्माण की होती है। छात्रावस्था में मन में अनेक विचार उमड़ते हैं। अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और शिक्षा काल के साथ विलीन हो जाती है। अनेक आदर्श सामने आते हैं और बालू के तट पर बनाये घर के समान ढह जाते हैं। श्री इन्द्रजी का जीवन इसका सर्वथा अपवाद था, यह नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसमें एक स्थायी भाव है, समाज की सेवा; राष्ट्र की सेवा। इस सेवा के उपायों के विषय में की गयी प्रतिज्ञाओं में परिवर्तन होता रहा है, पर जीवन का ध्येय कभी नहीं बदला। यह विस्मयजनक प्रतीत होता है कि नवीं श्रेणी के छात्र ने मातृभूमि की सेवा का जो व्रत लिया, वह अखंड रहा, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ; बल्कि वह व्रत जीवन के अगले सब कार्यों को परखने की एक कसौटी हो गया।

मन में समय-समय पर क्या विचार उठे, यह जानने के लिए डायरी से कुछ पन्ने ही देना अधिक अच्छा होगा। ११-७-६५ वि० को डायरी में लिखा है :

"सब बड़े ब्रह्मचारियों ने हैदराबाद के जल-पीड़ितों की सहायता में घृतवाले भोजन का त्याग सात दिनों तक किया। क्योंकि मैं बीमारी से उठा था, तथा खाँसी के कारण ही न खा सकता था, अतः मैंने अपनी बारह रुपये की घड़ी फंड में दे दी कि मुझ पर जो एक भार है, यह ऋण है, उससे मैं कुछ उऋण हो जाऊँ।"

हैदराबाद के बाढ़ग्रस्तों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करने की यह कैसी उदात्त और मार्मिक घटना है। १९०८ में भारत की जो स्थिति थी, उसको ध्यान में रखकर इस दान का मूल्यांकन किया जाये तो इस दान के पीछे निहित भावना का सर्वांग रूप से आकलन किया जा सकेगा। दानदाता की उदात्त भावना की जरा कल्पना तो कीजिये। घड़ी फंड में दान नहीं दी, बल्कि कर्तव्य पालन के भाव से दी। महत्ता इस काम में है कि घड़ी का दानदाता अपने ऊपर सहायता न देने का ऋण भी मानता है। चरित्र की उच्चता का यह सूचक है।

एक बार ब्रह्मचारियों ने गुरुकुल को सफल बनाने के लिए आपस में मिलकर कुछ निश्चय किये और उनको प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया। एक स्वीकृत प्रस्ताव था :

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१) "जिन-जिन वातों को हम सब धर्मानुकूल मानते हैं, उनका पालन करना हमारा धर्म है।" दीपमाला किस प्रकार मनायी ? इसका उत्तर दिया गया है :

"राष्ट्रीय झंडा हमने मिलकर बनाया।" ख्याल रहे, यह एक छात्र ने प्रथम महायुद्ध शुरू होने से तीन साल पहले लिखा था। भारत का अपना झंडा होना चाहिये, यह कल्पना ही उस समय देश में नहीं जागी थी। क्रान्तिकारी केवल राष्ट्रीय झंडे का नमन करते थे। परन्तु बाहर उसकी चर्चा कहीं नहीं सुनायी देती थी। अतः श्री इन्द्र का यह बनाना वस्तुतः विलक्षण कल्पना सूचक है। अन्यत्र छात्र इन्द्र ने लिखा है :

"अब मन में ईश्वर पर विश्वास बहुत बढ़ता जाता है।" मातृभूमि की सेवा का व्रत धारण करने के साथ-साथ छात्र इन्द्र ने ईश्वर के प्रति अपना विश्वास भी दृढ़ किया। उसे अपने जीवन में साक्षात्कार करने का भी यत्न किया। योगाभ्यास द्वारा ईश्वर-दर्शन का विचार किया। छात्र इन्द्र की ईश्वर से प्रार्थना है—"ओजो असि ओजो मयि धेहि।"

पटियाला में आर्य नेता बड़ी संख्या में पकड़े गये थे। उन पर मुकदमा चलाया गया था। जमानत पर भी रिहा करने से इन्कार कर दिया गया था। छात्र इन्द्र के कोमल हृदय पर इसका भारी आघात पहुँचा। उसने विक्षुब्ध होने पर अपने को ही दंड देने का निश्चय किया। डायरी में लिखा :

"जब तक पटियाले के आर्य कष्ट मुक्त न होंगे, मैं नीचे सोऊँगा।" सहृदयता और संवेदनशीलता की यह सीमा ध्यान देने के योग्य है।

जन-मानस के साथ अपने मन को मिलाना सबके लिए सम्भव नहीं। साधारण जन के प्रति ममता तो हो सकती है, परन्तु अपने आपको उनमें मिला देना सरल नहीं है। जन-मानस को पढ़ने के लिए यह आवश्यक है। ब्रह्मचारी इन्द्र ने यह साधना की और वह इसमें कहाँ तक सफल हुआ, इसका प्रमाण निम्न उदाहरण वता रहा है :

डायरी में लिखा है :

"आज सायंकाल के समय—जब कि मैं घूमने गया, मैंने जंगल में हरे-हरे वृक्ष तथा सूखी हुई झाड़ियाँ तथा बूटियाँ देखीं—मैंने सोचा कि यही संसार की दशा है—कोई हरा है, कोई सूखा। फिर बरसात का ध्यान आया—जबकि सारा जंगल हरा होता है—उसके अन्दर रह नहीं सकते—जितनी ज्यादा हरियावल उतना ही अधिक मलेरिया। और बरसात भी सब जगह एक-सी नहीं होती। इस सम्भावना ने मेरे दिल में भाव उठाया कि क्या सारा संसार सुखी नहीं हो सकता ?

"विकास सिद्धान्त के अनुसार सोचा कि संसार अच्छे पन्थ की ओर जा रहा है, परन्तु निश्चय हुआ कि जो है, वह चाहिये यह निश्चय नहीं।"

भगवान् बुद्ध के मन में यही प्रश्न उठा था। अन्तर इतना है कि विद्यार्थी इन्द्र को इस भाव को पढ़ने के लिए रोगी मृत और बूढ़े के दर्शन पाने की आवश्यकता नहीं हुई। उसने जंगल में ही हरियाली और सूखी झाड़ी से वह निष्कर्ष निकाल लिया, जिसको पाने के लिए बुद्ध ने राज-पाट छोड़ दिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उच्च प्रतिमानों का आकलन

भारत में साधारण युवक उस व्यक्ति को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं, जिसके माता-पिता सन्तान के लिए बैंक में बड़ी मात्रा में धन नहीं छोड़ जाते, या जायदाद खड़ी करके नहीं दे जाते। इस देश में अमेरिका के समान बालक और तरुण, माता-पिता से जेब खर्च लेना आत्म सम्मान के विरुद्ध नहीं मानते। इसको वे आत्म गौरव को घटानेवाला भी नहीं मानते। देश के स्वाधीन हो जाने के बाद भी स्थिति नहीं बदली है। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री को यह बुरा लगता था कि वह बड़ा हो गया है और पिता के पैसे पर जी रहा है। पिता नहीं माने, यह दूसरी बात है। किन्तु युवा नेहरू ने पिता के पैसे पर जीवनयापन करना आत्मग्लानिपूर्ण माना था। छात्र इन्द्र को भी यह अखरता था कि उसके पिता उसके ऊपर प्रतिमास १५ रुपये खर्च कर रहे हैं। इस स्थिति के प्रति विद्रोह उत्पन्न हुआ और वह डायरी में प्रकट हुआ––"दिल में विचार उठा कि क्या यह धर्म-विरुद्ध नहीं है कि मैं अपने धर्मप्रिय पिता के १५ रुपये हर महीने खाये जाता हूँ––मैं अब बीस वर्ष का होने-वाला हूँ। क्या मैं अपने महान्, परन्तु निर्धन पिता की सहायता नहीं कर सकता?–– इसका उत्तर तीन दिन के अन्दर अवश्य सोच लूँगा।"

आत्म-गौरव की भावना की यह अत्यधिक उच्च सीमा है। युवा इन्द्र ने यह नहीं सोचा कि वह प्रति सप्ताह प्रचारक में तीन पृष्ठ की सामग्री देता है। उसके बदले कुछ नहीं लेता। क्या यह १५ रुपये के भी बराबर नहीं है? इसका विचार न करते हुए पिता का भोजन-व्यय देना जिस युवा को अखरता है, उसके आत्मगौरव और आत्मसम्मान के प्रतिमान की उच्चता की क्या सहज में कल्पना की जा सकती है?

पिता यदि सर्वमेध यज्ञ करते थे, तो पुत्र भी दान करने में पीछे नहीं रहता था। ऋषिकेश की यात्रा से लौटने पर प्रत्येक को भोजनार्थ छः पुराने पैसे मिलते थे। ब्रह्मचारी इन्द्र ने वे पैसे गुरुकुल के बाल औषधालय को दे दिये।"

१९६६ विक्रमी के अंत में डायरी लिखते हुए विद्यार्थी इन्द्र ने डायरी में लिखा––

"गुरुकुल से संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य, भारत का इतिहास, अर्थशास्त्र, पदार्थ विज्ञान, संस्कृत दर्शन आध्यात्मशाला, आर्यभाषा साहित्य का पंडित होकर निकलूँ।"

(२) "इसके लिए चार वर्ष गुरुकुल में रहूँ। (३) लोगों में सच्चे धर्म (मत कोई नहीं) का प्रचार करूँ। (४) सदा ब्रह्मचारी रहूँ––सदा सादा रहूँ। एक मंडल अपने ब्रह्मचारियों का बनाऊँ, जो प्रचार किया करें।

ब्रह्मचारी इन्द्र का छात्र जीवन आत्मार्पित था, यह ऊपर कहा गया है, वह छात्रा-वस्था की समाप्ति से कुछ पहले परमेश्वर के चरणों में पूर्णतया अर्पित हो गया।

"रात के समय सोये-सोये एकदम जाग खुली। ख्याल आया कि इस विचार का व्यक्ति यदि ईश्वर की सभा में बार-बार विश्वास प्रकट करे तो क्या आश्चर्य!"

वेदों के अध्ययन की ओर ब्रह्मचारी इन्द्र की रुचि प्रारम्भ से थी, स्वामीजी कृत भाष्य का पाठ प्रतिदिन वह करता था। पर स्वामीजी का भाष्य सम्पूर्ण ऋग्वेद का उपलब्ध नहीं है। इस कमी को उसने स्वतः पूरा किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शेष ऋग्वेद का भाष्य पूरा करने के लिए ब्रह्मचारी इन्द्र ने छात्रावास में वैदिक अनुशीलन समिति की स्थापना की। यह समिति बाद में साहित्य-परिषद् में परिणित हो गयी और यह आज भी गुरुकुल में विद्यमान है। इसके वे बराबर मंत्री रहे। इसकी ओर से साहित्य-पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया गया था।

शरीर साधना

एक प्रश्न पूछा जा सकता है, कि जन्म से ही एक फेफड़ा लेकर भी इन्द्रजी ने इतना काम कैसे किया ?

शरीर की अस्वस्थता के प्रति विद्यार्थी इन्द्र ने खेद प्रकट करते हुए डायरी में लिखा है—"मेरी जन्म-भूमि को मेरी जरूरत है, मेरे उद्देश्य इतने बड़े हैं, संसार की शान्त्यर्थ इतना काम करने को पड़ा है, किन्तु मैं क्या हूँ? मैं कितनी गलतियां करता हूँ, शरीर से अधिक काम ले नहीं सकता। क्योंकि शरीर में रोग घुसने का डर बना रहता है।"

शरीर-साधना में उपवासों का भी स्थान था। जगह-जगह लिखा है—"आज मध्याह्न भोजन नहीं करूँगा।" शाम को अनेक बार भोजन की जगह दूध लिया गया है।

कुश्ती डाक्टर ने पहले बन्द कर दी थी। किन्तु जब मुलतान में रहने पर भी खाँसी-जुकाम ने पीछा नहीं छोड़ा, तब कुश्ती फिर शुरू की गयी। घुड़सवारी भी की जाती थी। खेलों में क्रिकेट खेला जाता था। अच्छे खिलाड़ियों में गिनती थी।

ब्रह्मचारी इन्द्र ने गुरुकुल से स्नातक होने से पहले ही भावी कार्य के लिए अपने को बुद्धिपूर्वक और विचारपूर्वक तैयार किया था। जीवन का लक्ष्य निश्चित होने पर ही यह सम्भव था। लक्ष्य निश्चित था। एक स्थान पर आपने लिखा—"मैं बड़ा होकर आर्य सेवक-मंडल में प्रविष्ट होने की इच्छा रखता हूँ। अतः प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसके लिए अब से ब्रह्मचर्य पालन, त्याग-व्रत तथा विद्याध्ययन में बड़े यत्न से लग जाऊँगा।

"ईश्वर से प्रार्थना है कि वे मेरे इस व्रत को पूरा करने का मुझ में बल दें।" यह स्नातक होने से एक साल पहले निश्चय किया गया था। यहाँ भी त्याग और व्रत पर जोर दिया गया है। स्पष्ट है कि सारथी ने कभी रथ की उपेक्षा नहीं की।

गुणों का क्रमिक विकास

विद्यार्थी-काल में इन्द्रजी ने किस प्रकार अपने गुणों का विकास किया और कितनी साधना से अपने चरित्र का निर्माण किया, इसका विशद परिचय देने के लिए हम यहाँ इन्द्रजी के अन्यतम् सहयोगी श्री धर्मपालजी, सहायक मुख्याधिष्ठाता के 'संस्मरणों' का एक अंश उद्धत करते हैं—

"गुरुकुल में सबसे उच्च श्रेणी में सर्वप्रथम तीन विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। हरिश्चन्द्रजी, जयचन्द्रजी और इन्द्रजी। इन तीनों में प्रतिस्पर्धा रहती कि योग्यता में कौन सर्वोत्तम है। हरिश्चन्द्रजी तेजस्वी थे और उन्हें अपने पिता का शारीरिक तथा नेतृत्व करने का गुण प्राप्त था। इसलिए बौद्धिक क्षेत्र में जयचन्द्रजी और इन्द्रजी में प्रतिस्पर्धा रहती थी कि योग्यता में कौन अधिक है। इस स्पर्धा की चर्चा गुरुकुल में प्रसिद्ध हो उठी थी। उन दिनों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में एक इस प्रकार का जोश काम करता था कि संस्कृत में इतनी योग्यता प्राप्त की जाये कि शास्त्रार्थ में काशी के पंडितों का मुकाबला कर सके, उसी कारण वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पंडित हो गये। सैद्धान्तिक शास्त्रार्थ का तथा संस्कृत में भारतवर्ष का पद्ममय श्लोकों में इतिहास लिखना उनकी विद्वत्ता का प्रमाण है। वे दिन शास्त्रार्थ के दिन थे। हम छोटे थे, परन्तु चर्चा का विषय होने से हमें यह कौतूहल था कि मालूम करें कि इनमें कौन प्रथम रहता है। स्थिति यह थी कि योग्यता की दृष्टि से हरिश्चन्द्रजी के बाद इन्द्रजी अपना दूसरा स्थान स्थिरता से रखे हुए थे। बाद में जयचन्द्रजी इस संघर्ष के कारण गुरुकुल छोड़ गये। नियमित रूप से दैनिक अध्ययन का अभ्यास बचपन से हो जाने के कारण ही पंडितजी अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी इतना उत्कृष्ट साहित्य उत्पन्न कर सके।

इन्द्रजी ने बचपन से ही 'संयम' का अभ्यास किया था। संयम उनकी प्रकृति का अंग बन गया था--

सम्भवतः १९०५ या १९०६ में पंडित इन्द्रजी को निमोनिया हुआ। गुरुकुल में सनसनी छा गयी। मुझे याद है कि मैं भी अन्य विद्यार्थियों के समान यह देखने गया कि निमोनिया कैसा होता है और उसका पंडित इन्द्रजी पर क्या प्रभाव है? उनके शरीर का गठन कुछ इस प्रकार का था कि चेहरे से कभी कोई कमजोरी मालूम नहीं पड़ती थी। बीमारी के कारण डा० सुखदेवजी बहुत चिन्तित दिखाई देते थे। स्वास्थ्य-लाभ होने पर इन्द्रजी को पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के लिए धर्मशाला पहाड़ पर भेज दिया गया था। इसी बीमारी ने उनके एक फेफड़े को खराब कर दिया। पंडितजी ने जो ७१ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त की, वह केवल इस कारण से की कि वह प्रारम्भ से ही संयमी जीवन बिताने के अभ्यासी थे। आहार-व्यवहार में इन्द्रिय-संयम की यह दृढ़ भावना उनके सारे जीवन में बहुमूल्य हो गई थी और उसके दीर्घ जीवन का मूलमंत्र थी।

साहित्यिक रुचि

पं० इन्द्रजी का साहित्यिक जीवन भी सन् १९१० से प्रारम्भ हो चुका था। गुरुकुल से 'सद्धर्म प्रचारक' अखबार निकला करता था। मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुंशीरामजी गुरुकुल के कार्य से प्रायः बाहर रहा करते थे। इसलिए इस अखबार के सम्पादन का बोझ भी पंडित इन्द्रजी पर था। पंडितजी का ध्यान सामाजिक विषयों पर तो था ही, परन्तु राजनैतिक विषयों की ओर भी उनकी विशेष रुचि थी। पंडितजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं। वे दिन 'उग्र राष्ट्रीयता' के दिन थे और देश के बहुत से क्रान्तिकारी महानुभाव गुरुकुल में आ जुटे थे। श्री तिलक और लाला लाजपतराय के देश निर्वासन से राजनीतिक जगत् में बहुत गर्मी थी। इन सब परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि पंडितजी की साहित्यिक अभिरुचि प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेपोलियन बोनापार्ट, प्रिन्स बिस्मार्क, गेरीबाल्डी आदि की जीवनी लिखने के द्वारा प्रकट हुई। कानपुर के स्वर्गीय श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी 'प्रताप' में राजनैतिक टिप्पणियाँ दिया करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'सद्धर्म प्रचारक' की टिप्पणियों के कारण ही कहिये, वे पंडितजी से मिलने गुरुकुल पधारे। दोनों की शक्लें भी मिलती-जुलती थीं। वस्तुतः पंडित इन्द्रजी के इन साहित्यिक लेखों के कारण गुरुकुल के छात्रों में साहित्य-निर्माण की अभिरुचि हुई। पंडितजी का विषय को प्रकट करने का ढंग और भाषा पर जैसा अधिकार था, उसने हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त किया है।

एक स्मरण

गुरुकुल में दशहरे का त्यौहार बहुत उत्साह से मनाया जाता था और 'लंका विजय' उसका मुख्य आनन्द देनेवाला एक कार्यक्रम था। दो दल बनाये जाते थे। एक राम का दल और एक रावण का। राम दल का उद्देश्य यह होता था कि रावण दल से झण्डा छीनकर विजय प्राप्त करे। उस बार राम दल के मुखिया पंडित इन्द्रजी थे और उनके साथ बड़े विद्यार्थियों में पंडित बलभद्र और ब्रह्मानन्द आदि थे और विद्यालय की श्रेणियों में बलिष्ठ होने के कारण हम भी उस दल में रख दिये गये थे। दूसरी तरफ पं० चन्द्रकेतुजी व अन्य छात्र थे। चन्द्रकेतुजी अकेले ही बहुत बलवान थे और रावण दल के मुखिया थे। पंडित इन्द्रजी और चन्द्रकेतु में बहुत स्नेह था। जैसे ही पंडित इन्द्रजी के दल ने आक्रमण किया चन्द्रकेतुजी ने पंडितजी को दबोच लिया। हम लोग पंडितजी को छुड़ाने में लग गये। बड़ी मुश्किल से छुड़ा पाये, मगर पंडितजी में "न दैन्यं न पलायनं" की भावना थी। बार-बार हमारे साथ मिलकर आगे बढ़ते थे। आखिरकार राम की विजय तो होनी ही थी। पंडितजी हार न माननेवाले निश्चयात्मक बुद्धि के थे। वह जिस बात पर विचार कर एक बार निश्चय कर लेते, उसे छोड़ते नहीं थे। भयंकर विपत्तियों और आर्थिक कठिनाइयों में कभी भी पंडितजी को कातर और विचलित होते नहीं देखा गया।

एक जमाना था जब कि आर्यसमाज और सनातन धर्मियों में 'वर्ण व्यवस्था', 'मूर्तिपूजा' और 'श्राद्ध' पर शास्त्रार्थ हुआ करते थे। हरिद्वार में आर्यसमाज का केन्द्र 'गुरुकुल' था और सनातन धर्मियों का केन्द्र 'ऋषिकुल' था। शास्त्रार्थ का चैलेन्ज सनातन धर्मियों की ओर से दिया गया, उसे आर्यसमाज ने स्वीकार कर लिया और यह निश्चय हुआ कि गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ होगा। महामहोपाध्याय श्री पं० गिरधर शर्माजी संस्कृत तथा वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान् थे। वह सनातन धर्मियों की तरफ से शास्त्रार्थ के लिए आये। आर्यसमाज की तरफ से कौन विद्वान् खड़ा हो यह समस्या सामने आयी। सर्वसम्मति से पंडित इन्द्रजी को चुना गया। आर्यसमाज के हार-जीत का प्रश्न दाँव पर था। खूब शास्त्र-चर्चा हुई। इस शास्त्रार्थ का यह असर हुआ कि श्री पं० गिरधर शर्मा ने यह स्वीकार किया कि यह शास्त्रार्थ तो मन्डन मिश्र और शंकराचार्य के शास्त्रार्थ के समान हो गया है, इसलिए फिर कभी शास्त्रार्थ चर्चा होगी। इस प्रकार का अवसर कुछ महीनों के बाद सम्भवतः जून मास में फिर आ गया। आर्यसमाज को फिर चैलेन्ज दिया गया। पहले तो यह विचार हुआ कि शास्त्रार्थ करने की क्या आवश्यकता है, परन्तु उस दिन सायंकाल यह निश्चय कर ही लिया गया कि पीठ दिखाना ठीक नहीं। यह दूसरा शास्त्रार्थ हरिद्वार के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुमण्डल आश्रम में हुआ । हम सब लोग रात्रि को गुरुकुल से चले और चण्डीघाट पर से नाव पकड़ी । अपने आप ही खेने लगे । गंगा के बीच में एक ऐसा स्थान था, जो पानी के नीचे ढका हुआ तो था, परन्तु उथला था, नाव उसमें जाकर अटक गयी । चन्द्रमा की हल्की रोशनी थी । दोनों तरफ गंगा अपने पूरे प्रवाह में थी । पंडितजी साथ थे । कहाँ, कितना पानी है, इसका कुछ अन्दाज न होता था । इस अभियान के नेता स्वतःसिद्ध पं० इन्द्रजी ही थे । उनके उत्साहित करने पर ही उस रात के गहरे अन्धकार में नाव से नदी पार करने की बात सूझी थी । हम लोग पानी में उतर गये और नाव को धकेलने लगे, मुश्किल से नाव को धकेल पाये और किनारे पर ले आये । पंडितजी इस घटना का वर्णन बड़े आनन्द से किया करते थे ।

उदार दृष्टिकोण

गुरुकुल किन-किन कठिनाइयों व परिस्थितियों से गुजरा है, गुरुकुल की इस नौका को आपत्तियों में से सावधानता और चतुराई से निकाल ले जाने में इन्द्रजी का कितना हाथ है, यह बहुत कम लोग जानते हैं । पंडितजी का दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उदार और समन्वयवादी रहा है । सम्भवतः यह १९१९ की बात है । गुरुकुल में एक कालेज कौन्सिल थी, जिसके मन्त्री स्वर्गीय पं० चन्द्रमणिजी विद्यालंकार थे । वे वेद के उपाध्याय थे । उनके स्वभाव में बहुत जिद्द थी । महात्मा मुंशीरामजी संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्दजी बन गये थे और गुरुकुल से चले गये थे । उनके जाने से गुरुकुल में एक भूचाल-सा आ गया था । अनेक कारणों से महाविद्यालय के छात्र गुरुकुल छोड़-छोड़कर जा रहे थे, किसी केन्द्रीय प्रभावशाली व्यक्ति के न रहने से गुरुकुल की स्थिति डाँवाडोल हो उठी थी । सभा की प्रार्थना पर और श्री लाला रामकृष्णजी प्रधान के विशेष आग्रह पर स्वामी श्रद्धानन्दजी पुनः गुरुकुल आ गये––गुरुकुल से चले गये छात्र पुनः गुरुकुल आ गये थे । वातावरण शान्त हो गया था । विश्वविद्यालय के रूप में गुरुकुल में शिक्षा का विकास क्या हो, यह विषय बहुत पुराना था । इसकी रूपरेखा सम्पुष्ट हो रही थी । नियमित पठन-पाठन प्रारम्भ हो चुका था । पं० इन्द्रजी सहायक मुख्याधिष्ठाता होकर मुख्याधिष्ठाता के प्रतिनिधि रूप में कार्य करने लगे थे । मैं पहले साइन्स का विद्यार्थी था––बाद को कृषि विषय ले लिया । लायलपुर के प्रो० देशराजजी कृषि के उपाध्याय थे ।

कृषि विषय के अध्यापन और उसका प्रैक्टिकल कराने की किसी छोटी-सी बात पर प्रो० देशराजजी ने कुछ अपमान अनुभव किया और यह मामला कालेज कौन्सिल में आ गया । अधिकतर उपाध्यायों का मत था कि यह मामला दण्डनीय नहीं है, परन्तु पं० चन्द्रमणिजी का ऐसा विचार हुआ कि कुछ-न-कुछ दण्ड तो होना ही चाहिये, उनके स्वभाव में जिद्द थी । वह जिद्द कर गये । पं० इन्द्रजी ने मुझे बुलाकर मुझ से सब बात ज्ञात की और उस मामले को दण्डित किये जाने योग्य नहीं माना । इस घटना ने सिद्ध किया कि स्थिति की वास्तविकता को समझने और समस्याओं का हल करने में उनकी बुद्धि कितनी विलक्षण थी । यह विशेष गुण उनके भविष्य जीवन में सदा ही प्रकट होता रहा, जब भी कोई समस्या, चाहे उनके जीवन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से सम्बद्ध हो, चाहे अन्य प्रबन्ध सम्बन्धी हो, सभा-सोसायटी की समस्याएँ हों। उनकी इस संतुलित परिपक्व बुद्धि के कारण उनसे सम्बन्धित संस्थाएँ भी उत्तरोत्तर विकसित होती चली गयीं।

इस काल में गुरुकुल के शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों पर भी बहुत विचार होता रहा। सन् १९११ में जब गुरुकुल काँगड़ी का वजट प्रस्तुत हुआ था तो गुरुकुल की संचालन सभा में दो दल हो गये थे। एक दल का यह कहना था कि गुरुकुल काँगड़ी को 'शिक्षणालय' बनाना ठीक नहीं और न ही उसे 'विश्वविद्यालय' बनाना चाहिये। दूसरा पक्ष जो गुरुकुल के निर्माण कर्त्ताओं का था, जिनका मत था कि गुरुकुल को केवल संस्कृत की पाठशाला. वनाने के स्थान पर सभी विषयों की उच्च शिक्षा का 'विश्वविद्यालय' बना देना चाहिये। यह विवाद सन् १९११ में हुआ और सन् १९१२ में पहला दीक्षान्त समारोह हुआ और उसके वाद निरन्तर सभी विश्वविद्यालयों के समान दीक्षान्त समारोह होते रहे। तथापि गुरुकुल काँगड़ी को 'विश्वविद्यालय' का रूप देने का विषय विवादग्रस्त-सा ही रहा। पं० इन्द्रजी सन् १९२० में गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता पद पर कार्य कर रहे थे। गुरुकुल को एक उत्कृष्ट विश्वविद्यालय बनाने का निश्चय सन् १९२१ में अन्तिम रूप से हो गया था और इस दिशा में पं० इन्द्रजी का बहुत योगदान रहा। पं० इन्द्रजी प्रायः यह वात कहा करते थे कि स्वामीजी के निश्चय किये हुए कार्यों को पूरा करने में अपने जीवन की सार्थकता समझूंगा। इस महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा, लाखों की सारी सम्पत्ति को गुरुकुल के लिए दान देने के विचार को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। सद्धर्म-प्रचारक का संचालन किया, 'आर्यसमाज का इतिहास' लिखा और गुरुकुल की उन्नति में अपना जीवन अर्पित कर दिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भावी जीवन के प्रश्न

धीरे-धीरे गुरुकुल काँगड़ी 'गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी' में बदल गया। उसने डिग्रियाँ, उपाधियाँ देना प्रारम्भ किया। इसका प्रारम्भ हुआ ब्रह्मचारी इन्द्र के वेदालंकार होने और बड़े भाई हरिश्चन्द्र के विद्यालंकार बनने के साथ। १९१२ के अन्त में पंचम-जार्ज भारत आये थे और दैनिक 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादक श्री इन्द्र ने एक पत्र लिखकर सम्राट् से प्रार्थना की थी कि सम्राट् भारत में ही रहे। माडरेट राजनीति से घृणा करते हुए भी श्री इन्द्र उससे अभिभूत थे। उसके प्रभाव से बाहर अपने को नहीं ले जा सकते थे। स्नातक होने के दस साल का काल प्रोफेसर इन्द्र के जीवन में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था। तब इस काल में पढ़े हुए ज्ञान को अनुभव की कसौटी पर कसा गया था। नये अनुभव प्राप्त किये गये। और विचार-मंथन हुआ। कार्य क्षेत्र का अंतिम रूप से निश्चय किया गया। १९२२ के बाद स्थिर रूप से एक स्थान में बैठकर जो कार्य किया गया, उसके लिए इस समय तैयारी की गयी। विचार स्थिर किये गये। दैनिक पत्र निकालने का पुनः परिश्रम किया गया। इसी काल में गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। इस प्रश्न को लेकर भी पंडित इन्द्र ने काफी विचार किया था।

गुरुकुल में संस्कृत साहित्य का उपाध्याय बनने के पहले प्रो० इन्द्र को दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ निरन्तर आठ मास रहने के बाद में इन्द्रजी ने सोचा :

"मेरा संसार ही बदल गया है, गुरुकुल से दिल्ली चला आया हूँ। आठ मास हो गये। पहले जो सत्य पथ केवल पढ़कर और सुनकर जाना था, उसका अब अनुभव हुआ। ऐसा लगा कि सब स्थानों में वस्तुतः दुःख का राज्य है। भारत में लोकसेवकों की बड़ी आवश्यकता है। उसका अन्त नहीं। लोग कहते हैं कि गुरुकुल के स्नातक बनकर क्या कर सकते हैं? मैं समझता हूँ कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष सौ नये स्वार्थ त्यागी पचास वर्ष तक समाजसेवक तैयार होते रहे तो भी यह काम पूरा नहीं हो सकता।" (डायरी से)

आगे आप लिखते हैं :—

"मैंने खूब सोचा है कि मातृ-भूमि कई पुत्रों का बलिदान चाहती है। बलिदान, यह नहीं कि एक क्षण-भर जीकर मृत्यु, अपितु अपना दीर्घ जीवन केवल मातृभूमि को अर्पित कर दें। कार्य अनन्त हैं, दुःख अतुल हैं।"

उन्हीं दिनों विवाह के सम्बन्ध में भी आपके मस्तिष्क में मन्थन चलता रहा। आपने लिखा :—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"मैं पिताजी के सामने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प कर चुका हूँ।

मैं यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि बिना किसी असाधारण प्रेरणा के अपने जीवन में विवाह न करूँगा, और ब्रह्मचारी रहूँगा।"

दिल्ली आने पर प्रो० इन्द्र की सर्वतोमुखी प्रतिभा फूट पड़ी। दिल्लीवास आठ मास का था। इन्द्रजी ने (१) आर्यसमाज (२) आर्यकुमार मित्र सभा। (३) हिन्दू युवक सभा (४) नागरिक प्रचारिणी सभा, इन सबमें समान भाव से कार्य करना शुरू कर दिया था। 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक का सम्पादन भी करते थे। 'प्रिंस विस्मार्क' का लिखना दिल्ली में ही प्रारम्भ हुआ। 'शाह आलम की आँखें और गुलाम कादिर' पहला उपन्यास भी इसी समय धारावाहिक रूप से 'सद्धर्म प्रचारक में' छपता रहा। इस समय युवा इन्द्र का विवाह अत्यधिक आवश्यक था। क्योंकि सार्वजनिक जीवन से प्रो० इन्द्र को परम संतोष नहीं था। उन्हें शिकायत थी : "यहाँ वालों में किसी प्रकार तो जागृति हो। मुझे दुख इस बात का है कि पूरा-पूरा मुझसे मिलकर कार्य करनेवाला कोई प्राणी नहीं मिलता।"

युवा इन्द्र की शक्ति का आदर और सम्मान था। वह हिन्दू युवक सभा का उप-सभापति और नागरिक प्रचारिणी सभा का मंत्री चुना गया था। पदों का बोझ भार होने लगा था। अतः मन में संकल्प-विकल्प उठे। उसने लगाम लगायी, और प्रोफेसर इन्द्र ने निश्चय किया—"मार्ग मुझे सोच-समझकर तय करना चाहिये। दिल्ली के जीवन से युवा इन्द्र को उत्साह और प्रेरणा नहीं मिलती थी। उसे अनुभव होता था :

"दिल्ली की सामाजिक दशा विचित्र है। भय का राज्य है। लोग समय देना नहीं चाहते। और उत्साह होने पर भी हिचकते हैं। सामाजिक सेवा का आधार इस समय सार्वजनिक रूप से सर्वसाधारण में हलचल मचाना है। हलचल मचाने का मुख्य उपाय लोगों में सही शिक्षा का प्रचार करना है। लोगों को मिथ्या ज्ञान से उठाना है, यह समाज का कर्तव्य है।"

दिल्ली में रहते हुए प्रो० इन्द्र के सामने विराट् संसार था। गुरुकुल में केवल आर्य-समाज था और गुरुकुल था। परन्तु दिल्ली में सारा मानव समाज था। अतः उसका विचार बदल रहा था। मन में संकल्प उठ रहा था कि "व्यर्थ में विरोधी क्यों बढ़ाये जायें। मेरा कार्य सर्वव्यापी क्यों न हो।" यह क्षणिक विचार जीवन का मुख्य उद्देश्य हो गया था। १६ जून १९१३ को प्रो० इन्द्र ने अपनी डायरी में लिखा है—

"कल प्रातः परमात्मा की कृपा से हृदय में बड़ी खलबली हुई। देर तक ईश्वर का धन्यवाद करता रहा। संकल्प, मेधा और सफलता की प्रार्थना की। खूब सोच-विचार करके निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किये।

"आर्यों की जन्म-भूमि आर्यावर्त को उसी ऊँचे स्थान पर पहुँचाना, जिस पर और सभ्य देश पहुँचे हुए हैं। यह सब मानसिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक स्वाधीनता के बिना असम्भव है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरा कार्य होगा :

(१) भारतवासियों के जीवन में सच्चे धार्मिक भाव उत्पन्न करना।

(२) भारतवासियों में उपयोगी राष्ट्र शिक्षा का प्रचार करना।

(३) जिन्हें नीच या अछूत जातियाँ कहा जाता है, उन्हें ऊँची जातियों के समान कर देना।

(४) राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करना।

(५) धार्मिक जातीय और पर प्रांतीय भेद छोड़कर लोगों में एक भारत और भारतीय जाति के भाव पैदा करना—यह समझाना कि देश बन्धु धर्मबन्धु है, देश शत्रु धर्मशत्रु है।

(६) भारतवर्ष से सामाजिक कुरीतियों को दूर करना।"

मानसिक ऊहापोह

इन कामों को देखकर आश्चर्य होगा। यह ध्यान रखना चाहिये कि पहला महायुद्ध शुरू होने से चौदह मास पहले युवा इन्द्र ने यह कार्यक्रम अपने सामने रखा था। यह फार्मूला कि देश बन्धु धर्मबन्धु है और देश शत्रु धर्मशत्रु है, विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है। राष्ट्रीय एकता का यहाँ सुन्दर सूत्र मिलता है। सेक्युलर स्टेट की कल्पना का आधार यहाँ विद्यमान है। राजनीति, समाज-व्यवस्था से धर्म को दूर ही रखा गया है। एक भारतीय राष्ट्र-निर्माण का यहाँ दृढ़ संकल्प है। भारतवर्ष के प्रति दृढ़ विश्वास है, जो कि आज भी दुर्लभ है। इस कार्य को पूरा करने के लिए प्रो० इन्द्र ने जून १९१३ में जो उपाय सोचे थे वे इस प्रकार हैं :—

(७) उद्देश्य तथा कार्यों के अनुकूल व्याख्यानों और कथाओं द्वारा अपने विचारों का प्रचार करना।

(८) अपने पुराने इतिहास की खोज करना।

"मेरे व्रत के अनुसार मनुष्य सेवा प्रथम कर्तव्य है।"—इस स्थिति में प्रोफेसर इन्द्र आर्य समाज के साथ अपने को कैसे सीमित रख सकते थे। उनके मन में संकल्प-विकल्प उठ रहे थे—"आर्य समाज में प्रविष्ट होकर मुझे कार्य नहीं करना है। इसलिए अब समाजविषयक लेखों को समाप्त कर दूँगा। ये लेख मेरे विचारों का प्रवाह लोगों तक पहुँचाने में आवश्यक थे और पर्याप्त थे।"

दिल्ली-निवास अल्पकालिक था। बड़ौदा, बम्बई और पूना की यात्रा के बाद स्नातक इन्द्र प्रो० इन्द्र होकर गुरुकुल लौट गया। यह यात्रा भी खूब प्रेरक हुई है। क्योंकि इन शहरों की यात्रा के अनुभव लिखते हुए यात्री इन्द्र ने लिखा है—"हर एक भारतीय युवक को सारे भारत की सैर अवश्य करनी चाहिये। पीछे से चार-दिन के लिए गुरुकुल गया था। अब की बार खास आनन्द आया। घर के समान प्रतीत हुआ। वर्षा ऋतु का आनन्द और भी अधिक था।"

इसी समय युवा इन्द्र को अपनी आर्थिक स्थिति का भी ध्यान आया और उसको लगा—"मेरा व्यय बहुत बढ़ गया है। इन्द्र मोहन और अम्बाशंकर का सारा आने-जाने और घूमने-घामने का भार भी मेरे ऊपर। बड़े भाई और पिताजी को व्यय देना मेरे ऊपर है। फिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपना व्यय भी है। उस पर भी इस डेढ़ मास में लगभग पाँच सौ व छ सौ मील का चक्कर लगाया। लगभग सवा सौ रुपये की पुस्तकें मँगवाई। इससे तो बिलकुल दिवाला ही निकल गया। आगे के लिए दृढ़ निश्चय है कि—

(१) आगे से अधिक घूमना बन्द। दो-तीन मास तो बिलकुल ही नहीं हिलूँगा।

(२) सार्वजनिक कार्य पर जाना सार्वजनिक व्यय से होगा।

(३) अब एक मास में दस रुपये से अधिक की पुस्तकें न मँगवाऊँगा। यह नियम तीन मास तक चलेगा। पत्र के साथ एक 'पुस्तक-संग्रह' चलाने का भी निश्चय किया।"

सहसा दिल्ली से उठकर गुरुकुल जाना पड़ा। बिस्मार्क के अभी दो परिच्छेद लिखे गये थे। मर्यादा (श्री कृष्ण कान्त मालवीय) के लिए चीन की उन्नति क्यों हुई लेख लिखा गया था, कि प्रो० इन्द्र के समक्ष प्रश्न था, वह गुरुकुल रहकर सेवक बने या नहीं? बड़े भाई श्री हरिश्चन्द्र ने आर्यसमाज के ५२ मन्तव्यों को मानने के पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया और दो साल की छुट्टी लेकर दिल्ली पहुँच गये। उनकी जगह तुलनात्मक धर्म और साहित्य पढ़ाने के लिए प्रो० इन्द्र की नियुक्ति हुई। इस नये जीवन की आपके मन पर इस प्रकार प्रतिक्रिया हुई :

गुरुकुल सेवाकाल का प्रारम्भ

"सृष्टि पलट गयी। मैं दिल्ली से गुरुकुल चला आया, और हरिश्चन्द्रजी दिल्ली चले गये। मैं केवल यहाँ भोजन और वस्त्र लेकर पढ़ाने लग गया और मुझे पढ़ाने के कार्य में लगभग कृतकार्यता प्राप्त होती दिखाई देती है। मेरा असली स्थान यही होना चाहिये। बाहर की हलचल में आत्मिकोन्नति नहीं हो सकती।

"यहाँ आने से पिताजी की सेवा मैं अधिक कर सकता हूँ। इसमें उन्हें भी आराम मिलता है और मैं भी अपना कर्तव्य पालन कर सकता हूँ।

"परम पिता की मेरे ऊपर कृपा सदा से थी और अब भी है, इसका मुझे विश्वास हो गया है। इससे चिन्ता नहीं होती। मैं उत्पन्न ही जाति-सेवा के लिए हुआ हूँ। यह निश्चय भी मुझे हो गया है कि परमात्मा इस विचार को स्थिर रखे। मेरे कार्य के शेष भाग शायद मुझे साधनों के पीछे ज्ञात होंगे। परन्तु अभी इतना ज्ञात है कि मेरा कार्य आर्य जाति को पुराने गौरव पर लाना है। मैंने भगवान् को साक्षी करके जीवन पर विचारा तो वह दोषों का पुंज नजर आया। सब दोष एक दूसरे से बढ़कर जँचने लगे। तब सबसे पूर्व सत्य का व्रत लिया। अभी तक उसमें पूरी तरह से कृत कार्य नहीं हुआ। लेकिन प्रभु की कृपा रही तो हो जाऊँगा। हे प्रभो, शक्ति दीजिये, जिससे मैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य का व्रत निभा सकूँ। यत्न करूँगा कि मैं प्रतिदिन का कार्य लिखा करूँ। इससे मैं अपने आत्मा की खोज कर सकूँगा।"

गुरुकुल में आने के साथ वृत्तियाँ अन्तरमुखी हो गयीं। प्रो० इन्द्र अब आत्मा की खोज में प्रवृत्त हुए। अन्न-वस्त्र लेकर गुरुकुल में अध्यापन का कार्य करते हुए भी समाज सेवा का व्रत छूटा नहीं। पर क्षेत्र अवश्य बदल गया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वतन्त्र भारत के स्वप्न

प्रिन्स विस्मार्क लिखते हुए उपाध्याय इन्द्र स्वतन्त्र भारत का स्वप्न देखने लगा था। मन में पूछता था "हम क्या हैं ? क्या भारतवर्ष में भी वे अवसर आ सकते हैं, जिनमें प्रिन्स विस्मार्क ने काम किया था। हमारे लिए क्या सब रास्ते रुके हुए हैं ? प्रो० इन्द्र ने डायरी में लिखा : मेरा आशावाद मुझे उत्तर देता है कि स्वतन्त्र भारत में इससे भी अधिक अवसर हैं।" गुरुकुल का युवा उपाध्याय स्वतन्त्र भारत के, विशाल जर्मन के समान संयुक्त भारत के दर्शन कर रहा था! तभी १९४७ में देश के विभाजित होने पर उसे अपार व्यथा हुई ? उसने अपने जीवन के स्वप्नों को टूटते हुए देखा। और विभाजन के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी।

तपोवन में रहते हुए भी प्रो० इन्द्र बाहर के प्रभावों से सर्वथा मुक्त नहीं रहता था। १९१३ में दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी का सत्याग्रह चल रहा था। वहाँ से पिता गोडफ्रे गुरुकुल आये थे। गाँधीजी का हाल उन्होंने सुना था। युवा उपाध्याय उस कहानी को सुनकर विह्वल हो गया। उसने झट प्रतिज्ञा की "आज से विना किसी विशेष निमित के स्वादिष्ट भोजन छोड़ता हूँ। यह प्रण तब तक जारी रहेगा, जब तक दक्षिण अफ्रीका के निवासी अपने उचित अधिकारों को न पा जायेंगे।"

"प्रवासी भारतीयों के प्रति कितनी गहरी संवेदना थी ! इसी संवेदना के कारण 'प्रवासी भारतवासी' पुस्तक की समीक्षा करते हुए सम्पादक इन्द्र ने अग्रलेख में बहुत गवेषणापूर्ण तथ्य कहे थे।

प्रवासी भारतीयों के प्रति उनका हृदय समरस हो गया था। यह घटना बताती है कि प्रो० इन्द्र अपने पिता के समान बहुत आगे की सोचता था। इस समय तक अभी गोखले ने दक्षिण अफ्रीका की सहायता के लिए देश से अपील नहीं की थी। इसकी प्रतीक्षा विना प्रो० इन्द्र ने सायंकाल अन्न का त्याग कर दिया। उनका यह कार्य एक होनहार भारतीय नेता के योग्य ही था।

पहले-पहल प्रो० इन्द्र का निश्चय आजन्म ब्रह्मचारी रहने का था। पिता को यह सूचित किया जा चुका था। लेकिन रिश्तेदारों की ओर से बराबर विवाह का दबाव पड़ रहा था। इसकी उपाध्याय इन्द्र के मन पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसे उसने अपनी डायरी में लिखा : "अपना विवाह यदि किसी के साथ करूँगा तो राष्ट्र के साथ। मातृभूमि और मेरे बीच में कोई व्यवधान नहीं आ सकता।"

किन्तु प्रो० इन्द्र इस कल्पना पर अटल नहीं रह सके। किसी भी बात पर अटल हो जाना, उनके स्वभाव में भी नहीं था। परिस्थितियों से समझौता करते हुए ही वे जीवन में आगे बढ़ते थे।

गुरुकुल में प्रो० इन्द्र लौट आये थे। पर सदा के लिए नहीं। इस काल को वह देश और धर्म की सेवा की तैयारी का समय समझते थे। वस्तुतः वह यहाँ चार-पाँच साल बाद पुनः दिल्ली लौटने की तैयारी कर रहे थे। वह सम्पूर्ण भारतीय समाज के सेवक बनना चाहते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थे ; केवल गुरुकुल का स्थायी सेवक नहीं। गुरुकुलीय सेवा के सम्बन्ध में उन्होंने डायरी में लिखा है :—"गुरुकुल में पुनः सेवा करने का कार्य महात्माजी के लिए है। और मेरी प्रवृत्ति के अनुकूल भी है, किन्तु इच्छा के अनुकूल नहीं।" विजय हुई प्रवृत्ति की, इच्छा की नहीं। क्योंकि गुरुकुल की सेवा करते हुए आपने यह भी संकल्प किया कि : "यहाँ रहते हुए मैं सबके लिए सरल तथा सुबोध पुस्तक जो आत्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों को बताये लिखूंगा।"

स्पष्ट है कि गुरुकुल का स्थिर सेवक बनने के बाद भी राष्ट्रसेवा और साहित्य सेवा का संकल्प भुलाया नहीं गया, वह जारी रहा।

गुरुकुल काँगड़ी पहुँचकर प्रो० इन्द्र २७ फाल्गुन संवत् १९६० को आर्यसमाज के मंत्री बने। मंत्री होने पर आपने इस बात पर बड़ी लज्जा का अनुभव किया कि १२ साल बाद भी अभी तक समाज ने आस-पास के गाँवों में कोई काम नहीं किया था। आपने मंत्री बनते ही काँगड़ी ग्राम में पाठशाला की स्थापना की।

अंग्रेजी के प्रलोभन का त्याग

लोक सेवा के व्रती प्रो० इन्द्र के सामने एक और प्रलोभन आया। वह अंग्रेजी में लेख लिखें, तो इससे नाम होगा और धन भी प्राप्त होगा। प्रलोभन बड़ा था। परन्तु लोक-सेवा के व्रती उपाध्याय ने इस प्रलोभन पर विजय पायी। अपनी डायरी में उन्होंने स्वयं लिखा :—

"इस समय देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि सर्वसाधारण को शिक्षा दी जाये। केवल पाठशालाओं से ही नहीं, हर एक भाषा में उत्तम तथा जीवन योग्य पुस्तकों की आवश्यकता है। यह क्यों पूरी नहीं होती ? अंग्रेजी लिखना परम धर्म समझा जाता है। इससे लाभ क्या ? अंग्रेजी के लिए काम करनेवाले बहुत हैं। इसलिए मैं अपनी भाषा में ही लिखूंगा। अंग्रेजी लिखने के प्रलोभन में न पड़ूंगा।"

नाम, धन और लाभ पर लात मारकर प्रो० इन्द्र ने हिन्दी सेवा का व्रत ग्रहण किया। हिन्दी की सेवा कितनी उदात्त भावना से प्रो० इन्द्र ने की उसकी गवाही उपर्युक्त निश्चय दे रहा है। मातृभूमि और जनता की सेवा अंग्रेजी के द्वारा नहीं हो सकती, वह तो हिन्दी द्वारा ही सम्भव है, इस सत्य का दर्शन प्रो० इन्द्र ने १९१३ में ही कर लिया था। कांग्रेस ने इस सत्य का दर्शन आज भी नहीं किया। यह देखते हुए प्रो० इन्द्र की दूरदर्शिता और बुद्धि-मत्ता का लोहा मानना पड़ता है।

उपाध्याय इन्द्र में भारतीयता और राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी हुई थी। उसके सामने एक और प्रलोभन आया : इंग्लैण्ड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करे। अंग्रेजी डिग्री लाये। छात्रवृत्ति गुरुकुल देने को तैयार था। परन्तु राष्ट्रवादी इन्द्र का दिल नहीं माना। उसकी आत्मा विद्रोह कर उठी। उसका विक्षोभ इन शब्दों में फूटा—"हमारी दिमागी गुलामी का चिह्न है कि हम यूरोप के पढ़े हुए की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। गवर्नमेंट तो जान-बूझकर इनकी प्रतिष्ठा करेगी ही। इससे अंग्रेजी उपाधिवाले 'अंग्रेजों की' प्रतिष्ठा बहुत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अधिक होती है। विदेशी डिग्री की प्रतिष्ठा करना दिमागी दासता है। हाँ, जहाँ गुण हैं, वहाँ तो प्रतिष्ठा उचित ही है। इसलिए विदेशी डिग्री पाकर प्रतिष्ठा बढ़ाने का विचार सर्वथा छोड़ दूँगा। हाँ विदेश में घूम आने में हर्ज नहीं।" उन्हीं दिनों प्रो० इन्द्र ने एक और संकल्प किया ; यह भी उनकी डायरी में लिखा है :

"जहाँ तक हो सकेगा अपने काम अपने हाथ से करूँगा। देश के सेवकों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।"

यहाँ हम स्वाधीनचेता स्वाभिमानी इन्द्र के दर्शन करते हैं। मन हृदय तथा सभी रीति से वे विशुद्ध भारतीय थे। और भारतीय ही रहना चाहते थे। आज भी भारत में विदेशी डिग्रियों के प्रति मोह विद्यमान है। शिक्षा की समाप्ति तभी मानी जाती है, जब युवा विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करे। स्वास्थ्य मंत्री डा० सुशीला नायर के विरोध पर भी भारत सरकार ने चिकित्सा का अध्ययन करने के लिए छात्रों को विदेश जाने की अनुमति देना स्वीकार किया है। विदेशी विनिमय की दुर्लभता भी इसे रोक न सकी। अतः युवा इन्द्र का लन्दन जाकर डिग्री लाने से इन्कार करने के पीछे जो भारतीय गौरव की भावना थी, उसका महत्त्व बहुत अधिक है। प्रो० इन्द्र में राष्ट्रीय तेज बड़े दिव्य रूप में प्रकट हुआ था। इसे मानसिक स्वाधीनता के संग्राम में प्रो० इन्द्र की पवित्र आहुति कह सकते हैं। बौद्धिक स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का लेखक इसे सदैव सादर स्मरण रखेगा। यह आहुति उस समय दी गयी, जब ब्रिटिश शासन को पूर्णतः हटाने के लिए कांग्रेस सोच तक नहीं सकती थी।

काव्य-रचना की अभिरुचि

श्री इन्द्रजी में हिन्दी और संस्कृत में काव्य रचना करने की अद्भुत प्रतिभा थी। हिन्दी गीतों की रचना उन्होंने तरुणावस्था में अधिक की। किन्तु संस्कृत में कविता करना शरीर त्याग से ४-५ दिन पहले तक जारी रहा। इन्द्रजी सहृदय कवि थे। काव्य-मर्मज्ञ थे।

इन्द्रजी सोद्देश्य कविता करते थे। मातृभूमि की वन्दना, ईश-स्तुति आदि ही प्रायः उनके गीतों के विषय होते थे। उनके विद्यार्थी काल में बनाये गीतों के कुछ अंश निम्न प्रकार हैं—

कुल वन्दना

"प्राणों से हमको प्यारा कुल हो यही हमारा
विष देनेवालों के भी, बन्धन कटानेवाले
ऋषियों का जन्मदाता, कुल हो यही हमारा।
कट जाये सिर न झुकना, यह मंत्र जपनेवाले
वीरों का जन्मदाता कुल हो सदा हमारा।
स्वाधीन दीक्षितों पर, सब कुछ बहानेवाले
धनिकों का जन्मदाता, कुल हो सदा हमारा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भागीरथी-सा पावन, हिमगिरि-सा तुंग ऊँचा
भटकों का मार्ग दर्शक, कुल हो सदा हमारा।
आजन्म ब्रह्मचारी, ज्योति जगा गया है
अनुरूप पुत्र उसका, कुल हो सदा हमारा ।।"

प्रार्थना गीत

तब वन्दन हे नाथ, करें हम ।।
तव चरणन की छाया पाकर,
शीतल सुख उपभोग करें हम ।
भारत जननी की सेवा का
व्रत भारी व्रतनाथ धरें हम ।
माता का दुःख हरने के हित,
न्यौछावर निज प्राण करें हम ।
पाप शैल को तोड़ गिरावें,
वेदाज्ञा ही शीश धरें हम ।
फूले गुरुकुल की फुलवारी,
विद्या मधु का पान करें हम ।
राग-द्वेष को दूर भगाकर,
प्रेम-मंत्र का जाप करें हम ।
सायं-प्रातः तुझको ध्यावें,
दुःख सागर के पार तरैं हम ।।"

ईश-स्तुति

अद्भुत महिमा जाल,
प्रभु का सार न इसका जाना जग ने बीता अनहद काल ।
आज नृपति जो कल वह बन्दी, लखपति हो कंगाल ।
चम चमके भर-भर बरसे छिन में फटे घन जाल ।
दिनकर चाँद ग्रसे राहू ने उलझा जग जंजाल । प्रभु का......
याद करो निशि दिन उस प्रभु को, बीत रहा है काल ।

स्वर्णदेश का गीत

भूतल का गहना चमकीला स्वर्ण देश यह मेरा है ।
धन की खान, धर्म का सुन्दर सुख आगार बसेरा है ।।
इसको प्रकृति मात ने पर्वत-दुर्ग जाल से घेरा है ।
जल निधि की उत्ताल – तरंगों का दक्षिण में डेरा है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मैं हूँ इसका रक्षक ईश्वर, परम सहायक मेरा है।
मैं हूँ स्वर्ण देश का वासी मेरा प्रेम घनेरा है।
जयजय स्वर्ण देश की बोलो, देश दिव्य यह मेरा है।

मातृभूमि का गीत

हे मातृभूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ
मैं भक्ति भेंट अपनी सेवा में तेरी लाऊँ।
माथे पै तू हो चन्दन, छाती पै तू हो भाला
जिह्वा पै गीत तू हो मैं तेरा नाम गाऊँ।
वह पुण्य नाम तेरा प्रतिदिन सुनू सुनाऊँ।
तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही गीत गाऊँ।।
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढ़ाऊँ।।

वीर रस की कविता

जागो प्रमाद छोड़ो, कसकर कमर खड़े हो,
देखो, तुम्हारी जननी, तुमको बुला रही है।
दुनिया को फिर जगा दो, सुन ले वह ध्यान धर के,
माँ के विजय की भेरी नभ को गुँजा रही है :
तन-मन निसार कर दो, बलियों से कुंड भर दो,
फिर देखो वह उधर से जयमाल आ रही है।

बसन्त

कैसा यह वसन्त-काल जग-निहाल आया।
हँस रहा है सकल विश्व उड़ी शीत-माया।।
प्रकृति देवता ने मानो व्याह यह रचाया।
उसका दस दिशा में दिव्य – मोद – जाल छाया।।
कर किलोल पक्षियों ने मधुर गीत गाया।
कुसुम-केशरावली ने मानो तिलक-सा लगाया।।
विश्व की विशाल वेदि प्रकृति-रूप जाया।।
समय से बँधे हैं गाँठ मधुर पर्व आया।"

जन्मोत्सव—सन्देश

अपगतवति शीते पीत–पीते वनान्ते।
मधुकर–कुल–गीतैः पूर्यमाणे दिगन्ते।
बहुल–सुरभि–सान्द्रे गन्धवाह–प्रवाहे।
कुलभुवि कुलबन्धून् द्रष्टुकामोऽस्मि बन्धुः। १।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अरुणिममधुराणां वन्य–रंगस्थलीनाम् ।
अनुपम-शिशिराणां पुण्यतोयावलीनाम् ।
प्रिय-रुचिर-तमानां सस्मित-स्वागतानाम् ।
स्मरतिरिह समोदं साश्रु जन्मोत्सवानाम् ।२।
गुरुकुलमनुपत्रं चेतसा धावितोऽस्मि ।
"विजय"-निगड-बद्धःखिन्न खिन्नः स्थितोऽस्मि ।
गुरुकुलभुवि यातं मानसं मे हठेन ।
जड़तरमिह शेते मद् वपुः कार्यवद्धम् ।३।
हसतु दिवस-काले वन्धु-वक्त्रारविन्दम् ।
निशि भय-शम शीला कौमुदी कांतिमेतु ।
भजतु कुलमिदानीं प्राक्तनीं देव्यसेव्यां ।
अमृत-ह्रद-समानां रम्य-रम्यामवस्थाम् ।४।
गुरुकुल-जननीयां रक्षिताचार्यवर्यैर्जनयतु जनसेव्यान् देशभक्तानुदारान् ।
अपनयतु मनःस्थं कलमषं खेदमंहः, सपदि कुलजनानां पुण्यपालः परेशः ।।५।।

——इति प्रार्थयति——इन्द्रः ।

(हिन्दी भाषांतर)

गुरुकुल जन्मोत्सव की स्मृति में

(१)

शीतकाल बीत गया है। चहुँ ओर वनराजियाँ पलाश-पुष्पों से पीली-पीली हो चुकी हैं। वहाँ दूर दिगन्त तक भौंरों के गुंजन हो रहे हैं। सौरभ-भरा वासंतिक समीर वह रहा है—ऐसी मनभावनी कुलभूमि में कुलबंधुओं के दर्शनों के लिए यह वन्धु लालायित है।

(२)

कुल की कानन-भूमियाँ गुलाबी आभा से मधुर-मधुर हो उठी हैं। सुहावने शिशिर-काल में भागीरथी की जलधाराएँ शीत-पावन हो गयी हैं। मुस्कराते हुए मुखड़े प्यार-भरे स्वागत के लिए तैयार हैं——तब प्रेमाश्रुओं से प्रमुदित यह कुलबन्धु जलोत्सव की स्मृतियों से विभोर हो रहा है।

(३)

निमंत्रण-पत्र पाते ही मेरा मन गुरुकुल को दौड़ गया है। परन्तु "विजय" समाचार-पत्र के कार्य-संभार में व्यस्त मेरा चित्त खिन्न हो उठा है। मेरा हृदय तो हठात् कुलभूमि में जा पहुँचा है, बस कार्यबद्ध यह स्थूल शरीर यहाँ रह गया है।

(४)

दिन में कुलबन्धुओं के मुख-कमल प्रेम से मुस्कराते रहें। निशा-काल में निर्भय,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सुशान्त चन्द्रिका आलोकित हो। हमारा गुरुकुल देवों द्वारा पूजित, प्राचीन काल की मधुर-मनोहर अमृत-सी पुनीत अवस्था को प्राप्त करे।

(५)

मान्य आचार्य वर्यों द्वारा रक्षित यह हमारी कुलजननी उदारचित्त, जनसेवक देश-भक्तों को पैदा करती रहे। कुलवासियों के पुण्यों के परिपालक परम प्रभु हमारे मन के समस्त अवसाद और कल्मष को दूर करें।

प्रार्थी—इन्द्र

गुरुकुले राजप्रतिनिधेः स्वागतम्

(१)

अमल सलिल वीचि-क्षालितो पान्तकूले
हिमधवल हिमाद्रि क्षौमनद्धोत्तमाङ्गे।
इह हरितवनाली सुन्दरे धर्म-देशे
प्रवर धरणिपाल, स्वागतं स्वागतं ते॥

(२)

विकसति कमलाली यस्य राज्ये सदैव
प्रतिनिधिरसि तस्य त्वं प्रजापालकस्य।
इदमपि कुलमत्र द्योतते धर्म विद्या—
प्रतिनिधि, जनतायै संदिशन् मंगलानि॥

(३)

अनुपम हिमरत्नं युज्यतां कांचनेन
दिनकर करमाला संगमे तूत्पलेन।
उपवन मतिकान्तं शोभतां कोकिलेन
क्षितिप लसतु गेहं नो भवत् संगमेन॥

(४)

सह विलसति राज्ये यस्य दण्डेन साम
स्थिरयति किल पादं सम्पदो यः करेण।
प्रतिनिधि रसि तस्य त्वं ततः किं विचित्रम्
त्वयि भृशमुपगूढा भारती वैभवेन॥

(५)

नरवर वितरायो धन्यवादाननेकान्
प्रमद मनुभवन्नः श्रीमतो दर्शनस्य।
सह किल कलयामः प्रेमसिक्तं नमस्ते
समुदमथ वदायः स्वागतं स्वागतं ते॥

इन्द्र विद्यावाचस्पतिः

संवत् १८७३ विक्रमी—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रो० इन्द्र का मन इस समय भी आर्य-समाज और ऋषि दयानन्द की महत्ता जानने में लगा हुआ था। आर्य समाज में भी त्रुटियाँ हैं, यह मानने पर भी युवा इन्द्र का मत था कि राजनीतिक संस्थाओं की त्रुटियाँ भी कम नहीं हैं। 'रैशनलिज्म इन यूरोप' पढ़ते हुए आपके मन में जो विचार आये, उन्हें आपने डायरी में इस प्रकार लिखा है—'जिस प्रकार की हत्याएँ यूरोप में धर्म के नाम पर हो चुकी हैं, भारतवर्ष में वैसी कभी नहीं हुइं। (२) जिन विचारों पर यूरोप सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में पहुँचा, वैसे विचार भारत में ईसा से चार या पाँच सौ वर्ष पूर्व तक तो स्पष्ट ही मिल सकते हैं। (३) धर्मों तथा पादरियों की जो संकुचित दशा यूरोप की दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दि में थी, वह भारतवर्ष में भी आज तक कई स्थानों में विद्यमान है।"

छात्रों और अधिकारियों के बीच संघर्ष होने पर दोषी कौन होता है?——इस प्रश्न पर प्रो० इन्द्र का उनकी डायरी में लिखा हुआ यह विचार आज भी ग्रहणीय है।

"नियम-भंग में विद्यार्थी दोषी हो सकते हैं, अपराधी नहीं। अपराधी तो अधिकारी ही होते हैं। दोषी और अपराधी ये दोनों शब्द परिभाषा की अपेक्षा करते हैं।"

ग्लैडस्टन की जीवनी पढ़ते हुए गुरुकुल के स्थिर सेवक और समाज सेवक प्रो० इन्द्र ने जो अनुभव किया, वह अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा——"यूरोप के सभ्य देशों में एक गुणी पुरुष की उन्नति के बहुत अच्छे अवसर हैं। भारत समाज सेवा, स्वार्थ-त्याग तो बहुत चाहता है, किन्तु सेवक को प्रतिष्ठा बहुत कम देता है। इसलिए यहाँ निःस्वार्थ सेवा में यद्यपि श्रेय अधिक नहीं है, किन्तु समाजसेवकों के लिए जो ऊँचे स्थान के प्रलोभन होते हैं, वे भी कम हैं।

"ग्लैडस्टन का जीवन यही बताता है कि समाज में अग्रणी स्थान पानेवालों को अधीर न होना चाहिये। कितनी दीर्घ सेवाओं के पीछे ग्लैडस्टन को अच्छा पद मिला और फिर वह कितना सामर्थ्यशाली बना। इधर आर्यसमाज की दशा यह है कि हरएक कल का बना नया सभासद भी सारे समाज की नीति को घुमानेवाला नेता बनना चाहता है।"

लोक सेवक के मार्गदर्शन के लिए प्रो० इन्द्र ने डायरी में लिखा है :——

"ग्लैडस्टन के जीवन-चरित्र से प्रतीत हुआ कि ज्यों-ज्यों पार्लमेंट में उसका प्रभाव बढ़ता जाता था और विशेषतया १०६० के बजट के पीछे उस जैसा अप्रिय व्यक्ति कोई न था। सारे उसे संदेह की दृष्टि से देखते थे। मित्रों का हृदय नदी तीर की वेग की तरह काँपता था, और शत्रु अपनी मानसिक वेदना को ईर्ष्या, भय और घृणा सूचक वाक्यों द्वारा प्रकाशित करते थे। इसलिए लोक सेवक को भी अप्रियता से भागना न चाहिये; क्योंकि लोकप्रियता और अप्रियता दोनों बहनें हैं। साथ ही आती हैं, साथ ही जाती हैं। यद्यपि रहती भिन्न-भिन्न घरों में हैं। सेवकों को तो अपने कार्य के सिवा और कहीं ध्यान ही न रखना चाहिये।"

ये विचार इस बात के प्रमाण हैं कि समान सेवा को युवा इन्द्र किस दृष्टि से ग्रहण किये हुए था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य-समाज और राजनीति का प्रश्न

आर्य-समाज राजनीति में भाग ले या नहीं, यह प्रश्न उस समय भी आर्य समाज के समक्ष विचारणीय था, वैसे ही आज है। इस विषय पर विचार करते हुए गुरुकुल के वेद साहित्य के उपाध्याय ने लिखा :

"धार्मिक संशोधन, समाज संशोधन और राजनीति क्या भारतवर्ष में जुदा-जुदा किये जा सकते हैं ? मेरी सम्मति में तो आता है कि यह असम्भव है। आर्य समाज शिक्षा, राजनीति आदि सब समाज के ही भाग हैं। सब इकट्ठे ही चल सकते हैं। शरीर के एक अंग में रोग होते हुए दूसरा सर्वथा नीरोग नहीं हो सकता। कांग्रेस की संस्था में धर्म, शिक्षा और समाज सुधार की अवहेलना से संगठन को हानि हो रही है; और आर्य-समाज ने, जिसे उसके संस्थापक ने सर्वांगपूर्ण बनाया था——राजनीति का बहिष्कार करके अपने आपको समय से पीछे डाल लिया है। आर्य समाज संसार का उपकार करना चाहता है। क्या राजनीति के क्षेत्र में उपकार का कार्य नहीं हो सकता ? आर्य-समाज संशोधन पर कटिबद्ध है, राजनीतिक रोग भी सामाजिक रोग है, क्या ये सुधार नहीं चाहते ? एक अंग को सर्वथा छोड़कर आर्य समाज अपनी उपयोगिता को कम कर रहा है। यह आवश्यकता नहीं कि वर्तमान सरकार की समीक्षा की जाये, किन्तु सिद्धान्तों की व्याख्या तो हो सकती है। यह सम्भव ही नहीं है कि एक किनारे से पकड़कर खींचने से कपड़ा उठाया जा सके। उठेगा भी तो कई हिस्से नीचे लटकते रहेंगे। कपड़े को उठाना हो तो सब ओर से पकड़कर उठाना चाहिये।"

उस समय भी 'प्रचारक' के सम्पादक प्रो० इन्द्र का विचार यह था कि "राजनीतिक सिद्धान्तों का आर्य समाज प्रचार करे। और दलगत राजनीति में पड़े बगैर राजनीतिक प्रणाली में संशोधन का कार्य करे। प्रो० इन्द्र ने १९१४ में ही यह विचार स्थिर कर लिया था। आगे चलकर भी उन्हें इस विचार को कभी बदलने की आवश्यकता नहीं हुई।

उदार दृष्टिकोण

गुरुकुल में सेवा करते हुए आर्य समाज में उपाध्याय इन्द्र सम्मिलित होते थे। यद्यपि उत्सवों में वे बहुत उत्साह के साथ नहीं जाते थे। काशी आर्य समाज के उत्सव पर जाने से पहले इन्कार करते रहे। क्योंकि पढ़ाई में इससे व्यवधान पड़ता था। शारीरिक निर्बलता भी थी ही। यात्रा-कष्ट शरीर को रोगी कर देता था। इसके अतिरिक्त सम्भवतः और भी एक कारण था। प्रो० इन्द्र हर एक वस्तु का विश्लेषण करने के अभ्यस्त थे। वे बुद्धिवादी जीव थे। श्रद्धालु थे, पर उसमें कट्टरता असम्भव थी। तभी आर्य-समाजी होते हुए भी उन्होंने भागवत् के दशम स्कन्ध की इन शब्दों में प्रशंसा की थी; "भागवत बनानेवाले के पाण्डित्य में तो संदेह नहीं। रचयिता संस्कृत का पारंगत पंडित है। भाषा तथा विचारों की सुन्दरता में उसने अन्य पुराणों को पीछे छोड़ दिया।" उसमें कृत्रिमता का दोष अवश्य है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनकी उदार दृष्टि का एक और उदाहरण है। ऋषि दयानन्द के परम भक्त होते हुए भी समीक्षक इन्द्र गुरुकुल के आचार्य प्रो० रामदेव के इस कथन को मानने के लिए तैयार न हो सके कि भारत में जितनी प्रगतिशील लहरें चल रही थीं, उन सबके एकमात्र प्रणेता ऋषि दयानन्द थे। और यह कि केशवचन्द्र सेन, सरसैयद, रानाडे, रघुनाथराव आदि सब बड़े पुरुष स्वामीजी के ही शिष्य थे।' प्रो० इन्द्रजी उस समय सद्धर्म-प्रचारक के सम्पादक भी थे, प्रो० रामदेवजी की कट्टरतापूर्ण बात सुनकर मौन रह गये और इस निश्चय पर पहुँचे, "मैंने समझ लिया कि संसार में साम्प्रदायिक विश्वास रामदेवजी का भी था। ऋषि दयानन्द महापुरुष थे, असाधारण बुद्धि के थे, किन्तु यह कहना कि भारत के गत शताब्दी के सब महापुरुषों ने उन्हीं से प्रकाश लिया–विशेषत: जिनमें से कई ऋषि से पूर्व ही कार्य प्रारम्भ कर चुके थे--अयुक्तियुक्त था। कई बातें उन्होंने ऋषि से सीखीं और कई विषयों पर ऋषि ने उनसे भी ग्रहण किया हो--यह संभव है, परन्तु साम्प्रदायिक विश्वास और एक बुद्धि भी अजब वस्तु है।"

अविवेकपूर्ण कट्टरता से प्रो० इन्द्र सर्वथा मुक्त थे। वे श्रद्धावान् थे, पर अंध श्रद्धालु नहीं।

गुरुकुल में प्रो० इन्द्र के प्रयत्न से दो नये तत्त्वों का प्रवेश हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिखे नाटक 'भारत दुर्दशा' का अभिनय ब्रह्मचारियों ने किया। इस अभिनय का निर्देशन साहित्य के उपाध्याय प्रो० इन्द्र ने किया। ब्रह्मचारी अभिनय करें, यह एक अद्भुत बात थी, गुरुकुल में अभिनय नहीं किया जाने लगा। कारण बताया गया। (१) इससे सामाजिक आनन्द प्राप्त होता है, (२) उच्चारण शुद्ध होता है और (३) यथार्थ संसार का ज्ञान होता है।

दूसरी बात शुरू हुई, प्रतिनिधि सभा की पार्लमेंट का प्रारम्भ। यह राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का सूत्र मानना चाहिये। प्रारम्भ में यह पार्लमेंट की प्रतिनिधि सभा एक मात्र ब्रह्मचारियों की नहीं थी। उपाध्यायगण इसमें प्रमुख भाग लेते थे। पहली पार्लमेंट में प्रो० इन्द्र विरोधी दल के नेता थे। यह पार्लमेंट आज भी गुरुकुल में विद्यमान है और प्रो० इन्द्र की सूझ और उनकी पथदर्शकता का प्रमाण दे रही है।

प्रो० इन्द्र पत्रकार का जीवन विताने के लिए उत्पन्न हुए थे, लड़कों को पढ़ाने के लिए नहीं। वे शिक्षक थे, पर विशाल मानव समाज के थे, कुछ विद्यार्थियों के ही नहीं। गुरुकुल नाम से दैनिक पत्र निकालना भी आपने शुरू करवाया। इसका एक मास सम्पादन करने का उत्तरदायित्व भी लिया। यह भावी दैनिकों के प्रकाशन की भूमिका थी।

इन्द्रजी की भविष्य की कल्पना आश्चर्यजनक रूप से सत्य होती थी। आज हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम से 'हिन्दू' शब्द निकालने के कारण क्षोभ की लहर उठी हुई है। यह १९६५ की बात है। १९१४ में यह स्थिति उत्पन्न होगी यह कहने की हिम्मत किसी को नहीं थी। परन्तु प्रो० इन्द्र ने इस स्थिति की कल्पना की थी। हिन्दू विश्वविद्यालय की मान्यता के लिए भारत सरकार की ओर से जो शर्तें की गयी थीं, वे प्रो० इन्द्र की राय में आश्चर्य-जनक थीं। इन्द्रजी की सम्मति में जिस विश्वविद्यालय का मुखिया महाराज दरभंगा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो, जो सरकार का पिछलग्गू है, और जिसके नेता पं० मदनमोहन मालवीय हैं, जिनमें सब सद्‌गुणों के होते हुए भी एक दोष यह है कि वे अपने आपको राजनीतिज्ञ भी समझते हैं, उस विश्वविद्यालय से यही डर है कि मामला और पेचदार न बन जाये ।"

प्रो० इन्द्र की भविष्यवाणी सत्य निकली । हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना जिन आदर्शों और ध्येयों की पूर्ति के लिए की गयी थी, वह लक्ष्य ही विलुप्त हो गया । यदि हिन्दू विश्वविद्यालय ने शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाया होता तो उसके बाद स्थापित होनेवाले सरकारी विश्वविद्यालय अंग्रेजी माध्यम रखने का साहस न कर सकते । उच्च शिक्षा का माध्यम आज भी विदेशी भाषा अंग्रेजी है, तो इसका एक कारण है, हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापकों का लोभ । शिक्षा-क्षेत्र संसारी हस्तक्षेप से मुक्त रहना चाहिये । इस अवस्था में सरकारी हस्तक्षेप को प्रश्रय देने की नीति का स्वागत कैसे किया जा सकता है ।

विद्यावाचस्पति की उपाधि

प्रो० इन्द्र विद्यालंकार थे । परन्तु गुरुकुल कांगड़ी की यह सर्वोच्च उपाधि नहीं थी । उसकी सर्वोच्च उपाधि विद्यावाचस्पति है । उस समय के नियमों के अनुकूल उपाध्याय विद्यावाचस्पति नहीं हो सकता था । अतः नियमों में संशोधन करना आवश्यक हो गया । प्रो० इन्द्र ने आर्य प्रतिनिधि सभा की अंतरंग सभा को प्रेरणा दी और इसके फलस्वरूप सभा ने स्वीकार किया कि गुरुकुल के जो स्नातक उपाध्याय हैं, गुरुकुल महाविद्यालय में रहें, वे विद्यावाचस्पति की परीक्षा दे सकते हैं । प्रो० इन्द्र बड़े परिश्रमी थे । 'सद्धर्म प्रचारक' का कार्य करते हुए भी प्रो० इन्द्र ने अवकाशों में वृंदावन जाना और वहाँ के छात्रों को न्याय और निरुक्त पढ़ाना स्वीकार किया । इस सबके साथ-साथ संस्कृत की पत्रिका 'उषा' के सफल सम्पादन कार्य का उत्तरदायित्व भी ग्रहण किया ।

राष्ट्रीय एकता और भारतीय स्वाधीनता को प्रो० इन्द्र के विचारों ने प्रधान स्थान दिया । इस कारण उनके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया । पटियाला में सिक्खों और आर्यों के बीच हुआ विवाद न्यायालय में पहुँचा । प्रो० इन्द्र ने माना कि यह संघर्ष देश और जाति के लिए खेदजनक है । पटियालेवाले मुकदमें को तो पूरा-पूरा लड़ना ही चाहिये, किन्तु वैसे अब एक दूसरे पर आक्षेप कम होने चाहिये । मेल में ही देश का भला है । हमारी लड़ाई से हमारे शत्रु लाभ उठाते हैं ।"

विवाह की मानसिक तैयारी

मार्गशीर्ष संवत् १९७१ को बड़े भाई हरिश्चन्द्र इंग्लैण्ड चले गये । इस घटना ने प्रो० इन्द्र के जीवन को एक और नया मोड़ दिया । आजन्म ब्रह्मचारी रहकर राष्ट्र-सेवा का प्रण लेनेवाले मन में नया द्वंद्व प्रारम्भ हो गया और हम युवा इन्द्र को यह विचार करते हुए पाते हैं । डायरी में आप लिखते हैं :—

"मेरे विवाह का प्रश्न एक बार फिर सामने आया है । परिव्राजक दशा में रहते हुए विवाह न करने का तो कुछ अभिप्राय है, किन्तु १८ वर्ष तक एक ही स्थान में रहते हुए गृहस्थी न बनने के पक्ष में कोई युक्ति नहीं है । विवाह के पक्ष में यह भी बात है कि साहित्यिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार्य तथा प्रबन्ध में पड़े हुए आदमी के लिए गृहस्थ मानसिक चिन्ता को कम करनेवाला होता है ।

"मेरा अविवाहित रहने का संकल्प यह मानकर था कि मुझे प्रवास करते हुए निरन्तर समाज सेवा करनी होगी। अब तो मैं बिना विवाह के गृहस्थ बन गया हूँ ।"

बड़े भाई हरिश्चन्द्र के अकस्मात् विदेश चले जाने पर उनके परिवार का बोझ भी इन्द्रजी के कन्धों पर पड़ गया था ।

अपने पुराने संकल्पों पर नयी परिस्थितियों में विचार करते हुए आपने डायरी में लिखा—"यदि अवस्थाओं ने शीघ्र ही मुझे फिर असली सोचे हुए कार्य पथ पर न डाल दिया, तो मैं अगले वर्ष आर्थिक अवस्था के सुधर जाने पर गृहस्थ की बात सोचूँगा। किन्तु यदि मैं इस बन्धन से छूटने की कुछ भी आशा कर सका तो गृहस्थ का नाम न लूँगा, तब मेरा जीवन अपने पूर्व जीवन––निर्धारित लक्ष्य पर ही पूरी तरह होगा।"

आजन्म ब्रह्मचारी रहकर अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्य करने का समर्थन करते हुए आपने लिखा—"इस प्रकार का जीवन व्यर्थ है। सदा बाह्य अवस्थाओं से शासित होना और उन पर स्वयं काबू न पाना नीचता है। क्या मैं इस प्रकार औरों की सहूलियत पर कार्य करते-करते अपने उद्देश्य में कुछ भी सफलता प्राप्त कर सकूँगा ? कभी नहीं। मुझे तो यह भी डर है कि इसी प्रकार औरों के ठुड्डे से लुढ़कता-लुढ़कता दुखद गृहस्थ के गड्ढे में न जा पड़ूँ। गृहस्थ यों तो दु:खद नहीं। परन्तु जिसने मातृ-सेवा का व्रत धारा है, वह यों अपने जीवन रत्न को बिखेरता फिरे ? कैसा आश्चर्य है ?"

आपके मन में ऐसा विचार-मंथन ही नहीं, आत्म-मंथन भी चलता रहा। बाद में आपने खूब सोचकर जो निश्चय किया, उसे डायरी में निम्न शब्दों में लिखा :

"इस अवस्था की समाप्ति से पूर्व ही यदि हरिश्चन्द्रजी लौट आये, तो फिर मैं यहाँ (गुरुकुल) न आऊँगा। अपने आत्मा, मन और शरीर को साधन सम्पन्न करने के लिए डेढ़-दो साल के लिए सभी त्याग करके कहीं चला जाऊँगा। पिताजी को भी लिख दूँगा। हाँ, यदि इतने ही समय में शरीर की अवस्था ठीक न कर सकूँगा कि मुझे वर्तमान कठिनाइयों में न पड़ना पड़े––तो ही लौटूँगा।"

यह निश्चय बताता है कि रोग से जर्जरित शरीर और परिस्थितियों से पराजित मन जीवन-दिशा को स्थिर करने में बाधक बन रहा था। जीवन-धारा का नियंत्रण नहीं हो रहा था। युवा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए व्याकुल था, तड़प रहा था, पर परिस्थितियों से अभिभूत था। यह ढाई मास का अवकाश युवा प्रोफेसर ने सोलन में बिताया।

विवाह का निश्चय

अन्त में जिन परिस्थितियों से विवश हो प्रो० इन्द्र ने गुरुकुल में ही रहते हुए विवाहित जीवन बिताने का निश्चय किया, उसे आपने इन शब्दों में व्यक्त किया––"हरिश्चन्द्रजी अभी नहीं आ रहे, ऐसे समय मेरे भी निराश्रय हो जाने से सारे परिवार की दशा अस्थिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो जायेगी। अभी स्वाधीन वृत्ति होकर समाज सेवा करना मेरे भाग्य में नहीं लिखा। इधर सात हजार रुपये का ऋण भी सिर पर है। उसे भी उतारना होगा। अतः वर्तमान कार्य को छोड़ना कठिन है। पिताजी गुरुकुल से जुदा होकर चतुर्थाश्रम में जाना चाहते हैं। ऐसे समय गुरुकुल से जुदा होना गुरुकुल के लिए हानि पहुँचानेवाला होगा, तब साहित्य द्वारा ही राष्ट्र सेवा करने की कोशिश करूँगा। यह भी तुच्छ साधन नहीं है। अभी गुरुकुल की स्थिर सेवकता नहीं छोड़ूँगा। ईश्वर को यही अभीष्ट है, किन्तु राष्ट्र-सेवा का कार्य भी नहीं छोड़ूँगा।"

प्रो० इन्द्र की डायरी के ये उपयुक्त शब्द उनकी मनःस्थिति को ठीक-ठीक बता रहे हैं। युवक भारी अंतरद्वंद्व में पड़ गया है। वह उठना चाहता है, दूर की उड़ान लेना चाहता है, पर अपने डैने बँधे पाता है और गुरुकुल न छोड़ने का निश्चय पुनः करता है।

गृहस्थ के सम्बन्ध में भी वह निश्चय करता है :

"इस हालत में गृहस्थ करना ही होगा। सदा मिथ्या अपवादों के लिए खुला रहना ठीक नहीं। यदि प्रचारक बनकर घूमने का अवसर मिल जाता तो अविवाहित रहने का पहला निश्चय ही उपयुक्त रहता। वे सारे मनसूबे अवस्थाओं ने तोड़ दिये, पर उससे विचलित होना, निराश होना कायरता है। घबराकर घर छोड़ भागना भी भीरुता है, सारे पारिवारिक कर्तव्यों के पालन के लिए मेरा गृहस्थ हो जाना ही आज की परिस्थितियों में उत्तम है।"

महात्माजी का गुरुकुल से पृथक् होने और संन्यास लेने का निश्चय हो जाने पर प्रो० इन्द्र के लिए गुरुकुल से तत्काल अलग होना और भी कठिन हो गया। क्योंकि इन्द्रजी को भय था कि "पिताजी के साथ उनको भी गुरुकुल को छोड़ देना जनता में संदेहजनक होगा। इसलिए गुरुकुल में ही रहकर सेवा करने का निश्चय करता हूँ।"

शास्त्रार्थ पहला और अन्तिम

गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव पर प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति का शास्त्रार्थ ऋषिकेश के आचार्य पं० गिरधर शर्मा के साथ हुआ था। कुछ मास बाद शास्त्रार्थ का उत्तरार्ध ऋषिकेश के गुरुकुल के उत्सव पर हुआ। 'मूर्ति पूजा और वैदिक वर्ण व्यवस्था' विषयों पर ये शास्त्रार्थ हुए थे। आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ किया प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने। इन शास्त्रार्थों में आपको 'पर्याप्त सफलता' मिली। परन्तु आपके मन पर इनकी उपयोगिता की छाया नहीं बैठी। आपने जो परिणाम निकाला, वह आपकी डायरी में निम्नलिखित शब्दों में लिखा है :—

(१) ऐसे शास्त्रार्थों से कोई वास्तविक लाभ नहीं।

(२) सच्चाई पर पर्दा करनेवाला आदमी लोगों पर बहुत भारी और गम्भीर प्रभाव नहीं डाल सकता।

(३) मुझे इस कार्य में पूरी सफलता पाने की आशा रखते हुए भी न पड़ना चाहिये।

(४) मेरा अन्तिम शास्त्रार्थ यही हो तो उत्तम हो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(५) साहित्य सेवामय जीवन बिताने का संकल्प दिल में घर करता जाता है ।

ये विचार आर्य समाज के जीवन में एक नई धारा के सूचक थे । क्योंकि उस समय समाजों के वार्षिकोत्सव की धूम-धाम कराने के लिए शास्त्रार्थ प्रचार के लिए आवश्यक माने जाते थे, जैसे आजकल 'कवि-सम्मेलन' । शास्त्रार्थों की बात आज सुनाई नहीं देती । इसे समाप्त करने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है, तो प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति को ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महात्माजी का संन्यास ग्रहण

• १९१७ में प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने पुनः अपने को नये इरादों के चौराहे पर पाया। ८-१२-७३ ई० सं० (२०-३-१७) को घर में प्रथम पुत्र जयंत का जन्म हुआ। इधर वैशाख १९७४ (१३-४-१७) को महात्माजी ने संन्यास लिया और गुरुकुल से विदा होकर दिल्ली पहुँच गये। बड़े भाई पहले ही स्वदेश जा चुके थे, सुखदेवजी भी त्याग पत्र दे चुके थे। २५-१-७४ को गैरीवाल्डी की जीवनी का लिखना भी समाप्त हुआ था। आगे की राह किधर ले जायें ? यह प्रश्न पुनः उत्पन्न हो गया था। उन दिनों आप के मन में राजनीति की ओर आकर्षण बढ़ रहा था। लखनऊ कांग्रेस की छाप युवा इन्द्र के हृदय में गहरी हो रही थी, राजनीति का संघर्ष साहित्यिक क्षेत्र में भी चल रहा था। आपने इन्हीं दिनों तालोप्रयोगी 'वैदिक धर्म' नायक पुस्तक लिखकर समाप्त की तो साथ ही 'गुलाम कादिर' उपन्यास भी समाप्त किया। जीवन दो धाराओं में विभक्त होकर चल निकला। आधुनिक और प्राचीन दोनों का संग्राम होने लगा। दूसरी ओर प्रचारक की धारा पूरा हो जाने से उसे मासिक करने का विचार छोड़ना पड़ा। इसके कारण 'प्रचारक' के बारे में निश्चय किया कि 'प्रचारक' अविशुद्ध आर्य समाजी पत्र होगा। (२) गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पक्षपाती और सामाजिक नीति में स्वतन्त्र रहेगा। परन्तु इतने से आपको संतोष नहीं हुआ। स्थिर सेवा करने की उद्दाम आकांक्षा मन में थी। दिल पूछता था "यदि इतने पर भी मैं देश तथा जाति की कोई स्थिर सेवा न कर पाऊँ तो मुझ-सा अभागा कौन होगा ?" हृदय से प्रार्थना निकलती थी "परमात्मन ! मुझे कर्तव्यपालन की शक्ति प्रदान कीजिये।"

दिल्ली के कार्य क्षेत्र में

प्रो० इन्द्र मन-ही-मन अनुभव करने लगे कि उनके लिए गुरुकुल का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। उनके पास शक्ति का अथाह स्रोत था। वह कहीं लगना चाहती थी। गुरुकुल की अपेक्षा दिल्ली का कार्य क्षेत्र उसके लिए अधिक उपयुक्त था। विचित्र बात यह है कि पंजाब में जन्म लेकर भी प्रो० इन्द्र ने लाहौर को अपने कार्य के लिए नहीं चुना, दिल्ली को ही चुना। दिल्ली लौटने की दिशा में पहला कदम उस समय उठाया, जब गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का मुख्याधिष्टाता होना स्वीकार कर लिया। गुरुकुल इंद्रप्रस्थ में रहते हुए कम-से-कम सप्ताह में एक बार दिल्ली आना पड़ता था; क्योंकि गुरुकुल के लिए आवश्यक धन राशि का प्रबन्ध इसी शहर में करना पड़ता था। इस कारण जहाँ वे एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओर स्नातक मण्डल प्रभुत्व के प्रधान बने, वहाँ नागरी प्रचारिणी सभा दिल्ली के मंत्री भी बने।

दिल्ली में आने पर ही एक नयी समस्या उपस्थित हुई। कन्या गुरुकुल का प्रश्न आया। प्रो० इन्द्र का विचार था कि कन्या गुरुकुल सार्वदेशिक सभा के प्रबन्ध में रहना चाहिये। प्रकाश पार्टी की ओर से इस प्रस्ताव का स्वागत नहीं हुआ।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में गर्मी की अधिकता और पानी की कमी, ये दो समस्याएँ थीं। किन्तु इन सब कठिनाइयों में भी आप अपना कार्य अटूट धैर्य से करते रहे। उस समय की मनःस्थिति आपकी डायरी से स्पष्ट है। डायरी में लिखा : "मैं गुरुकुल का स्थिर सेवक हूँ और प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। जब तक कहीं धर्म और आत्मा की हत्या का प्रश्न न होगा, तब तक गुरुकुल सेवा का व्रत पूरी तरह निभाऊँगा।" इन्हीं दिनों आपने 'वैदिक देवता' पुस्तक पूरी की। इस पुस्तक को नागरीप्रचारिणी सभा की प्रतियोगिता में भेजने का भी विचार किया गया। हृदय में सब संकल्प थे, परन्तु भाग्य दूसरी ओर ले जा रहा था। १९१८ का साल जहाँ यूरोप के महायुद्ध की समाप्ति का था, वहाँ भारत के लिए भारी विपत्ति का था। इंफ्ल्युएंजा देश भर में फैला। लाखों आदमी मर गये। शहरों में लाश फूंकनेवाले ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते थे। गुरुकुल इंद्रप्रस्थ भी इसकी चपेट में आ गया। इस बीमारी ने प्रो० इन्द्र के लिए गुरुकुल से अवकाश लेने और दिल्ली में बसने का मार्ग बना दिया। गुरुकुल की गति मन्द ही नहीं थी, रुकी-सी हुई थी। प्रो० रामदेवजी के साथ काम करना इन्द्रजी के लिए सरल नहीं था। खटपट चलती रहती थी। फलतः पहले एक मास की छुट्टी ली और फिर एक साल की छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। यह गुरुकुल से छुटकारे की प्रथम सीढ़ी थी।"

दैनिक 'विजय' का प्रकाशन

दिल्ली खींच रही थी। राजनीति बुला रही थी। लेकिन यही पर्याप्त कारण नहीं था गुरुकुल छोड़ने का। बौद्धिक कार्य करने की इच्छा भी प्रबल थी और लेखनी चंचल हो रही थी। छः साल का गम्भीर अध्ययन और मनन एवं अनुभव प्रकट होना चाहता था। इस इच्छा को अनुकूल परिस्थितियाँ मिलते ही दिल्ली से दैनिक 'विजय' निकालने का निश्चय किया गया। परन्तु इसका एकमात्र यही कारण नहीं था। गुरुकुल की आंतरिक अवस्था भी इसका एक प्रबल कारण थी। वह प्रो० इन्द्र के ही शब्दों में इस प्रकार थी :

(१) "वर्तमान दशाओं में चलता हुआ गुरुकुल केवल बदनाम होगा। मैं उसके सुधार में इस समय असमर्थ हूँ।"

(२) "प्रो० रामदेव का स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत ही संदिग्ध चरित्र है। उससे गुरुकुल की बदनामी होगी, मेरे लिए दो उपाय हैं। या इस दोष को हटाने का उपाय करूँ या स्वयं हट जाऊँ। हटाने के उपयोग में कई प्रकार का भ्रमित ज्ञान सम्भव है, अतः मेरा पृथक् होना ही ठीक है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) "गुरुकुल प्रकाश पार्टी के हाथों की कठपुतली हो रहा है। ऐसी दशा में मेरा रहना व्यर्थ है।"

(४) "देश की अन्य आवश्यकताएँ मुझे बुलाती हैं--उधर चलना चाहिये।"

यह बताता है कि--

देश सेवा करने के संकल्प के दिनों में ही प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के घर ५-८-१९६३ विक्रमी (२०-११-१९१८) को पहली कन्या का जन्म हुआ। "कन्या की आकृति मुझसे (प्रो० इन्द्र से) अधिक मिलती है। रोगी बहुत कम है--दूध भी कम पीती है। चुप-चाप देखती है, या सोती रहती है। स्वभाव बहुत शान्त है। वह बहुत शान्त और हँसमुख है।" डायरी में इन्द्रजी ने इन शब्दों में कन्या का परिचय दिया था।

पत्रकार जीवन का प्रारम्भ

'विजय' और कन्या के जन्म के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध शायद कोई न हो, परन्तु घटना-क्रम ने बताया कि विजय और इस कन्या के जन्म ने प्रो० इन्द्र को दिल्ली के नागरिकों की अगली पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। दिल्ली के वे यशस्वी पत्रकार कौर धुरंधर साहित्यकार हो गये। यह दिल्ली वास भी अल्पकालिक था। वापस गुरुकुल लौटने की भूमिका इसके साथ बँधी हुई थी। परन्तु इस बार दिल्ली के सार्वजनिक जीवन में प्रो० इन्द्र के व्यक्तित्व ने जो छाया दिखायी और प्रभाव पैदा किया, वह सदा कायम रहा। आधुनिक दिल्ली के निर्माताओं में प्रो० इन्द्र का नाम सदा आदर और श्रद्धा से लिया जायेगा। सार्वजनिक जीवन में शुचिता और साधुता का भी स्थान है, और उच्च स्थान है, यह प्रो० इन्द्र ने अपने जीवन और कार्यों से सिद्ध कर दिया। सिद्धान्तों और आदर्शों का पालन करते हुए और कठोर पथ पर चलते हुए राजनीतिक एवं पत्रकारिता का जीवन बिताया जा सकता है, इसका ज्वलंत उदाहरण प्रो० इन्द्र का जीवन है। निःसंदेह यह दुधारी की धार पर चलता है, पर चलनेवाले दृढ़व्रती संयमी युवक इस पर सफलता के साथ चल सकते हैं, इसका प्रमाण भी प्रो० इन्द्र ने दिया।

'विजय' दिल्ली और पंजाब का पहला हिन्दी दैनिक था। उसका दृष्टिकोण विशुद्ध राष्ट्रीय था। दिसम्बर १९१८ में दिल्ली में महामना मालवीयजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। इसमें रोलेटविल को वापस लेने की माँग की गयी थी। रोलेटविल ने उस समय सोती दिल्ली को जगाया। इस जागरण वेला में 'विजय' जागृत दिल्ली की हुँकार के रूप में प्रकट हुआ। प्रो० इन्द्र इस जागरण के आध्वर्य थे। हैंड प्रेस और ट्रेडिल के सहारे दैनिक चलाने का बीड़ा प्रो० इन्द्र ने उठाया था। बीसियों साम्राज्यों के खंडहरों से दबकर निश्चेष्ट पड़ी हुई दिल्ली नगरी 'को विजय' ने जगाया। सत्याग्रह कमेटी के दो मंत्रियों में एक मंत्री प्रो० इन्द्र थें। इस प्रकार 'विजय' सत्याग्रह का संदेशहर और दूत ही नहीं, मुख्य पत्र हो गया था। दिल्ली में ३० मार्च के बाद २० दिन सत्याग्रह कमेटी का राज्य रहा था, उन दिनों 'विजय' ही रामराज्य का गजट था। दिल्ली के जीवन के साथ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विजय एकरस हो गया। सत्याग्रह के साथ प्रो० इन्द्र का जीवन भी एक हो गया था। स्वामीजी सत्याग्रह कमेटी के अध्यक्ष थे, और इसका संदेशवाहक था विजय।"

विजय में 'छाती पर पिस्तौल' शीर्षक से दो लेख निकले। ये दोनों लेख स्वामीजी की ओजस्विनी लेखनी से लिखे गये थे। ये आग के गोले के समान दिल्ली पर पड़े। विजय सरकार की आँख का फोड़ा बन गया। प्रो० इन्द्र पहले से ही राजद्रोही प्रसिद्ध थे। लोग भयभीत थे कि ऐसे राजद्रोही को विना जमानत लिए पत्र कैसे निकालने दिया गया। परमात्मा में अटूट निष्ठा को ही वे इसका कारण बताते थे। इन लेखों ने विजय को भारत-भर में सत्याग्रह का मुखपत्र बना दिया। प्रो० इन्द्र की कीर्ति चारों ओर फैल गयी। साहस, विवेक, स्पष्टता, निर्भीकता के साथ दृढ़ अभिव्यक्ति, इन सब गुणों का मेल 'विजय' में था। यही कारण था कि पहले दिन जिस पत्र की केवल सत्तर प्रतियाँ शहर में बिकी थीं, और जहाँ एक अंग्रेजी के परोपजीवी पत्र के सिवा और कोई दैनिक नहीं था, उसी शहर में विजय की प्रतियाँ पन्द्रह हजार से ऊपर बिकने लगीं। विजय के दफ्तर के बाहर भीड़ लगी रहती। प्रेस से अखबार छपता और लोगों के हाथों में दे दिया जाता। रात-दिन प्रेस चलता रहता। जो हिन्दी नहीं जानते थे, वे उसको पढ़वाकर सुनने के लिए खरीदते थे। पत्र के सम्पादक और प्रकाशक की निष्ठा, श्रद्धा और दृढ़ विश्वास उनमें बोलता था और वह दिल्ली के घर-घर में गूंज रहा था। प्रो० इन्द्र ने विजय के द्वारा दिल्ली में नव-जागरण का मंत्र फूंका। दिल्ली जागी ही नहीं, सारे देश के लिए पथदर्शक भी हो गयी। ३० मार्च १९३१ को दिल्ली में हड़ताल हुई, घंटाघर के सामने स्वामी श्रद्धानन्द ने गोरखों की संगीनों के आगे अपनी छाती खोलकर सत्याग्रह और अहिंसा का एक अपूर्व चमत्कार दिखाया। जिसे दिल्ली ही नहीं, भारत सगर्व स्मरण करेगा। १९१९ में 'विजय' पढ़नेवालों में दुकानदारों से लेकर झल्लीवाले और ठेलेवाले भी थे।

विजय को 'लँगड़ा खूनी मैदान में' इस प्रकार के शीर्षकों ने लोकप्रिय बनाया, या 'वीणा की झंकार ने' यह निर्णय करना कठिन है। उसके अग्रलेख पढ़े और सुने जाते थे। पर प्रो० इन्द्र की नारद के नाम से लिखी वीणा की झंकार चाव से पढ़ी जाती थी और उत्सुकता के साथ सुनी जाती थी। इसमें चुभता व्यंग्य होता था। उसमें तीक्ष्णता होती थी, पर मधुरिमा के साथ समस्याओं का समाधान मनोरंजक ढंग से किया जाता था। यह पाठकों के लिए पाथेय का काम करता था।

अमृतसर में कांग्रेस का 'न भूतो न भविष्यति' अधिवेशन हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द थे। इसके साथ दिशा ने करवट ली। सरकार भी सजग हो गयी। 'विजय' से जमानत माँगी गयी। हैंड प्रेस पर छपनेवाला दैनिक जमानत देने की क्षमता कहाँ रखता था। इधर प्रो० इन्द्र की एक साल की छुट्टी भी समाप्त हो गयी थी। संचालक-सम्पादक को अनुभव हुआ कि "पर्याप्त साधनों के बिना दैनिक पत्र देर तक नहीं चलाया जा सकता। दूसरे यह कि यदि लेखनी को निर्भयता और स्वाधीनता से चलाना ही हो तो उसकी नोंक को थोड़ा घिस लेना आवश्यक है।"

'विजय' साप्ताहिक होकर और कुछ दिन सिसकता रहा। पर उसका वास्तविक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राण गुरुकुल पहुँच गया था और पुनः उपाध्याय (प्रोफेसर) होकर छात्रों को पढ़ाने का काम करने लगा। विशाल संसार को शिक्षा देने का कार्य स्थगित करके अपनी प्रिय छोटी दुनिया में चला गया। माँ के गोद के समान कुलमाता की याद प्रो० इन्द्र को सदा आश्रय और बल देती थी।

अमृतसर में प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने तिलकजी के दर्शन किये थे। उन्होंने लोकमान्य को जिस रूप में पाया, उसका डायरी में निम्न वर्णन है। "जनता के कोलाहल से उनके चेहरे पर न विक्षोभ की झलक दिखायी देती थी और न जनता के सत्कार प्रदर्शन से होठों पर मुस्कराहट दौड़ती थी। उनके गम्भीर तेजस्वी नेत्र और निश्चल होंठ न तूफान में हिलते थे और न प्रभाव के पवन से खिलते थे।"

सार्वजनिक रूप से तिलक महाराज के पास न आँसू थे, और न मुस्कराहट। वहाँ थी केवल कठोर कर्तव्य की भावना। जिसका पालन करने में वे कभी एक क्षण के लिए भी नहीं हिचकिचाये। "लोकमान्य तिलक का चेहरा एक क्रांतिकारी का आदर्श चेहरा था। वहाँ प्रिय-अप्रिय की कोई भावना नहीं थी। केवल धर्म के पालन की दृढ़ प्रतिज्ञा थी।"

प्रो० इन्द्र को यह क्रान्तिकारी चेहरा गुरुकुल का शान्त जीवन छोड़ने की प्रेरणा दे रहा था। गुरुकुल का आन्तरिक जीवन भी उत्साहप्रद नहीं था। स्वामीजी बीमार हो जाने के कारण दूसरी बार गुरुकुल छोड़ गये थे। गुरुकुल में इस समय प्रकाश पार्टी के दृढ़ स्तम्भ विश्वम्भरनाथजी गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता होकर पहुँच गये थे। वे दृढ़ आर्य समाजी थे। किन्तु गुरुकुल के प्रति उनकी नीति प्रो० इन्द्र और संस्थापक की नीति से भिन्न थी। अतः प्रो० इन्द्र इस बदली परिस्थिति में गुरुकुल में रहना आवश्यक समझते थे। इस बार गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने उनको अभिनन्दन पत्र भेजकर जो बिदायी दी वह दृश्य मार्मिक था। गुरुकुल के भविष्य के बारे में सभी के चेहरों पर चिंता की रेखा खिंची हुई थी।

लोकमान्य तिलक की क्रान्तिकारी भावना ने उनको गुरुकुल छोड़ने के लिए प्रेरित किया। न्यायमूर्ति श्री मोतीलाल नेहरू के पितृतुल्य स्नेह ने भी उनको प्रेरणा दी। लालाजी का उदाहरण उनके सामने था। पूछा जा सकता है, तब फिर 'विजय' छोड़कर गुरुकुल क्यों गये और फिर दो ही साल बाद गुरुकुल से बिदायी लेकर दिल्ली क्यों आ गये। इसका कारण जानने के लिए प्रो० इन्द्र ने अपने स्वभाव का विश्लेषण करते हुए जो लिखा है, वह जानना आवश्यक है। अपने पिता से अपने स्वभाव की तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है—"वह स्वभाव से श्रद्धाप्रधान भावुक व्यक्ति थे, मैं स्वभाव से तर्क-प्रधान ठंडा प्राणी हूँ। उन्हें किसी परिणाम पर पहुँचने में और उसके अनुसार बड़े-से-बड़ा कदम उठाने में क्षणभर की भी देर नहीं लगती थी। मैं किसी निश्चय पर पहुँचने में बहुत धीमा हूँ और फिर उसके अनुसार लम्बी दलील लगाने में और भी अधिक समय लेता हूँ। उनके हर एक विचार में कट्टरता थी, मुझमें उसका अभाव है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वभाव का यह धीमापन गुण भी है। जल्दबाजी में किये गये कार्य अनेक बार बहुत अनिष्टकारी सिद्ध होते हैं। किन्तु प्रो० इन्द्र के गुरुकुल से दिल्ली वापस देर से आने का एक बड़ा कारण लोकमान्य तिलक का एक अगस्त १९२० का स्वर्गवास होना भी मानना चाहिये। राजनीति का सूर्य अस्त हो गया था। उससे प्रकाश पानेवाला युवक दिल्ली फिर क्या जाता? अहमदाबाद कांग्रेस के दृश्य ने चित्र बदल दिया। कांग्रेस का ढाँचा बदल दिया। एक साल के भीतर स्वराज्य आने की आशा बलवती हो गयी। इस प्रकाश का ध्येय क्या था? भारत का सूर्य-मण्डल में वही ऊँचा स्थान हो सकता है, जिसका वह अधिकारी है। इस देश को एक माध्यम की आवश्यकता थी। प्रो० इन्द्र ने इस आह्वान-को सुना। नेपोलियन बोनापार्ट के लेखक ने अपनी आँखों से देखा और लिखा: "विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वह ताज महात्माजी ने अपने हाथों से स्वयं अपने सिर रखा।" इस घटना ने उस समय प्रो० इन्द्र को नेपोलियन की ताजपोशी का दृश्य याद करा दिया। वह दृश्य था, जब सम्राट् पद पर आरूढ़ होने के समय पोप ने नेपोलियन के सिर पर रखने के लिए ताज उठाया, तो नेपोलियन ने हाथ बढ़ाकर उसे स्वयं अपने हाथों में लेकर सिर पर रख लिया। महात्माजी ने वह प्रस्ताव स्वयं ही उपस्थित किया, जिसके द्वारा उन्हें कांग्रेस के सर्वाधिकार समर्पित किये जा रहे थे। महात्माजी ने इस समय जो भाषण दिया उसके शब्द मेरे कानों में अब भी (१९५७) गूँज रहे हैं। उन शब्दों का स्रोताओं पर जो अद्भुत प्रभाव हो रहा था, वह भी मुझे स्पष्ट रूप से याद है। यह स्मृति प्रो० इन्द्र को फिर दिल्ली खींच लायी। यद्यपि चौरा-चौरी के कारण बारडोली का कर-बंदी आन्दोलन स्थगित हो गया। गांधीजी जेल चले गये। देश में स्वराज्य का आन्दोलन शिथिल हो गया। मोपला विद्रोह हुआ। साम्प्रदायिक दलों का सूत्रपात हुआ। मोपला और मुल्तान ने जो आग भड़कायी, वह बुझी नहीं। वह आगे ही आगे बढ़ती गयी। यह भड़कती आग एक आग बुझानेवाले को बुला रही थी। इस पुकार को प्रो० इन्द्र ने सुना।

कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी थी। स्वामीजी भी गुरु का बाग के सत्याग्रह के सिलसिले में पंजाब में एक साल की जेल काटकर गया काँग्रेस पहुँचे थे। दिल्ली के तीन नेताओं स्वामी श्रद्धानन्द, हकीम अजमल खाँ और डा० अन्सारी—में से पहले दो की सहानुभूति स्वराज्य पार्टी के साथ थी; जिसके संस्थापक देशबन्धु दास और न्यायमूर्ति मोतीलालजी नेहरू थे। प्रो० इन्द्र परिवर्तनवादी थे। कांग्रेस के मौके पर ही आपने स्वराज्य पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली थी। जब सदस्यता के पत्र पर दस्तखत करके वह पर्चा त्यागमूर्ति मोतीलाल नेहरू के हाथों में दिया, तो बूढ़े नेहरू के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उनको अनुभव हुआ कि दिल्ली को उन्होंने फतह कर लिया है। उन्होंने श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की पीठ थपथपायी। इन्द्रजी ने डायरी में लिखा—"जब मैंने हस्ताक्षर करके फार्म पंडितजी के हाथ में दिया, तो उन्होंने प्यार से मेरी पीठ को थप-थपाया, जिससे मैं वस्तुतः फूल उठा।" इस नयी पार्टी को दिल्ली में एक प्रवक्ता की आवश्य-कता थी। प्रो० इन्द्र ने इस कार्य को स्वतः अपने कंधों पर उठा लिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'सत्यवादी' और 'वैभव' का प्रकाशन

इन सब प्रेरणाओं का फल 'सत्यवादी' के रूप में प्रकट हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था। यह जनवरी १९२३ के पहले सप्ताह में दिल्ली से निकला। इस पत्र की जन्म कथा प्रो० इन्द्र ने इस प्रकार लिखी है—"पुस्तक लेखन के समाप्त होने पर मैं फिर खाली हो गया। उँगलियाँ लिखने को उतावली थीं और चित्त अपने भावों को उगलना चाहता था। परन्तु साधनों का अभाव था। उस लाचारी के अवकाश से लाभ उठाकर मैंने दो पुस्तकें लिखीं, परन्तु उससे दिल का बोझ हल्का न हुआ, अंत में एक साप्ताहिक पत्र निकालने का मनसूबा पक्का किया। दैवयोग से एक सहायक भी मिल गये। प्रसिद्ध दानवीर सेठ रघुमल लोहिया ने इस रूप में सहारा दिया। उन्होंने अपनी दुकान पर हिसाब खुलवा दिया। आज्ञा दे दी कि एक वर्ष तक दुकान से आवश्यकतानुसार 'सत्यवादी' के लिए परिमित राशि ली जा सकती है।'

'वैभव' एक दैनिक हिन्दी पत्र था। यह भरतपुर के महाराजा के कुछ उपकृत लोगों ने नरेश को अंग्रेजों के कोप से बचाने के लिए निकाला था। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति अहमदाबाद से लौटने पर दिल्ली में रह गये थे। काम चाहिये था। आपने उस स्थिति का चर्चा डायरी में इस प्रकार किया है—"ऐसी परिस्थिति भी नहीं थी कि मैं बिना कुछ आर्थिक दक्षिणा प्राप्त किये देर तक दैनिक-पत्र का सम्पादन कर सकूं। फिर आर्थिक विषयों में मेरी उपेक्षावृत्ति, व्यंकटेश रमण की वाक्चातुरी और अधिकारीजी की सज्जनता (पं० जगन्नाथ अधिकारी), तीनों ने मिलकर मुझ पर ऐसा जादू किया कि मैंने 'वैभव' का प्रधान सम्पादक बनना स्वीकार कर लिया और अगले दिन से वैभव कार्यालय में जाने लगा।"

'वैभव' दैनिक तेलीवाड़े से निकलता था। इससे ही इसके प्रेस की कल्पना की जा सकती है। प्रधान सम्पादक के शब्दों में "टाइप बहुत पुराना था, छपाई अच्छी नहीं आती थी, और चार पृष्ठों के लेख प्रतिदिन पूरे नहीं होते थे। इस कारण दैनिक पत्र सप्ताह में प्रायः दो दिन प्रकाशित हो जाता था।"

इसके कार्यालय में जाने पर प्रधान सम्पादक प्रो० इन्द्र को भारी निराशा हुई। "वैसा वातावरण भी न था कि सम्पादक कहलाने की हवस ही पूरी हो जाती।" हैंड प्रेस शायद सत्तावन ईसवी का था। फोरमैन ही मशीनमैन था। रेत से तेल निकालने की कोशिश की गयी थी। यह कब तक चलता? चटाई लपेट ली गयी। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति को एक नया अनुभव हुआ—"साहसिक कार्य छोटा हो या बड़ा, उसे कभी दूसरे के बलबूते पर आरम्भ न करो। अपने भरोसे पर पार जाने के लिए गंगा में भी कूद पड़ो, परन्तु केवल दूसरे के सहारे का भरोसा रखकर घुटनों तक के पानी में भी पाँव न रखो।"

इस अनुभव को गाँठ में बाँध लेने पर प्रो० इन्द्र ने गुरुकुल से दिल्ली आने के बाद दैनिक विजय का प्रकाशन न करके साप्ताहिक सत्यवादी क्यों निकाला? इस प्रश्न का उत्तर इसमें सन्निहित है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ जाने पर खिलाफत आन्दोलन ने तंजीम की शक्ल पकड़ी। इसकी प्रतिक्रिया शुद्धि के रूप में प्रकट हुई। ३० अगस्त १९२२ को क्षत्रिय उपकारिणी सभा के महाराजा रामपालसिंह ने शाही जमाने में जो राजपूत भाई हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान हो गये थे, उनको हिन्दू धर्म में आने का आग्रह किया और निश्चय किया कि "उनको पुनः शुद्ध करके राजपूत हिन्दू बिरादरी में शामिल कर लिया जाये।" ३१ दिसम्बर १९२२ को शाहपुराधीश की अध्यक्षता में क्षत्रिय महासभा ने इसका समर्थन किया।

यह प्रस्ताव केवल क्षत्रिय महासभा, जाट महासभा और गूजर महासभा के पास आये प्रार्थना-पत्रों के जवाब में स्वीकार किये गये थे। पर मुल्ला और मौलवी चौंके। उनका शोर उठा कि आर्य लोग सब नौ-मुस्लिमों को शुद्ध करके हिन्दू बनाना चाहते हैं। १३ फरवरी १९२३ को भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा की स्थापना हुई। इसके प्रधान श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी थे। आन्दोलन बड़वानल के समान फैला।

शुद्धि आन्दोलन को एक दैनिक की आवश्यकता थी। स्वामीजी का काम कभी पत्र के बिना आगे नहीं बढ़ा। पत्र उनके सार्वजनिक जीवन का अंग था। इस नये आन्दोलन ने दैनिक अर्जुन को जन्म दिया।

"अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्य न पलायनम्।"

इस ध्येय वाक्य को लेकर पत्र निकला। २४ अप्रैल १९२३ को 'अर्जुन' का पहला अंक निकला। इस समय "न कुछ मूलधन था, और न कोई साथी। केवल दुस्साहस की पूंजी के सहारे पर दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। पत्र लिखा जाता था श्रद्धानन्द बाजार में और छपता था लगभग २।। मील दूर सद्धर्म प्रचारक प्रेस में, जो इन दिनों परेड के मैदानवाली सड़क पर था।"

'अर्जुन' स्वराज्य पार्टी या भारतीय शुद्धि सभा का पत्र नहीं था—किन्तु इन दोनों का प्रवक्ता अवश्य था। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति स्वराज्य पार्टी के एक दृढ़ स्तम्भ और नेता बने। केन्द्रीय असेम्बली में दिल्ली को भी एक स्थान प्राप्त था। अतः चुनाव की चहल-पहल थी। स्वराज्य पार्टी ने चुनाव लड़ने का निश्चय कर लिया था। इस संकल्प को सफल बनाने का भार प्रो० इन्द्र पर था। स्वराज्य पार्टी के संस्थापक की इच्छा थी कि प्रो० इन्द्र चुनाव लड़ें, किन्तु प्रो० इन्द्र निश्चय कर चुके थे कि चुनाव न लड़ेंगे। न्यायमूर्ति मोतीलाल नेहरू ने जब बहुत आग्रह किया, तब आपने उनको यह आश्वासन देकर आश्वस्त किया कि यह सीट स्वराज्य पार्टी की पक्की समझिये। इसमें कुछ संदेह न कीजिये। यद्यपि पं० मोतीलालजी की हार्दिक इच्छा थी कि दिल्ली से प्रो० इन्द्र चुनाव लड़ें, पर आप अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। किन्तु चुनाव में स्वराज्य पार्टी को विजयी बनाने और श्री प्यारेलाल को सफल बनाने की जिम्मेदारी आपने ली।

दयानन्द जन्म शताब्दी में योग

ऋषि दयानन्द के मथुरा में शिक्षाभ्यास के बाद गुरु से विदा होने के प्रसंग पर "आर्य-समाज का इतिहास" ग्रन्थ के विद्वान लेखक ने बड़ी गहरी अनुभूति से निम्न वाक्य लिखे हैं—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"श्री दयानन्द संन्यासी गुरु के द्वार से विदा हुए। जो वस्तु पर्वत की चोटी पर, वन की गहराई में, नदियों के प्रवाह में, और महंतों के डेरों में ढूंढ़े पर न मिली, वह ज्ञान के प्यासे दयानन्द को मथुरापुरी में दण्डी विजयानन्द के चरणों में मिली। वह वस्तु विद्या और विवेक बुद्धि थी। उस वस्तु को पाकर ओजस्वी ब्रह्मचारी संसार क्षेत्र में प्रवेश करता है।" विद्या और विवेक बुद्धि के धनी प्रो० इन्द्र को अपने महान् गुरु के चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित करने का अवसर तब मिला, जब दयानन्द जन्म शताब्दी मनाने का निश्चय किया गया था। दिसम्बर १९२२ में जन्म शताब्दी सभा का संगठन किया गया। इसके अनेक मंत्रियों में एक मंत्री प्रो० इन्द्र भी थे। अर्जुन जन्म शताब्दी सभा का भी संदेशवाहक था।

१५ फरवरी १९२५ से मथुरा में जन्म शताब्दी का महोत्सव मनाया गया। मथुरा में प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति भी गये थे। वहाँ आपने आर्य विद्वान् परिषद् और आर्य सम्मेलन आदि में भाग लिया। इसी मौके पर २० फरवरी को जात-पाँत तोड़क सम्मेलन भी हुआ था। जाति-पाँति तोड़कर विवाह करने की आवश्यकता पर श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने भी भाषण दिया था। यह व्याख्यान वर्तमान वंशानुगत जाति-व्यवस्था के प्रति इन्द्रजी के परिपक्व विचारों का, जो भारतीय इतिहास के गम्भीर अध्ययन से बने थे, परिणाम था। जात-पाँत को अवैदिक बताते हुए आपने इसे भारतीय राष्ट्र की प्रगति के लिए अनिष्टकर बताया था।

प्रो० इन्द्र अपने कार्य का विस्तार कांग्रेस, हिन्दू संगठन, शुद्धि, हिन्दी प्रचार, आर्य समाज में कर रहे थे तो उनका पत्र भी उन्हें सहायता दे रहा था। 'अर्जुन' राष्ट्रीय पत्र था। प्रो० इन्द्र राष्ट्रीय नेता थे। पत्र सरकार से संघर्ष करने को भी उद्यत रहता था और सुधार कार्य करते हुए कट्टरता और मूढ़ता से भी संघर्ष करने में आगे रहता था।

पत्र प्रकाशन के साथ शताब्दी महोत्सव के सिलसिले में देहरादून से अजमेर तक और अमृतसर से मद्रास तक प्रो० इन्द्र ने दौरा किया। शताब्दी के लिए चंदा एकत्र किया। यदि देश १९३० के स्वराज्य संग्राम के लिए तैयारी कर रहा था, तो प्रो० इन्द्र भी उसकी तैयारी में लगे हुए थे और अर्जुन उसका एक मुख्य साधन था। १९१९ के विजय के समान १९२३ में बेलगाम कलम नहीं चलती थी।

स्पेशल कांग्रेस का अधिवेशन

परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में मेल कराने के उद्देश्य से मौ० आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया था। इसकी स्वागत-समिति के दो मंत्रियों में एक मंत्री प्रो० इन्द्र भी थे। इस समय मौलाना मोहम्मद अली जेल से छूट आये थे। समझा जाता था कि महात्माजी का कोई खास संदेश लेकर जेल से आये हैं, जो वह दिल्ली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में प्रकट करेंगे। स्वराज्य पार्टी चुनाव में भाग लेने को तैयार में थी। कौंसिल बहिष्कार का प्रोग्राम रद्द कराने का वह आग्रह कर रही थी। दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने का उद्देश्य कौंसिल-बहिष्कार को उठाना और स्वराज्य पार्टी को चुनाव लड़ने की अनुमति देना था। कहना न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होगा कि 'अर्जुन' इसका जोरदार प्रवक्ता था। प्रो० इन्द्र की सारी शक्ति स्वराज्य पार्टी को विजयी बनाने में लगी हुई थी। दिल्ली उनके भावों से प्रभावित थी। उन्होंने विजयी होने की सब तरह से अनुकूल परिस्थिति होने पर भी चुनाव में खड़े होने से इन्कार कर दिया था। इसका कार्यकर्ताओं पर भी अधिक प्रभाव पड़ रहा था। उनका त्याग बोलता न था, पर वह मूक त्याग उनकी वाणी के बल को बढ़ाता था। वह यह प्रमाणित करता था कि यह व्यक्ति विश्वास का एक पुंज है। इसको भावुकता नहीं हिला सकती। बुद्धि प्रधान प्रो० इन्द्र का दैनिक अर्जुन भी बुद्धि प्रधान था। यह हृदय को नहीं मन-मस्तिष्क को अपील करता था। गांडीव के सर के समान तीक्ष्ण प्रहार करने से चूकता न था। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ी ही रहती थी। प्रो० इन्द्र के शान्त मस्तिष्क की विश्लेषण-शक्ति इस प्रवाह रूप में प्रकट हुई। पत्र निर्भीक था, पर दुस्साहसी नहीं था।

अनुभव के कार्य ने शीघ्र ही बता दिया कि दैनिक पत्र के लिए अपना प्रेस होना आवश्यक है। हरिद्वार में एक प्रेस मिल गया। प्रेस को खरीदने के लायक पूँजी सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ने जुटा दी। यह राशि प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कर्ज के रूप में स्वीकार की। यह कर्ज पंडितजी द्वारा अपनी ताई से मिली जमीन को बेंचकर चुकाया गया। इस प्रकार पैतृक संपत्ति (ताया से मिली संपत्ति। ताया ने आपको गोद लिया हुआ था उनके कोई संतान नहीं थी।) के बल पर अर्जुन प्रेस कर्ज के भार से मुक्त हो गया। १९२४ के प्रारम्भ में पत्र अपने पाँव पर चलने लगा। दिल्ली और दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र को श्री विद्यावाचस्पति की लेखनी ने हिन्दी का सुन्दर क्षेत्र बना दिया था।

इस अनुभव को इन्द्रजी ने निम्न शब्दों में लिखा है "वहाँ मेरे साथ पाठकों का वैसा प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित हो गया, जो अनेक विघ्न-बाधाओं के आने पर भी निरन्तर बढ़ता गया और जिसे मैं 'अर्जुन' का सबसे बड़ा मूलधन समझता हूँ।" एक पत्र के लिए यह मूलधन कम नहीं है। यह अजस्र स्रोत है। यह शक्ति और प्रेरणा दोनों प्रदान करता है। विश्वास का धनी और आदर्श का पुजारी ही यह मूलधन पा सकता है और पाने का अधिकारी है। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति को यह मूलधन प्राप्त हुआ, उनके उच्च आदर्शों और दृढ़ विश्वासों और मातृभूमि की स्वाधीनता के प्रयत्नों में आत्मोत्सर्ग की भावना से।

बाल्यकाल में अर्जुन को बल दिया, शुद्धि आन्दोलन, स्वराज्य पार्टी के कौंसिल-प्रवेश के निश्चय और श्री दयानन्द जन्म शताब्दी के महोत्सव की तैयारी ने। यह पत्र राष्ट्रीय था, कांग्रेस का पोषक था, परन्तु गांधीजी की कांग्रेस का अंध समर्थक और कट्टर पोषक न था। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के समान उसका भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व था। वह किसी संस्था का आश्रित न था और न किसी का पिछलग्गू। वह अपने जीवन और अस्तित्व के लिए प्रो० इन्द्र की विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक लेखनी पर निर्भर करता था। उत्तरी भारत का एक मात्र हिन्दी दैनिक होने से भी वह लाभजनक स्थिति में था। अर्जुन के पहले कानूनी सम्पादक श्री भीमसेन विद्यालंकार थे। इन दिनों अर्जुन पर कानपुर के दैनिक प्रताप के सम्पादक अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के साथ-साथ 'अर्जुन' के सम्पादक श्री भीमसेन विद्यालंकार पर भी रायबरेली के पुलिस अधिकारी श्री

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वीरपालसिंह की ओर से मुकदमा चलाया गया था। 'अर्जुन' पर यह पहला वार था। 'अर्जुन' का सम्पादक जेल भेजा गया। यह यू० पी० की सरकार की ओर से अर्जुन पर अप्रत्यक्ष वार था। 'अर्जुन' ने 'न दैन्यं, न पलायनम्' की नीति के अनुसार इस प्रहार से अपने को बचाया नहीं। माफीनामा पेश करने से यह सम्भव था। किन्तु यह कार्य उसने स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर अदालत का भी बहिष्कार नहीं किया गया। मुकदमा डटकर लड़ा गया और दोनों पत्रों के सम्पादक जेल भेजे गये।

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, हकीम अजमल खाँ, और श्री आसफ अली स्वराज्य पार्टी के दिल्ली में नेता थे। स्वराज्य पार्टी कौंसिल में प्रवेश करना चाहती थी, और चाहती थी कांग्रेस की सहमति और आशीर्वाद। अतः दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। स्वागत-समिति के दो मंत्री थे आसफ अली और प्रो० इन्द्र। कांग्रेस का विशेष अधिवेशन महत्वपूर्ण था। परिवर्तन-वादियों और अपरिवर्तनवादियों में मेल कराने और समझौता कराने के लिए यह किया गया था। कौंसिल-प्रवेश करने की अनुमति देने का प्रस्ताव इतना अधिक विवादास्पद था कि पटेल-बन्धु तक इस प्रश्न पर विभक्त रहे। परन्तु गया कांग्रेस के समय अपरिवर्तनवादियों का जो उग्र रूप दिखायी दिया था, वह अब सौम्य हो गया था। श्री मोहम्मद अली यद्यपि स्वतः असेम्बली में नहीं गये, परन्तु वे कौंसिल-बहिष्कार को जारी रखने के पक्ष में नहीं थे। डा० अन्सारी अभी तक अखिलभारतीय नेता नहीं बन सके थे। दूसरे सर्वश्री टंडन, जवाहरलाल नेहरू और कोंडावेंकेटप्पया समझौते के पक्ष में थे और इस राय के थे कि जो लोग कौंसिल में जाना चाहते हैं, उनको रोका न जाये, पर कांग्रेस चुनाव के दलदल में न फँसे। मौलाना आजाद इस विशेष अधिवेशन के सभापति थे। यद्यपि उस समय आपकी आयु चालीस साल की ही थी। स्वागत समिति में प्रो० इन्द्र और आसफ अली के पक्ष का अत्यधिक बहुमत था। इसी कारण मौलाना आजाद का चुना जाना सम्भव हुआ था। डा० अन्सारी ने इस समय कोई प्रमुख भाग नहीं लिया। यद्यपि आप अपरिवर्तनवादी थे और गांधीजी के जेल में रहते हुए कौंसिल में जाने के विरोधी थे। दूसरी ओर स्वराज्य पार्टी की ओर से कहा गया कि वह गांधीजी को जेल से छुड़ाने और कांग्रेस के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए कौंसिल में जा रही है। कौंसिल का काम वह भी व्यर्थ मानती है और इस वास्ते वह उसमें जाकर उसे मोड़ना चाहती है। वह यह मिथ्या चुप मिटाना चाहती है कि सरकार देश पर जनता की सहमति और इच्छा से शासन कर रही है। अर्जुन इस विचारों का उस समय माध्यम था। इस प्रकार अर्जुन धारा के साथ ही न था, बल्कि धारा की लहरों के ऊपर तैर रहा था।

साम्प्रदायिक उपद्रव से व्यथित

१९२४ में सारे देश के साथ दिल्ली भी थर्रा उठी। १९१९ के साम्प्रदायिक ऐक्य के स्वर्णयुग का अंत हो गया था। प्रो० इन्द्र लिखते हैं "कहना पड़ेगा कि १९२४ के फिसाद ने भयावनी रात्रि का दृश्य दिखला दिया। सुप्रभात के पीछे इतनी शीघ्र रात्रि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आ जायेगी, यह आशंका किसी को नहीं थी।" फिसाद ने बड़ा गंदा और बीभत्स रूप धारण किया। बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ किसी का भी लिहाज नहीं किया गया। मुसलमानों की भीड़ ने घरों में घुसकर हिन्दुओं को आहत किया और हत्याएँ भी कीं। घंटाघर पर सिपाहियों की गोली से बहाये गये रुधिर ने जिस एकता की वाटिका को हरा-भरा किया था, छुरों और लाठियों द्वारा बहाये गये रक्त ने तेजाब बनकर उसे जला दिया। प्रो० इन्द्र लिखते हैं—"१९२४ की शाम को स्थान-स्थान पर एकता और परस्पर प्रेम के खंडहरों को शहर में बिखरा हुआ देखकर ऐसा अनुभव होता है कि १९१९ का जागरण मानो एक सपना था, जिसे शत्रु ने झटका देकर तोड़ दिया। दिल्ली देश की अनुभव शक्ति का केन्द्र है। उसके हर्ष और शोक का असर देश पर मुख्य और व्यापी होता है। जब दिल्ली में एकता का झण्डा उठा, तब देश भर में सुखकारी पवन बहने लगा और जब दिल्ली में साम्प्रदायिक झगड़े का उत्पात मचा तो भारत प्रकम्पित हो गया।"

दिल्ली के प्रति प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के हृदय में जो अनुराग और प्रेम था, उसका सहज में अनुमान लगाया जा सकता था। उनकी मनोव्यथा की कल्पना की जा सकती है। मर्माहत होकर भी वे कर्तव्य पथ से विचलित नहीं हुए। साम्प्रदायिक विद्वेष के बाद भी प्रो० इन्द्र ने हिन्दू महासभा का आश्रय नहीं लिया और न कांग्रेस का त्याग किया। अपितु आप आग को शान्त करने और जख्मों पर मरहम लगाने का काम करते ही रहे। आग को यथासम्भव बढ़ने नहीं दिया। प्रतिशोध की भावना को सफलता से दबाया। प्रो० इन्द्र ने इस मौके पर बड़े धैर्य से सामना किया। अपने भक्तों और अनुयायियों को इस समय कठोर अनुशासन और नियंत्रण में रखा। कांग्रेस की प्रतिष्ठा को गिरने नहीं दिया।

गांधीजी का भ्रान्तिपूर्ण लेख

इन्हीं दिनों प्रो० इन्द्र और अर्जुन की एक और परीक्षा हुई। स्वराज्य पार्टी के यत्न से महात्मा गांधीजी यर्वदा जेल से आपरेशन होने के बाद छोड़ दिये गये। जेल से रिहा होने के बाद गांधीजी ने साम्प्रदायिक आँधी के गुब्बार को उठते हुए देखा। इसकी शान्ति के लिए आपने 'तनाव' (२८ मई १९२४) शीर्षक से सनसनीपूर्ण लेख लिखा। यह लेख भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के लिए बमविस्फोटक के समान था। इसके अनेक परिणाम हुए। जिनमें से एक था 'राजपाल एण्ड संस' नामक प्रकाशन संस्था के जन्मदाता श्री राजपाल की एक मदान्ध मुसलमान द्वारा हत्या करना। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द की अब्दुल रसीद द्वारा हत्या करना भी इसी लेख का परिणाम था। इस लेख ने धर्मान्धता को बढ़ावा दिया, घटाया नहीं। इस लेख की आर्य समाज और प्रो० इन्द्र के मन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, यह भी इन्द्र विद्यावाचस्पति के शब्दों में ही देना उचित होगा। आपने लिखा :

"सम्भवतः साम्प्रदायिक समस्या पर लेख लिखने के समय महात्माजी के मन पर उन सब मतभेदों का—गांधीजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी के मध्य उत्पन्न मतभेदों का—प्रभाव रहा होगा) महात्माजी के लिए ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज पर ऐसी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अधकचरी सम्मतियाँ देना आवश्यक नहीं था—जिन्हें कुछ ही दिनों के पश्चात् महात्माजी ने वापस ले लिया।" गांधीजी के लेख में सत्यार्थ प्रकाश को अत्यन्त निराशाजनक पुस्तक बतलाया गया था और स्वामी श्रद्धानन्दजी के स्वभाव पर प्रतिकूल टिप्पणी थी। आर्य-समाज को तो आपने उपद्रवों के नाटक का मुख्य पात्र ही बना दिया था।"

इस लेख के कुपरिणामों के विषय में प्रो० इन्द्र का मत था—"प्रारम्भिक लेख ने जो विष फैलाया था, वह पूरी तरह दूर नहीं हुआ।" कांग्रेस के बहुत से कार्यकर्ताओं और नेताओं के हृदय में आज तक भी आर्य-समाज के प्रति जो छुपा हुआ दुर्भाव है, वह उसी प्रारम्भिक विष का परिणाम है। ऐसे विषाक्त वातावरण में भी आप अडिग रहे। कांग्रेस और आर्य समाज दोनों में आप अगली पंक्ति में दिखायी दिये। कट्टरता से किनारा किये रखा। शान्त विवेक का कभी त्याग नहीं किया। आप एक ओर सार्वदेशिक सभा के मंत्री थे, दूसरी ओर दिल्ली में कांग्रेस के एक दृढ़ स्तम्भ थे। न्याय और विवेक की तुला को आपने दृढ़ता से पकड़े रखा। बहुसंख्यक समाज को आपने कोसा नहीं, दबाया नहीं, और उसके मिटानेवालों की निन्दा करने में आप पीछे नहीं रहे। एक राष्ट्रीय नेता का चरित्र और कार्य कैसा होना चाहिये, इसका एक नमूना इस समय आपने पेश किया। इन्द्रजी महात्मा गांधी के अप्रासांगिक और अनुचित प्रहारों का विरोध करते हुए भी उनके व्यक्तित्व का आदर करते रहे। महात्माजी के लेख से फैले मिथ्या भ्रम का निवारण आपने दृढ़ता से किया। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति की बहुमुखी प्रतिभा और स्थिर बुद्धि का इस समय चारों ओर विकास हुआ।

गांधीजी का उपवास

सितम्बर १९२४ में गांधीजी दिल्ली आये थे। महात्माजी दिल्ली की स्थिति का अध्ययन कर रहे थे कि इसी बीच कोहाट में भीषण दंगा हो गया। महात्माजी मौ० शौकत अली के साथ सीमा प्रान्त गये; किन्तु कोई इच्छित फल नहीं निकला। इस पर गांधीजी ने दिल्ली लौटने पर साम्प्रदायिक आग को शान्त करने के उद्देश्य से इक्कीस दिन का उपवास करने की घोषणा की। इस उपवास की घोषणा से देश भर का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित हुआ। दिल्ली के तीन नेताओं स्वामी श्रद्धानन्दजी, मौलाना मोहम्मदअली, और डा० अन्सारी की ओर से एकता सम्मेलन बुलाया गया। देश के चोटी के नेता दिल्ली में जमा हुए। इस एकता सम्मेलन को सफल बनाने में प्रो० इन्द्र ने भी भाग लिया। एकता सम्मेलन के अध्यक्ष थे श्री मोतीलाल नेहरू।

सम्मेलन में यह बात भी कही गयी कि शुद्धि आन्दोलन बन्द कर दिया जाय। यह एक मौलिक और सैद्धान्तिक प्रश्न था। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने इसका जवाब दिया था "यदि आगरा और मथुरा से मौलाना, मौलवी तबलीगिर प्रचारक वापस लौटा लेंगे तो शुद्धि सभा के उपदेशकों को भी वापस बुला लिया जायेगा। मौलाना मोहम्मद अली ने मौलवियों के पैरों में टोपी रख दी, लेकिन मौलवियों ने उनकी बात नहीं मानी। इस पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी यह सम्मेलन सफल माना गया और इसकी समाप्ति पर गांधीजी ने विधिवत् उपवास समाप्त किया।

एकता सम्मेलन के समय अर्जुन 'तेज-अर्जुन-प्रकाशन ट्रस्ट' का पत्र नहीं रहा था। न पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति उसके वैतनिक सम्पादक और प्रबन्धकर्ता ही रहे थे। वह उसके स्वामी बन गये थे। १ जून १९२५ को आपने अर्जुन पत्र और अर्जुन प्रेस ७४२० रुपये में खरीद लिया था। ४ हजार रुपये की प्राप्ति तलवन की पुस्तैनी (तायाजी द्वारा दी गयी) जायदाद जो १० बीघा जमीन थी, गिरवी पर रखकर की गयी थी।

अर्जुन का स्वामित्व लेने के ही मास में २२ जून को रात ९ बजे कन्या पुष्पा का जन्म हुआ। इससे पहले प्रियंवदा का १९२३ में जन्म हुआ था, पर वह दीर्घजीवी नहीं हुई।

आत्म-निरीक्षण और नया संकल्प

यह समय था जब प्रो० इन्द्र एक ओर जिला कांग्रेस कमेटी में थे, वहाँ स्थानीय आर्य समाज के मन्त्री भी थे। दिल्ली के सार्वजनिक जीवन में विविध कार्य करते हुए उनके दस साल बीत गये थे। इन दस सालों के अनुभवों के साथ आत्मनिरीक्षण करने के बाद आपने अपने भावी कार्यक्रम की जो रूपरेखा तैयार की थी, उसे आपने डायरी में निम्न शब्दों में लिखा––

मेरा असली झुकाव राजनीतिक कार्य-क्षेत्र की ओर है।

अब समय आ गया है कि मैं अपने लिए कार्य की कुछ निश्चित रेखाएँ चुनकर कार्य करूँ। सब सोसायटियों में शक्ति बिखेरने से कोई लाभ नहीं––इन निश्चयों के अनुसार केवल दो मार्ग दिखलाई देते हैं––

(१) स्थिरता के साथ राजनीतिक कार्य-क्षेत्र में काम करना। मेरी सहानुभूति स्वराज्य दल के साथ है––उसका साथ दूँगा।

(२) आर्य समाज और हिन्दू सभा से केवल सैद्धान्तिक अनुकूलता का सम्बन्ध रखना।

(३) दिल्ली में एक विशाल शिल्प शाला खोलना।

(४) पत्र या प्रेस को स्थिरता से चलाना।

इन्द्रजी की डायरी में १८–५–२६ के तिथि के नीचे निम्न शब्द अंकित हैं: "लगभग पाँच महीनों के पीछे आज डायरी लेकर बैठा हूँ।

"मैं तभी डायरी पकड़ता हूँ, जब मैं जीवन के किसी मोड़ पर पहुँचता हूँ या किसी निश्चय पर आ जाता हूँ।"

ये शब्द उनके जीवन की एक नाजुक स्थिति की ओर संकेत करते हैं।

इन्द्रजी उन दिनों कानपुर कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। इसमें तय हुआ था कि स्वराज्य पार्टी कांग्रेस की ओर से कौंसिल का चुनाव लड़ें। प्रति सहकार सहयोग की बात नहीं मानी गयी थी। श्री केलकर प्रभृति नेता इसी कारण कांग्रेस से पृथक् हो गये थे। कांग्रेस की साम्प्रदायिक नीति से महामना मालवीयजी और लालाजी असंतुष्ट

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थे। उन्होंने नेशनलिस्ट पार्टी या इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी की स्थापना की थी। हिन्दू सभा भी चुनाव लड़ रही थी। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी यद्यपि इस पक्ष में नहीं थे कि कि हिन्दू महासभा चुनाव में भाग ले और कांग्रेस का विरोध करे, लेकिन स्वामीजी ने श्री श्रीप्रकाश के विरोध में खड़े श्री घनश्यामदास बिड़ला का समर्थन किया और उनके लिए कार्य भी किया। स्वामीजी पार्टी भेद का ख्याल न करके योग्य उम्मीदवारों का समर्थन कर रहे थे। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के लिए यह समय बड़े धर्म-संकट का हो गया था। १५ वर्षों के सार्वजनिक जीवन में पहली बार पिता-पुत्र के बीच मतभेद हुआ था और दोनों एक ही कार्य क्षेत्र में दो विभिन्न मोर्चों पर खड़े थे। यद्यपि प्रो० इन्द्र की यह राय थी कि आगामी दस वर्षों में भारत की राजनीति में जो अव्यवस्था आ गयी, उसका मुख्य कारण यह दूषित मनोवृत्ति थी, जो 'यंग इंडिया' के एकता सम्बन्धी लेख से पैदा हुई। यह होते हुए भी प्रो० इन्द्र कांग्रेस के समर्थक बने रहे। इन्द्रजी इस बार भी केन्द्रीय असेम्बली के लिए स्वतः खड़े नहीं हुए। श्री आसफ अली को खड़ा किया। यदि प्रो० इन्द्र इस मौके पर केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव कांग्रेस की ओर से लड़ते, तो यह निश्चय था कि वे विजयी होते। क्योंकि चुनाव का फल यदि कांग्रेस के अनुकूल नहीं निकला था तो मालवीयजी और लालाजी के उम्मीदवार श्री शिवनारायण के भी अनुकूल नहीं था। कांग्रेस और इण्डिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी दोनों की हार हुई और एक तीसरा व्यक्ति चुन लिया गया। प्रो० इन्द्र यदि खड़े होते तो ये वोट बँटते नहीं, और शहर में उनका जो आदर और सम्मान था, उसको देखते हुए उनकी विजय असंदिग्ध थी। उनके खड़े होने की अवस्था में महामना मालवीयजी और लालाजी भी उनके मुकाबले अपनी पार्टी का उम्मीदवार खड़ा न करते। श्री मोतीलाल नेहरू ने तब इन्द्रजी को खड़ा होने के लिए इसी कारण आग्रह किया था। परन्तु इन्द्रजी का स्वास्थ्य बाधक हुआ। अस्वस्थता में वह निर्वाचित सदस्य की जिम्मेदारी नहीं निभा सकते थे। परन्तु कांग्रेस का साथ देने का आपने जो निश्चय किया, उस पर दृढ़ रहे। काशी और गोरखपुर के निर्वाचन-क्षेत्र में इन्द्रजी श्रीप्रकाशजी के पक्ष में प्रचार करते रहे, और श्री स्वामीजी बिड़लाजी के पक्ष में। इन्द्रजी पर भी दबाव कम नहीं पड़ा। पर वे चट्टान की तरह अटल रहे। इस समय की मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए इन्द्रजी ने लिखा है :

"मेरे सामने बहुत बड़ा धर्म संकट था। मैं लालाजी और स्वामीजी दोनों को पूजा के योग्य मानता था। उनमें से एक की भी बात टालने की शक्ति मुझ में नहीं थी। जब दोनों एक मत हों तो मैं क्या करूँ? पर जो लोग किसी सम्मति पर पहुँचने में देर लगाते हैं, वे उसे छोड़ते भी देर में हैं। मैं भी उन सुस्त आदमियों में रहा हूँ। मैंने लालाजी से निवेदन किया, मेरे लिए आपकी आज्ञा उतनी ही बड़ी है, जितनी बड़ी स्वामीजी की आज्ञा। परन्तु ऐसे मन्तव्य सम्बन्धी विषयों में मुझे स्वामीजी ने सदा स्वतंत्र रखा है। इसी बल पर मैं अपने मन्तव्य के अनुसार चलने का साहस करता रहा हूँ। मुझे आशा है, आप भी मुझे इतना अधिकार देंगे कि मैं अपनी आत्मा के शब्द को अनसुना न करूँ। मेरा मन्तव्य है कि राजनीतिक चुनाव में कांग्रेस का समर्थन करना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लालाजी का भावुकतापूर्ण उत्तर था––"इन्द्र, जो अधिकार तुम्हें स्वामीजी ने दे रखा है, उसे मैं कैसे छीन सकता हूँ ? तुम अपने विचार के अनुसार कार्य करो, परन्तु याद रखो कि इस चुनाव में तुम्हें कामयाबी न होगी।"

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति का विनम्र उत्तर था––"वह तो मैं भी समझता हूँ, परन्तु मैं प्रयत्न में कोई कसर नहीं उठा रखूँगा। सफलता ईश्वराधीन है।"

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रो० इन्द्र उन दिनों कांग्रेस कमेटी के उच्च पदाधिधिकारियों में नहीं थे। परन्तु उनकी निष्ठा और उनके स्वातन्त्र्य प्रेम ने उन्हें कांग्रेस का साथ देने की प्रेरणा दी थी।

स्वामीजी का बलिदान

प्रो० इन्द्र पर दैव ने एक और भारी विपत्ति गिरायी। उनके वन्दनीय पिता श्री-श्रद्धानन्दजी की हत्या एक मदान्ध मुसलमान ने कर दी। गांधीजी के दो साल पुराने लेख ने साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के अल्पसंख्यक उपद्रवियों को खुली छूट दे दी थी। कौंसिलों के चुनाव ने भी साम्प्रदायिक आग को भड़काया था, बुझाया नहीं था। दृष्टिकोण बदल गये थे। देश का स्थान मजहब ने ले लिया था।

कांग्रेस ने इस नीति का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया था कि मजहबी जोश को शान्त रखने का उपाय उसका परितोष है। इस उपाय के प्रयोग से वह और अधिक प्रबुद्ध हुआ। इसीलिए जब करांँची से असगरी बेगम आईं और उसके बच्चों की चावड़ी बाजार आर्य-समाज दिल्ली ने शुद्धि की और उसको शान्ति देवी बना दिया, तो इस्लामी मजहबी जोश भड़क उठा। तंजीम का जवाब शुद्धि के रूप में पाकर मुसलमान विक्षुब्ध थे। क्योंकि दुनिया के धर्मों और जातियों में एक मात्र हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म ही ऐसा था, जो अपना विस्तार नहीं करता था, और अपने से बाहर गये लोगों को वापस अपने में मिलाने से इन्कार करता था। इसका लाभ ईसाइयों के समान मुसलमान भी उठाते थे। मौलाना मुहम्मद अली ने तो कोंकीनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष पद से यह सौदा करना चाहा था, कि ६ करोड़ अस्पृश्यों में से आधे मुसलमानों को दे दिये जायें। आश्चर्य की बात यही थी कि इस सौदे के प्रस्ताव का गांधीजी और कांग्रेस तक ने कभी विरोध नहीं किया। इस विषाक्त भावना को फैलने से रोकने का भी कोई यत्न नहीं किया गया। भारत में धर्म-परिवर्तन का एक विशेष महत्त्व है। जो धर्म-परिवर्तन करता है, वह भारतीय इतिहास, परम्परा और संस्कृति को भूल जाता है। वह भारत में बसता हुआ भी अभारतीय हो जाता है। इस दृष्टि से मिशनरियों के प्रचार के समान मुल्ला-मौलवियों का प्रचार भी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में बाधक और हानिकारक है। दूसरी ओर आत्म-विस्तार न करनेवाली जाति भी अधिक दिनों तक टिकी नहीं रह सकती। धर्म-परिवर्तन अभारतीय तत्त्वों को बढ़ाना है। इस वास्ते उनके हिन्दू धर्म में वापस आने का स्वागत अभारतीय तत्त्व नहीं कर सकते। क्योंकि इससे उनका संख्या बल घटता है, उनकी प्रतिष्ठा कम होती है। और उनके प्रभाव में ह्रास होता है। इसलिए असगरी बेगम की शुद्धि ने मुस्लिम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंजुमनों को उद्विग्न कर दिया। शान्ति के पिता और पति भी आये। उन्होंने उसको पुन: इस्लाम ग्रहण करने की प्रेरणा दी। परन्तु उस देवी ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। मौलवी और मुल्ला समाज इसके लिए उसको क्षमा करने को तैयार नहीं था। शान्ति देवी पर बच्चे उड़ाने और स्वामीजी, लालाजी और अन्य बहुत-से लोगों पर इस कार्य में सहायता देने का मुकदमा चलवा दिया गया। ब्रिटिश सरकार इस मुकदमे के प्रति तटस्थ नहीं थी। इस अभियोग के अभियुक्तों में प्रो० इन्द्र भी थे। ४ दिसम्बर १९२६ को उस मुकदमे का फैसला सुनाया गया। सब लोग बरी हो गये। इससे भी हसन निजामी और उनका दल सन्तुष्ट नहीं हुआ। दरवेश पत्र हसननिजामी का था। यह अनेक बार स्वामीजी का वध करने का संकेत दे चुका था। स्वामीजी को इस आशय के सैकड़ों गुमनाम पत्र आ चुके थे। परन्तु इन धमकियों का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भी कोई कार्यवाही नहीं की। दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में एक मदान्ध मुसलमान अब्दुल रशीद ने रोग-शैया पर लेटे स्वामीजी को रिवाल्वर की गोली का निशाना बना दिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बलिदान के बाद

स्वामीजी के निजी सहायक श्री धर्मपालजी ने उस समय हत्यारे को पकड़ा था। उस समय की परिस्थिति और उस समय इन्द्रजी के सन्तुलित विवेक का विवरण उन्होंने अपने संस्मरण में बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है। हम उसका एक अंश यहाँ देते हैं——

"सन् १९२१ में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने मुझे अपने पास बुला लिया। क्या कारण थे, यह अंकित करने का स्थान नहीं है। दिसम्बर सन् १९२६ में स्वामीजी की शहादत के समय तक मैं उनके पास रहा। वह 'शुद्धि' का युग था। दिल्ली जैसे उर्दू के गढ़ से हिन्दी का दैनिक निकालना कुछ हँसी-ठट्ठा का खेल न था। प्रेस आदि की देखभाल के लिए पण्डितजी ने मुझे ले लिया। सायंकाल ५ बजे तक स्वामीजी के पास रहता और ५ बजे से रात्रि ९ बजे तक मैं प्रेस की देखभाल करता। इस व्यवस्था से पण्डितजी के बहुत ही निकट आ गया। प्रतिदिन साथ-साथ रहने से उनका पारिवारिक सदस्य-सा बन गया। शुद्धि के प्रचार के लिए स्वामीजी ने जिस प्रकार 'तेज' अखबार को धन दिया, उसी प्रकार 'अर्जुन' के प्रेस के लिए भी धन दिया था। उस धन को वापस करके शुद्धि-सभा में जमा करने का कष्टकर उत्तरदायित्व मुझ पर था। 'अर्जुन' की दैनिक बिक्री से जो कुछ आय होती थी, वह सब मैं ले आया करता था और शुद्धि के हिसाब में दे दिया करता था। 'अर्जुन' का प्रारम्भ का समय था। आर्थिक दृष्टि से यह समय पण्डितजी के लिए बहुत संकट का काल था। इस विषम परिस्थिति में मेरे उत्तरदायित्व का विचार करके पण्डितजी ने किसी अन्य प्रकार से कभी नहीं सोचा और उनका स्नेह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया।

देश में नवीन शासन विधान बनने का समय था——हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष हो रहा था। ऐसे समय में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे थे। कुछ राजनीतिज्ञों का ऐसा विचार था कि इस 'शुद्धि-आन्दोलन' के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं हो सकेगी और इसी कारण स्वराज्य नहीं मिल रहा——नहीं तो स्वराज्य मिलना तो कल की बात है। स्वामी श्रद्धानन्दजी अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचे थे कि हिन्दू जाति की रक्षा और सच्चे स्वराज्य की कल्पना हिन्दू संगठन से ही की जा सकती है। उसी समय हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्भव है, जब हिन्दुओं का दृढ़ संगठन हो जाय। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए और देश के लिए भी हिन्दू-संगठन कल्याणकारी होगा। लाला लाजपतराय, पं० मालवीयजी, पं० नेकराम शर्मा आदि जैसे देश के मूर्धन्य नेता भी इसी परिणाम पर पहुँच चुके थे और वे इन कार्यों में सहायता करते थे। पं० इन्द्रजी का ध्यान राजनीति की ओर अधिक था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पण्डित इन्द्रजी इन विचारों से पूर्णतया सहमत प्रतीत नहीं होते थे । जब कभी वे इस मतभेद को स्वामीजी से प्रकट करते थे, तो उनका मत प्रकट करने का ढंग इतना मधुर, शिष्ट और संयत रहता था कि जिसका सुनना सैद्धान्तिक दृष्टि से बड़ा स्फूर्तिदायक होता था । यह कहना कठिन हो जाता था कि एक महापुरुष और उसके पुत्र में मतभेद होने पर भी अधिक शिष्ट, अधिक स्पष्ट भाषा में कौन अपने विचार प्रकट कर रहा है । पण्डितजी के धैर्य, समबुद्धि और स्थिरचित्त होने का एक प्रसिद्ध उदाहरण उस समय प्रकट हुआ, जब कि २३ दिसम्बर को स्वामीजी की शहादत हुई । स्वामीजी का वह कमरा दु:खी और उत्तेजित व्यक्तियों से भरा हुआ था । प्रायः बहुत-से लोग आवेश में ठीक-ठीक स्थिति का अन्दाज भी नहीं कर पा रहे थे । हत्यारा मेरे नीचे था और दिखलाई नहीं देता था । ठाकुर राजाराम आदि स्वयंसेवकों की छूरियाँ कभी-कभी मेरी पीठ से छूती हुई अनुभव होती थीं । बहुत थोड़े स्थान में होने से यह ज्ञात नहीं होता था कि कातिल कहाँ है ? पण्डितजी रूल से लोगों को मार-मार कर पीछे हटाते थे और कहते थे कि यह तो धर्मपालजी हैं और हत्यारा इनके नीचे है, तब कहीं जाकर कुछ मिनटों में लोगों को सारी स्थिति समझ में आयी । जब पुलिस ने हत्यारे को मेरे हाथ से ले लिया, उस समय जिस धैर्य का पण्डितजी ने परिचय दिया, वह असाधारण था । यह ही समझाते थे कि कानून को अपना कार्य करने देना चाहिए, उसे अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए । उस समय का पण्डितजी का कथन और बाद में पण्डितजी का इस सम्बन्ध में दिया गया बयान आवेशपूर्ण विवाद का विषय बन गया था । समय बीतने पर सभी समझदार व्यक्तियों ने उनके कथन का समर्थन किया ।

इस घटना ने भारत की साम्प्रदायिक एकता की आशा का अन्त कर दिया । जामा मस्जिद के पिम्बर पर से भाषण देनेवाले को भी इस्लाम का दिवाना गोली मारने से नहीं हिचकता, संकोच नहीं करता । इसने प्रमाणित कर दिया कि मजहबी पागलपन का इलाज उस पागलपन को सन्तुष्ट करना नहीं है । जैसे धन देने से डाकू डाका डालना नहीं छोड़ता, उसी तरह से मजहबी पागलपन भी खुशामद से नहीं उतरता ।

पिता, पिता ही है । भले ही वह संन्यासी हो । फिर यदि वह महान् हो, तो उत्तर-दायित्त्व भी महान् हो जाता है । इस घटना ने बुद्धि प्रधान प्रो० इन्द्र को भी आमूल हिला दिया । उन्होंने बलिदान के बाद संस्मरण में लिखा—"यमुना तट से लौटकर मैं अकेला अपने लिखने के कमरे में पहुँचा । कमरे में मेरी बैठने की कुर्सी के ऊपर पिताजी का बड़ा चित्र था, और मैं था । उस समय मैंने अनुभव किया कि मैं अकेला रह गया । मेरे बड़े भाई पहले ही विलायत जाकर लापता हो चुके थे । पिताजी भी चले गये और अब इस तूफानी दुनिया में आकाश और पृथ्वी के बीच में मैं अकेला लटकता रह गया । मन में यह भाव आते ही मेरा वह कृत्रिम धर्म और स्थिर भाव जाता रहा । और आँसू बाँध को तोड़कर बह निकले । मैं बहुत देर तक आवाज के साथ रोया, यह मुझे भली प्रकार याद है ।"

प्रकट है कि स्वामीजी का बलिदान प्रो० इन्द्र के लिए एक वैयक्तिक आपत्ति थी ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सदा छाया और आश्रय देनेवाला वट-वृक्ष गिर गया था। प्रो० इन्द्र बुद्धि प्रधान व्यक्ति थे, अन्यथा संभव था कि इस जोरदार धक्के को न सम्भाल सकने के कारण अपनी राह बदल लेते। परन्तु प्रो० इन्द्र पहले के समान अपने पथ पर दृढ़ता से आगे बढ़ते गये। उन्होंने अपना कार्य भी नहीं छोड़ा। 'अर्जुन' ने अपने स्वामी और संचालक का अनुसरण किया। उसने सन्तुलन नहीं खोया। वह शान्त और स्थिर रहा। प्रो० इन्द्र की भारी परीक्षा ली गयी थी। और इस परीक्षा ने उन्हें राष्ट्र-पुरुषों की श्रेणी में बिठा दिया। उनका व्यक्तित्व एक नये आलोक से चमक उठा। प्रो० इन्द्र यह कहकर सन्तोष कर लेते थे, "होनेवाली घटना होकर रही।"

साइमन कमीशन का भारत में आगमन और कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों द्वारा उसका बहिष्कार करने के निश्चय ने देश में एक नयी राजनीतिक लहर दौड़ा दी। लोगों को एक नया काम मिला। 'साइमन गौ बैक' की आवाज से भारत का आकाश गूँज उठा। अर्जुन' ने भी इस लहर को आगे बढ़ाया और पुष्ट किया।

आर्य-सम्मेलन और आर्य रक्षा-समिति

प्रो० इन्द्र का कार्य क्षेत्र यहाँ तक सीमित न था। आर्य सार्वदेशिक सभा का मन्त्री इतने सीमित क्षेत्र में अपने को सीमित नहीं रख सकता था। धर्म-रक्षा का प्रश्न उसके सामने था। स्वामीजी के हत्यारे अब्दुल रशीद के निवास-स्थान की गली में से कागजों का बण्डल मिला था। वह सी० आई० डी० ने प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति और श्री देशबन्धु गुप्त को दिया था। इस बण्डल में ऐसे पत्र थे, जिनमें कहा गया था कि स्वामीजी काफिर हैं, और उनका बध करना पुण्य का काम है। यह कागजों का बण्डल श्री विसेण्ट स्मिथ को दे दिया गया था। उसके बाद उस बण्डल का कुछ पता न चला। इसके कारण आर्य-समाज अपने को असुरक्षित समझता था।

इस भावना को बरेली की घटना ने और बढ़ा दिया। १९२७ के मुहर्रम पर बरेली में दंगा हुआ। मुस्लिम मजमे ने आर्यसमाजियों पर आक्रमण किया। परन्तु पुलिस ने आर्यसमाजियों को ही गिरफ्तार किया। यही नहीं, पुलिस बूट पहने आर्यसमाज की बेदी पर चढ़ गयी और सत्संग में बैठे आर्य पुरुषों को गिरफ्तार किया। इसने आर्य-समाज को आत्म रक्षा की प्रेरणा दी। फलतः आर्य-सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया गया। आर्य-सम्मेलन बुलाने का भार प्रो० इन्द्र पर पड़ा। प्रो० इन्द्र स्वागत-समिति के प्रधान मन्त्री बनाये गये। आर्य-सम्मेलन के अध्यक्ष महात्मा हंसराज थे। इस सम्मेलन ने महात्मा नारायण स्वामी और प्रो० इन्द्र के प्रस्ताव पर आर्य-रक्षा-समिति और आर्य-वीर दल की स्थापना का भी निश्चय किया। इसे क्रियान्वित करने के लिए प्रो० इन्द्र समेत १६ व्यक्तियों की एक समिति गठित की गयी। आर्य-रक्षा-समिति के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी थे और मन्त्री प्रो० इन्द्र। आर्य-रक्षा-समिति के कार्य का अन्दाजा इस बात से किया जा सकता है कि १९३२ के अन्त तक आर्यवीर दल में ११५०० स्वयंसेवक भरती हो गये थे और ५०००० से अधिक रुपया जमा हो गया था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'अर्जुन' पर सरकार का प्रथम प्रहार : जेलयात्रा

प्रो० इन्द्र की जीवनधारा इस समय दो धाराओं आर्य समाज और कांग्रेस में विभक्त होकर बह रही थी। 'अर्जुन' इन दोनों को मिलाये रखता था। इससे प्रो० इन्द्र का व्यक्तित्व विदेशी सरकार की नजरों में और अधिक खटकने लगा था। उसने अनुभव किया था कि स्वामीजी के बाद दिल्ली में उसका एकमात्र प्रबल शत्रु यदि कोई है तो वह प्रो० इन्द्र है। वह सदा एक ही पथ पर रहता है। विरोध में कलम उठायी, तो कभी गिरायी नहीं। ब्रिटिश सरकार के समर्थन में इसने कभी कुछ नहीं लिखा। ब्रिटिश सरकार से कभी किसी किस्म की दया की भी याचना नहीं की। विदेशी सरकार को यह खटकता था। उसकी निगाह में १९१४ से ही प्रो० इन्द्र खटक रहे थे। उनका यही अपराध था कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के अभेद्य दुर्ग दिल्ली को तोड़ दिया था। कलकत्ता छोड़कर नयी दिल्ली राजधानी बनायी गयी थी। इस कारण कि यहाँ राजनीतिक आन्दोलन न होने से सरकार सुख की नींद सोयेगी। परन्तु प्रो० इन्द्र ने दिल्ली को राजनी-तिक हलचलों का केन्द्र बनाकर उसकी आशा पर तुषारपात ही नहीं कर दिया था; बल्कि उसकी नींद भी हराम कर दी थी।

दिल्ली उर्दू का अजेय गढ़ माना जाता था। मशहूर हो गया कि लखनऊ फतह हो सकता है, दिल्ली नहीं। पर यह धारणा भी गलत निकली। उर्दू के रहते ब्रिटिश सरकार निश्चिन्तता की साँस ले सकती थी। उर्दू देश को सुलानेवाली भाषा थी। वह दास्ता की जड़ें मजबूत करती थीं। वह स्वतन्त्रता और स्वाधीनता की भावना नहीं जगाती थी। साधारण जनता को दूर ही रखती थी। ब्रिटिश सरकार इसलिए उर्दू को चाहती थी, और हिन्दी की दुश्मन थी। हिन्दी स्वाधीनता और राष्ट्रीय एकता की प्रतीक थी। इसके आज के प्रहरी थे प्रो० इन्द्र। उर्दू के गढ़ को उन्होंने गिरा दिया था और हिन्दी की पताका उस पर फहरा दी थी। इससे संकेत मिलता था कि भारत में अंग्रेजों के रहने के दिन गिनती के रह गये हैं। इस स्थिति को लाने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति को सरकार कैसे छूट देकर खुलकर काम करने दे सकती थी।

'अर्जुन'

सरकार ने पहला प्रहार १९२६ में किया।

'अर्जुन' के सम्पादक इस समय श्री सत्यकाम विद्यालंकार थे। प्रो० इन्द्र इसके प्रमुख और प्रकाशक थे। प्रो० इन्द्र के लेख 'नारद' के नाम से बराबर उसमें निकलते थे। 'अर्जुन' आर्य-समाज के आन्दोलनों का भी प्रबल प्रवक्ता था, आर्य-समाज की किसी संस्था से सम्बद्ध न होता हुआ भी यह पत्र आर्य-समाज का मुख्य प्रवक्ता कहा जाता था। कांग्रेस की आत्मा को पढ़ने के लिए भी 'अर्जुन' को पढ़ना पड़ता था। दिल्ली की ये दोनों ही संस्थाएँ सबल और सजीव थीं। इनमें प्राण भरने का कार्य प्रो० इन्द्र का 'अर्जुन' करता था। अतः 'अर्जुन' का संचालक ब्रिटिश सरकार की आँखों में खटकता था। १९१४ से दिल्ली में जितने पुलिस अंग्रेज अधिकारी आये थे, उन सबने जाते वक्त सरकार को यह राय दी थी कि सरकार प्रो० इन्द्र से सावधान रहे। यह सबसे बड़ा राजद्रोही है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतने भयंकर व्यक्ति को जो रोज ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ में मट्ठा डालता था, विदेशी शासन बहुत दिनों तक स्वाधीन नहीं रहने दे सकता था। आश्चर्य की बात यह थी कि सरकार ने उनको कभी क्रान्तिकारियों के साथ नहीं फाँसा और न मेरठ षड्यन्त्र में ही उन्हें घसीटा।

जेलयात्रा और उसके अनुभव

विदेशी शासन यदि प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति की स्वतन्त्रता छिनने को व्यग्र था, तो स्वतः पण्डितजी भी जेल जाने की बरसों से प्रतीक्षा कर रहे थे। फर्क इतना ही था कि जिस रीति से वे भेजे गये, वह आश्चर्यजनक थी।

पण्डितजी कश्मीर गये हुए थे। उनके पीछे 'अर्जुन' में कुछ लेख और समाचार छपे, जो सरकार की नजरों में आपत्तिजनक समझे गये। इनको लेकर सरकार ने पत्र के ख्यातनामा सम्पादक श्री सत्यकाम विद्यालंकार पर मुकदमा चलाया। प्रो० इन्द्र भी इसमें फँसाये गये। क्योंकि वे ही पत्र के प्रकाशक और मुद्रक थे। मुकदमे का फैसला जब सुनाया गया, तब सभी लोग बहुत आश्चर्यचकित हुए, जब एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने इन्द्रजी की अनुपस्थिति को स्वीकार करते हुए भी उन्हें साढ़े पाँच साल की सख्त जेल और डेढ़ हजार रुपये जुर्माने की सजा दी। दरवाजे के बाहर पुलिस की लारी तैयार खड़ी थी। इन्द्रजी के बैठते ही वह चल दी और कोई बीस मिनिट में जेल के द्वार पर पहुँच गयी।

छः घण्टे दफ्तर में बैठे रहने के बाद प्रो० इन्द्र को अनुभव हुआ कि दिल्ली जेल का प्रबन्ध बहुत ही निकम्मा है। जिस दफ्तर में सफाई की व्यवस्था नहीं हो सकती, उसका आन्तरिक प्रबन्ध साफ-सुथरा कैसे रह सकता है।

शाम बिताने के लिए वे चक्कियोंवाली छोटी कोठरी में रखे गये। उस समय तक (१९२७) कैदियों का वर्गीकरण नहीं हुआ था। सोने के वास्ते एक चटाई, दो पुराने काले कम्बल और एक चादर दी गयी। भोजन आदि के वास्ते दो तसले भी दिये गये। जेल की एक विशेषता थी कि उसका ऐसा कोई भाग न था, जिसमें हल्की-हल्की बदबू न आती हो। प्रो० इन्द्रजी ने जेल के संस्मरणों में लिखा है--"इतनी मक्खियाँ मैंने आज तक अपने जीवन में कहीं नहीं देखीं, जितनी उस जेल में थीं, और वह भी बहुत ढीठ। तसले में पानी लेकर मुँह तक पहुँचाने के पहले ही उसमें दसों मक्खियाँ पड़ जाती थीं। जो खाना जेल की ओर से बाँटा जाता था, उसमें तो मसाले से अधिक मक्खियों की मात्रा रहती थी।"

'अर्जुन' के सम्पादक और प्रकाशक को १२ और १३ नम्बर की कोठरी मिली थी। इन्द्रजी स्वयं लिखते हैं--"उस कोठरी को देखकर पहले तो मन में बहुत ही घृणा पैदा हुई। कोठरी इतनी छोटी, अँधेरी और मैली थी कि उसमें मनुष्य का निवास हो सकता है, यह समझना ही कठिन था। परन्तु शीघ्र ही ध्यान आ गया कि यही तो जेल है, जिसमें आने की मैं प्रतीक्षा कर रहा था। उस विचार के मन में आते ही दिल हलका हो गया और मैंने अन्दर जाकर चटाई उलट दी और उस पर अपना सामान अर्थात् जेल का कम्बल,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चादर और तसला रख दिया ।" जेल के विषय में जो काल्पनिक चित्र प्रो० इन्द्र के दिमाग में बना हुआ था, वह कुछ भिन्न था । इन्द्रजी आगे लिखते हैं--"कहा जाता है कि जेल केवल अपराधियों को दण्ड -देने का ही स्थान है, नहीं उनके सुधारने का भी साधन है । मैंने जेल में दो दिन रहकर भी यह अनुभव कर लिया कि यह कथन सर्वथा असत्य है । सच्चाई इससे बिलकुल उल्टी है । आजकल के कारागारों को अपराधियों की शिक्षा के विश्व-विद्यालय कहा जाये, तो अत्युक्ति न होगी ।"

इतने रद्दी जेल में रहते हुए भी प्रो० इन्द्र की मन:स्थित शान्त रही । उनका विचार यही बना कि जेल आना लाभदायक ही रहा ।

फिरोजपुर जेल

दिल्ली में पण्डितजी कुछ ही दिन रहे । बाद में फिरोजपुर की जेल में भेज दिये गये। फिरोजपुर में गर्मी बहुत पड़ती है । उसका उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर हुआ । कॉलिक दर्द अनेक बार उठा । बुखार भी आने लगा । भार भी घटने लगा । ११ मार्च शनिवार को उनका भार १३१ पौण्ड था ।

साइमन-कमीशन के १५ मार्च को दिल्ली में आने के समाचार से इन्द्रजी ने अनुमान लगाया कि इसी कारण उनको सरकार ने जमानत पर रिहा करने से इनकार कर दिया है । इस बीच पण्डितजी का वजन घट रहा था, यह चिन्ता की बात थी । अगले दिन उनको फिर तौला गया और वह १२५ पौण्ड तक पहुँच गया ।

जेल में चार मास बीतने पर उनके मुख से अनायास निकला 'शुभ मस्तु' जेल में साइमन कमीशन के आने के समाचार पर इन्द्रजी ने इतिहास का अन्तिम परिच्छेद लिखा । इसके साथ ही पण्डितजी ने जो अनुभव किया; वह डायरी में लिखा--

"गुण कार्य विहीनानि,
दिना न्यायान्ति यान्ति च ।।"

"दिन गुजर रहे हैं । परन्तु, क्या उनसे मैं निर्धन हो रहा हूँ ?" दिल से उत्तर मिलता है कि ये दिन मेरे लिए लाभदायक ही हैं । भगवान् की जैसी मर्जी यह सूचित करता है कि इन्द्रजी का जीवन भगवद् अर्पित था ।

मुकदमा और जेल के जीवन से पण्डितजी ने अनुभव किया कि अब कार्य-क्षेत्र में जाकर आगे बढ़ने का यत्न करना चाहिए । पुलिस के छोटे-छोटे आदमियों और अन्य कर्मचारियों की आलोचना छोड़कर नौकरशाही की आलोचना करनी चाहिए ।

जेल में इन्द्रजी का स्वास्थ्य गिरता ही गया और अन्त में १० मई को ११ बजे आपको जेल से रिहा कर दिया गया । जेल से छूटकर आप स्वास्थ्य सुधार के लिए शिमला चले गये ।

पुनः कार्य-क्षेत्र में

कुछ दिन शिमला रहकर स्वस्थ होने के बाद आप पुन: दिल्ली के कार्य-क्षेत्र में उतर पड़े ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी दुबारा गुरुकुल छोड़कर दिल्ली में ३१ अक्तूबर १९२२ को आये थे। दिल्ली की स्थिति को समझने के बाद आपको तब यहाँ हिन्दू संगठन की आवश्यकता अनुभव हुई। दूसरी ओर कांग्रेस में भी नये प्राण फूँकने का प्रण किया। उसी समय श्री देशबन्धु गुप्त के साथ मिलकर दिल्ली में राष्ट्रीय सप्ताह मनाने का उन्होंने आयोजन किया। कांग्रेस के अन्तर्गत बनी संरक्षात्मक कमेटी के आप मन्त्री बने। 'तेज' और 'अर्जुन' के प्रकाशन के वास्ते स्वामीजी ने 'हिन्दू पब्लिसिटी ट्रस्ट' बनाया। इसके सेक्रेटरी श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति बनाये गये। इसके अन्य सदस्य थे——लाला नारायणदास, ज्ञानचन्द, दीवानचन्द, और बुलाकीदास।

११ नवम्बर १९२२ के दिन की स्थिति को आपने डायरी में इस प्रकार लिखा है——

'मैं इस समय हिन्दू पब्लिसिटी ट्रस्ट' का मंत्री और 'अर्जुन' का सम्पादक हूँ। १२५ रुपये 'अर्जुन' से और ५० रुपये 'तेज' से लेता हूँ। पत्रों की दशा बिलकुल सन्तोष-जनक नहीं है। दोनों पत्र यदि थोड़े दिन और चल गये तो स्थिर हो जायेंगे। 'अर्जुन' के लिए प्रेस का बन्दोबस्त हो रहा है।

"मैं कांग्रेस कमेटी का मंत्री हूँ। परन्तु अगले साल नहीं रहना चाहता। कारण कि दो पत्रों की व्यवस्था के कारण पर्याप्त समय नहीं दे पाऊँगा।

"आर्य-समाज और हिन्दू-सभा में केवल गौण तरीके पर हिस्सा ले रहा हूँ। जब तक समाचार-पत्र अपने पाँव पर खड़े न हो जायें, मैं अन्य कार्यों में अधिक समय न दे पाऊँगा। पत्रों द्वारा ही समाज सेवा करने का यत्न करूँगा।

इस समय खर्च को कम करना अत्यन्त आवश्यक है। मेरा घर का खर्च ११० रुपये से अधिक नहीं बढ़ना चाहिए। इस महीने यह यत्न करूँगा।"

इन्द्रजी ने ७४२० रुपये देकर 'अर्जुन' पत्र और प्रेस खरीद लिया। इसके साथ 'अर्जुन' को साप्ताहिक कर दिया। क्योंकि साप्ताहिक किये बिना पत्र और प्रेस की रक्षा करना सम्भव नहीं था।

उन्हीं दिनों इतनी रोक-थाम के बाद भी आप सार्वजनिक सेवा में निरन्तर समय देते रहे। हिन्दू महासभा का अधिवेशन दिल्ली में होनेवाला था, इसकी स्वागत समिति के निर्वाचन को देखकर पण्डितजी को दुःख हुआ और आपने अनुभव किया कि कुछ दुराग्रहियों के वास्ते बहुसंख्यकों को दबना पड़ा। इसका कारण आपकी राय में यह था—— "दिल्ली के कुछेक सनातनधर्मियों की वही हालत है, जो कांग्रेस में मुसलमानों की है। ज्यों-ज्यों उनकी खुशामद करो, त्यों-त्यों वह ऐंठते हैं।"

आर्य समाज और गुरुकुल के प्रति भी आप उदासीन नहीं थे। १७ मार्च १९२७ को पण्डितजी का गुरुकुलोत्सव पर रात में व्याख्यान हुआ। व्याख्यान बहुत ही प्रभावशाली था। आर्य समाज में आपने फिर सक्रिय सहयोग दिया। सार्वदेशिक सभा के उप-मंत्री निर्वाचित हुए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्नी वियोग

जेल-यात्रा के बाद आप पर जो सबसे बड़ी विपत्ति आयी, वह पत्नी के वियोग की थी । अपनी धर्म-पत्नी विद्या से आपका अगाध प्रेम था । उसके वियोग पर आपने उसे जिन शब्दों में स्मरण किया उन्हें इन्द्रजी की डायरी से यहाँ देना उचित होगा ।

"८ मास पहले मैंने जब यह सुझाव रखा था कि मुझे पाँच सौ रुपया जुर्माना और सत्यकाम को तीन या ६ मास की जेल हुई तो मेरा विचार है कि मैं जुर्माना न देकर जेल जाऊँ । तुम्हारी क्या राय है ? तब विद्या ने मेरे पाँव पकड़कर कहा था । 'यही ठीक है आपको मेरी खातिर अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए । · · · मैं इसका विरोध नहीं करती ।' यद्यपि कई बातों से विद्या बहुत साहसिक प्रतीत नहीं होती थी, परन्तु जहाँ वस्तुतः देश धर्म या आत्म-सम्मान का सम्बन्ध हो, वहाँ आज तक कभी उसने मेरे रास्ते में रुकावट नहीं पैदा की । उल्टा उत्साह बढ़ाया है । वह दिखावटी नहीं, अपितु असली अर्थों में वीरांगना थी । मेरा सौभाग्य था कि मुझे जो संगिनी मिली वह मुझे सच्चाई के रास्ते पर चलते देखकर और समाज में यश पाता देखकर खुश होती थी । कभी अपने सुख के लिए उसने रुपये-पैसे का तकाजा नहीं किया । मेरे सुख में ही वह अपना सुख समझती थी ।"

वियोग के आठ मास बाद शिमला में बैठे हुए इन्द्रजी ने जीवन-संगिनी के लिए सोचा—"मैं अभागा शिमले में अकेला बैठा हूँ । वह मेरी जीवन संगिनी, धर्म-पत्नी, पतिव्रता, साध्वी, लक्ष्मी इस संसार में नहीं है ।"

उन्हीं दिनों डायरी के एक पन्ने पर लिखा—"मेरा यह संसार सूना हो गया । एक लड़की को जन्म देकर मेरी लक्ष्मी (आदर और प्रेम से इन्द्रजी विद्या को लक्ष्मी कहते थे) बिदा हो गयी । वह पतिव्रता तपस्विनी चली गयी । मैं शायद उसके योग्य न था । वह मेरे जीवन में मीठी याद छोड़ गयी—और मुझे अकेले ही लम्बा और रूखा सफर तय करने के लिए छोड़ गयी ।"

"आज यदि मुझसे कोई सबसे बड़ा आशीर्वाद माँगे तो मैं यही कहूँगा—'उसे ऐसी अच्छी सहधर्मिणी मिले और जन्म भर उसका साथ न छूटे । लक्ष्मी में आदर्श हिन्दू महिला के गुण थे ।' "

"मेरे शुभ कार्य थोड़े ही थे कि वह मुझे छोड़ गयी । इस अवसर पर बहनजी (वेद-कुमारीजी) ने माता का कर्तव्य पालन किया । बहन के स्नेह के समान दूसरा प्रेम नहीं है । मेरे लिए दुनिया में केवल बहन का प्रेम ही शेष है । प्रेम के दूसरे संयोग बिदा हो चुके हैं ।"

उसके वियोग पर आपने अपने कर्त्तव्यों का स्मरण करते हुए डायरी में "मेरा कर्त्तव्य लक्ष्मी को सदा जीवित समझना है । और उसकी इच्छाओं को पहले से भी अत्यधिक तत्परता के साथ पूर्ण करना है ।"

उन कर्तव्यों की सूची भी आपने डायरी में इस प्रकार दी:—

(१) "बच्चों को अपने पास रखना उनके लिए 'माँ' बनने का यत्न करना ।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(२) जयन्त और उसकी बहनों को सुयोग्य बनाना ।

(३) सदा गरीबी में रहना । आज तक जब कभी गरीबी को छोड़कर अमीरी की, लक्ष्मी के इच्छा के विरुद्ध ही की ।

(४) देश और धर्म की सेवा में जीवन का समर्पण करना ।

(५) जाति-पाँति के विद्वेष को बढ़ाने में सहायक न होना ।

(६) दिल्ली में घर बनाना ।

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के सामने एक विकट समस्या थी । पत्नी का विछोह हो गया था, बच्चे छोटे थे, उनकी देख-रेख करनेवाला कोई न था, इन्द्रजी बच्चों को अपने पास ही रखना चाहते थे, घर उजाड़ना उनको पसन्द न था, संतति रक्षा के लिए दूसरा विवाह उनको युक्तियुक्त प्रतीत होता था । किन्तु स्वर्गवासिनी पत्नी की स्मृति भी प्रगाढ़ थी । हृदय में विचार सागर उमड़ रहा था, उसमें भवँर पड़ गये थे । निकलना सरल नहीं था । इस समय पण्डितजी ने अपनी समस्या को जिस रूप में देखा और उसका जो हल सोचा, वह उनके जीवन के एक नये मोड़ को सूचित करता है । १९१२ से लेकर १९२८ तक के १० वर्षों में प्रो० इन्द्र का दिल्ली के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जीवन तादात्म्य हो गया था । पण्डितजी के जीवन का भी एक अध्याय समाप्त हो रहा था । पहले भाग में उन्होंने पिता खोया, ताई खोयी और खोयी पत्नी । वनाया 'अर्जुन' को और स्थापना की लिबरेटर की । आर्थिक स्थिति बहुत डगमग रही । प्रिय जीवन संगिनी को खोने का घाव उनके हृदय पर बहुत गहरा पड़ा । बुद्धिजीवी इन्द्र-जी का हृदय उस घाव से तिलमिला उठा । उनकी डायरी साक्षी है कि पत्नी वियोग ने उनके विरह-तप्त हृदय को अतिशय भावुक बना दिया । वियोग-भावना से पीड़ित हृदय के उद्गार डायरी में इस प्रकार प्रकट हुए :

"इसी समय हृदय से आवाज आयी लक्ष्मी (विद्या) कह रही है कि राजा ! मैं तेरे पास ही हूँ । मैं तुझसे दूर कहाँ जा सकती हूँ । मेरा शरीर निकम्मा हो गया था । शायद मैं तेरी सेवा के कार्य में रुकावट बनती । इसलिए मैंने यह शरीर छोड़ दिया । मुन्नी को भी इसीलिए ले गयी कि वह तेरे मार्ग का बाधा होती । स्मरण रख मैं तेरे पास हूँ । तू मेरी इच्छा पूर्ण करता रह——मैं तेरे चरणों में हूँ । मेरी इच्छा तू जानता ही है वह है ?

(१) तू देश के काम आ । देश की स्वाधीनता के लिए यत्न कर ।

(२) बच्चों का भली प्रकार पालन-पोषण कर ।

(३) अपने शरीर का ध्यान रख । मुझे यह तो विश्वास है कि तू ठीक रास्ते पर रहेगा । मैं कहीं न जाऊँगी । तेरी प्रतीक्षा करूँगी ।"

मैंने विद्या की स्वर्ग से आयी वाणी को सुना और उस पर खूब सोचा । इस समय सवेरे के तीन बजे हैं । मैं और मेरी लक्ष्मी दो ही हैं । मैंने उसकी बात का उत्तर दिया——

"मेरी लक्ष्मी तू ने जीवन काल में मेरी कई बार रक्षा की है । तेरी अनन्य भक्ति ने मेरी आत्मा, शरीर को कई बार अध:पतन से बचाया है । तू अब भी बचायेगी——यह मुझे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विश्वास है । मैं ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि यथाशक्ति तेरी इच्छाओं का पालन करूँगा—तुझे कष्ट न होने दूंगा । मैं देश के काम आऊँगा । और बच्चों को तेरा प्रतिनिधि समझूँगा । मैं कभी स्वप्न में भी यह न सोचूँगा कि तू मेरे पास नहीं है । प्रभु से मेरे लिए प्रार्थना कर । मेरी प्रार्थना मंजूर न हुई, पर तेरी मंजूर हुई । क्योंकि तेरी प्रार्थना अधिक हार्दिक थी । तू ने मुझे कई बार बचाया अब भी तेरी प्रार्थना ही मुझे बचायेगी, मेरा साथ देगी--मुझे परीक्षाओं से पार करेगी ।"

आदर्श और व्यवहार यथार्थ और कल्पना के मध्य संघर्ष हर एक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी आता है । परन्तु यहाँ विह्वलता न होने पर भी उत्कट विरह वेदना है । यदि वाल्मीकि इस अवस्था का वर्णन करता तो सम्भव था कि वह उन्हीं श्लोकों को दुहराता, जो उसने राम से सीता के वियोग में कहलवाये हैं । परन्तु, इस अपार कष्ट ने भी प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति को कर्तव्य पथ से च्युत नहीं किया । इसके विपरीत यह वियोग उनके भावी जीवन का मार्ग-दर्शक और पाथेय बन गया। इसने उनके संकल्पों को और भी दृढ़ बनाया । विरह-पीड़ित इन्द्र ने इस मनःस्थिति में जो नये संकल्प किये--उन्हें अपने डायरी में इस प्रकार व्यक्त किया--

"मैंने निश्चय किया कि जहाँ तक शारीरिक शक्ति काम देगी जीवन को सार्वजनिक कार्यों में अर्पण करूँगा ।"

इस निश्चय की पूर्ति के लिए आपने यू०पी०, राजस्थान, बिहार, बंगाल और बर्मा तक का दौरा करने का प्रोग्राम बनाया । इस दौरे का उद्देश्य था :

(१) सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रचार के क्षेत्र का विस्तार करना ।
(२) आर्य-वीर दल का संगठन ।
(३) लिबरेटर के लिए हिस्से लाना ।

यहाँ स्मरण रखने की बात है कि इन्द्रजी इस समय सार्वदेशिक सभा के मंत्री थे और दिल्ली सूबा कांग्रेस कमेटी के भी मंत्री थे। इस उत्तरदायित्व को वे खूब अनुभव करते थे। इसे आपने डायरी में निम्न शब्दों में व्यक्त किया--

"मेरे सिर पर काफी उत्तरदायित्व आ रहा है । मुझे तीन वस्तुओं का ही सहारा है ।

(१) प्रभु की कृपा ।
(२) पूज्य पिताजी का दृष्टान्त ।
(३) प्यारी लक्ष्मी का परलोक से आया अटूट स्नेह और उसकी शुभकामना ।

कांग्रेस और आर्य समाज के कार्यों का दायित्व इतना बढ़ गया कि इन्द्रजी को बच्चों के पालन-पोषण के लिए समय देना कठिन हो गया। उनके मन में घर और बाहर के इन प्रश्नों की जो भीड़ जमा हो गयी थी, उनकी चर्चा आपकी डायरी में निम्न प्रकार है--

"मेरे इन कामों को पूरा करने के साथ एक यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ था, मेरे घर का क्या होगा ? मेरे सम्मुख तीन मार्ग हैं :

(१) बच्चों की चिन्ता छोड़कर काम में लगा रहूँ । बच्चे दूसरे के सुपुर्द कर दूं ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह मेरा हृदय नहीं मानता, बच्चों का पालन-पोषण मेरा धर्म भी है और स्वभावानुकूल भी। बच्चों को जीते-जी अपने से दूर न कर सकूँगा।

(२) सार्वजनिक कार्य छोड़कर बच्चों के पालन-पोषण में ही समय लगाऊँ। शायद यही उचित हो। अच्छा होने पर भी इसे मैं न कर सकूँगा। मेरा कार्य ऐसा नहीं है कि रात दिन बच्चों की देख-रेख में घर बैठ सकूँ। देश सेवा के मार्ग से मैं अलग नहीं हो सकता।

इन प्रश्नों पर रात-दिन चिन्ता करने के बाद इन्द्रजी ने जो निश्चय किया, वह भी उनके ही वाक्यों में जो उन दिनों की डायरी में है निम्न प्रकार है :

(३) मेरे बच्चों को पालने के लिए यदि कोई ऐसी स्त्री मिले, जो सचमुच बच्चों का पालन कर सके तो मुझे उसे साथी रूप में स्वीकार करना चाहिए। मेरा विवाह तो लक्ष्मी से हो चुका। दूसरी से नहीं हो सकता। बच्चों के प्रति कर्तव्य पालन के लिए मुझे एक साथी की जरूरत है। उसे घर का दायित्व देना कर्तव्य पालन होगा। हृदय तो लक्ष्मी के साथ है—परन्तु उसकी संतति का पालन भी तो मेरा कर्तव्य है। मुझे आशा है, लक्ष्मी मुझे इस निश्चय पर आशीर्वाद ही देगी। मैं अब ऐसी साथिन की तलाश करूँगा, जिनमें निम्न गुण हों :—

(१) वह प्रौढ़ावस्था तक पहुँच चुकी हो।
(२) रूप-रंग में साधारण हो।
(३) बच्चों से प्रेम कर सके।

मेरा हृदय साक्षी दे रहा है कि इसमें कोई पाप नहीं है। न इसमें लक्ष्मी की स्मृति का अपमान है। उसकी इच्छा इसी तरह पूर्ण हो सकती है कि मेरे बच्चे मेरे पास रहकर योग्य बनें और मैं देश-सेवा के कार्य में सारी शक्ति लगा सकूँ।"

इन बातों को ध्यान में रखकर ही श्रीइन्द्रजी ने अपने पुराने मित्र श्री मुखरामजी को पत्र लिखा :—

दिनाक २०-२-१९२९

प्रियवर मास्टरजी,

नमस्ते ! आपको एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर पत्र लिख रहा हूँ। इसमें जिस स्पष्टता के साथ मैंने आपकी राय पूछी है उसी स्पष्टता से मैं उत्तर चाहता हूँ।

विद्या का देहान्त हो जाने से मुझ पर बच्चों की रक्षा का बोझ पड़ा है। अब तक तो बहनजी मेरे साथ रहीं, जिससे मैं निश्चिन्त रहा। परन्तु मार्च के प्रारम्भ में वह शिमला चली जायेंगी। मैं निरन्तर बच्चों के पास नहीं रह सकता। यह मेरा हृदय नहीं मानता कि मैं उन्हें अनाथों की भाँति दूर फेंक दूँ। यदि मैं बँधकर बैठ जाता हूँ तो मेरा सार्वजनिक जीवन समाप्त हो जाता है। इसलिए समस्त परिवार ने मिलकर निश्चय किया है कि मुझे बच्चों की खातिर घर बनाये रखना चाहिए और उसके लिए जीवन का संगी तलाश करना चाहिए।

मैं जीवन-संगिनी ऐसी तलाश करना चाहता हूँ—

१. जो विद्या के बच्चों को अपने बच्चे समझने को तैयार हो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२. सुशिक्षिता हो ।

३. मेरे सार्वजनिक जीवन से सहानुभूति रखती हो ।

४. स्वास्थ्य अच्छा हो ।

५. कुँवारी नहीं, आयु २४ या २५ से कम न हो ।

डाक्टरजी और बहनजी ने मुझे सलाह दी है कि चन्द्रवती में ये गुण विद्यमान हैं । उनकी राय तो अप्रत्यक्ष रूप से बात छेड़ने की है, परन्तु मैं आपको अपने सम्बन्धी से भी अधिक मानता हूँ । और ऐसे मामलों में जहाँ पाप न हो, गुप्तता को पसन्द नहीं करता । इसलिए स्पष्टता से निम्नलिखित प्रश्न पूछने का साहस करता हूँ—

१. आपकी राय में यह सम्बन्ध ठीक होगा या नहीं ?

२. चन्द्रवती इसके लिए राजी होगी या नहीं ?

३. 'हाँ', की अवस्था में यह सम्बन्ध शीघ्र हो सकता है या नहीं ।

आप यदि सहमत हों तो चन्द्रवती से इस वायदे पर सीधा प्रश्न पूछ सकते हैं कि अस्वीकृति की दशा में वह किसी से बात न करे ।

आप शायद मुझसे ऐसे पत्र की आशा न रखते हों, परन्तु जब हृदय की गवाही हो कि हम जो कार्य करना चाहते हैं वह अनुचित नहीं है तो उसमें लोक व्यवहार की दृष्टि से संकोच करना बुरा है ।

मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ—

आपका—

इन्द्र

३ मार्च को पण्डितजी का पुनर्विवाह हो गया । इसके साथ इन्द्रजी के जीवन में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ । यह चुनाव जिन कारणों से किया, उनका उल्लेख इन्द्रजी ने अपनी डायरी में विशद रूप से निम्न शब्दों में किया है—

(१) लक्ष्मी से इसकी अनुमति ले ली थी ।

(२) लक्ष्मी ने चन्द्रवती को बहन माना हुआ था ।

(३) बच्चों की रक्षा की सम्भावना है, तो इसी सम्बन्ध से, क्योंकि चन्द्रवती का बच्चों से प्रेम है । उसका स्वभाव अच्छा है । वह परिवार प्रेमी और प्रतिष्ठित है । चन्द्रवती की आयु २६ वर्ष की है । किशोरावस्था को यह पार कर चुकी है । यही ठीक है ।

तीसरा पड़ाव

इन्द्रजी के जीवन का यह तीसरा पड़ाव था । पहला वह था जब वह गुरुकुल से स्नातक हुए थे । दूसरा पड़ाव तब आया, जब आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया । तीसरा इस पुनर्विवाह से हुआ । इससे आपको पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ । क्योंकि इन्द्रजी के ही शब्दों में—"इच्छित उसी को समझना चाहिए, जहाँ हृदय सर्वथा सन्तुष्ट हो । मेरा हृदय सन्तुष्ट है कि मैंने ठीक किया । कर्तव्य समझकर किया । संतानको उत्पन्न करना ही धर्म नहीं है, पालन करना भी धर्म है । अब तो यही इच्छा है कि जिन बच्चों की भलाई के लिए यह कार्य किया है—वे सुखी रहें ।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी का पुनर्विवाह वैयक्तिक बात न रहकर सार्वजनिक विषय हो गया। कुछ इसके विरोध में थे, कुछ पक्ष में। दोनों की शक्ति-परीक्षा सार्वदेशिक सभा के मन्त्री पद के चुनाव के समय हुई। विरोधी हार गये। इस विजय के बाद इन्द्रजी के मन में जो भाव आये, उन्हें आपने डायरी में इन शब्दों में लिखाः—

मुझे दो मूल मन्त्र ध्यान में रखने हैं—

(१) अपने जीवन में संयम रखूँगा। (२) सार्वजनिक जीवन में शिथिलता न आये, यह ध्यान रखूँगा। (३) अपने कर्तव्य पथ पर घबराहट के बिना चलते जाना ही धर्म और नीति की दृष्टि से उत्तम समझूँगा।

फिर भी आपके मन में संघर्ष बना रहा। इस संघर्ष का अन्त जिन नये संकल्पों और नयी प्रतिज्ञाओं से हुआ, उन्हें भी आपने अपनी डायरी में अंकित कर दिया है। वे प्रतिज्ञाएँ निम्न हैं :—

(१) सदा सादगी और गरीबी का जीवन व्यतीत करूँगा।

(२) देश के काम आऊँगा।

(३) जयन्त (इन्द्रजी का पुत्र) लक्ष्मी की इच्छानुसार बनाने का ध्यान रखूँगा।

उस समय देश की स्वाधीनता-युद्ध चरम सीमा पर पहुँच गया था। वह १९३० का वर्ष था। उन्हीं दिनों स्वराज्य की प्रतीज्ञा पढ़ी गयी थी। लाहौर कांग्रेस ने युद्ध का शंख फूँक दिया था। पुनः कौंसिल का वहिष्कार घोपित हो गया था। महात्माजी दांडी की ओर अपनी अहिंसक सेना के साथ कूँच कर रहे थे। इन्द्रजी भी नये उत्साह और नयी स्फूर्ति के साथ रणांगन में कूद पड़े। सत्याग्रह की शंखध्वनि सुनकर आपने अपने आपको देशसेवा में अर्पित कर दिया।"

इस समर्पण भावना को इन्द्रजी ने अपनी डायरी में निम्न शब्दों में व्यक्त किया—"मेरे जीवन में वह पड़ाव आ गया है, जिसे मैंने जेल में अनुभव किया था। मैंने वहाँ नोटबुक में लिखा था कि मेरे प्रमोदमय जीवन का अन्त आ चुका, अब कर्तव्यमय जीवन का आरम्भ होता है। ये दो वर्ष मेरी परीक्षा के थे। कुछ उत्तीर्ण हुआ और कुछ अनुत्तीर्ण। चढ़ाव-उतराव खूब देखे। परन्तु उनसे शायद कुछ सीखा भी हो। अब तो दिल से यही आवाज उठती है कि वह समय आ गया है जब सर्वतोभावेन देश सेवा में लग जाऊँ। समाचार पत्र केवल साधन है—साधन-रूप में ही चलेगा। बच्चों की रक्षा मेरा धर्म है। मातृभूमि की सेवा से उतर कर मेरे लिए वही धर्म है। इस धर्म का यथाशक्ति पालन करूँगा। परन्तु उसे सेवा-कार्य में विघ्नकारी न होने दूँगा।"

"इस संकल्प के कारण १४-१-३० से मेरा संसार फिर से बदला है। उस दिन संकल्प किया था कि अपना जीवन सार्वजनिक जीवन के अर्पण कर दूँगा। उस दिन से मेरे जीवन में आशा, विश्वास और भरोसे का नया संचार हो गया। मैं अपने आपको युवा समझने लगा हूँ। कार्यों में सफलता भी प्रतीत होने लगी है। मेरे जीवन के दो वर्ष का अन्धकारमय काल समाप्त हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुझे निम्नलिखित संकल्प फिर से दुहराने चाहिएँ ।

(१) शेष जीवन देश सेवा में व्यतीत करूँगा ।

(२) शेष सब कार्य साधन स्वरूप चलेंगे ।

(३) आर्य समाज तथा अन्य उपयोगी कार्यों में योग दूँगा तो वह भी देश सेवा को मानकर ही दूँगा ।

(४) कभी धनी बनने की कामना नहीं करूँगा । और आये हुए धन को विलास का साधन न समझूँगा ।"

इन पवित्र प्रतिज्ञाओं में इन्द्रजी के तपः पूत जीवन की कुछ छाया दिखायी देती है । और यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने जीवन को देश-सेवा में पूर्णतः सर्मपित करने के लिए ही उन्होंने दूसरा विवाह किया था ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संघर्षमय जीवन का प्रारम्भ

देश-सेवा का मार्ग उन दिनों प्रत्येक देश-सेवक को जेल तक अवश्य ले जाता था। २२ मार्च को प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति गिरफ्तार किये गये। ५ अप्रैल को ९ मास की सख्त कैद की सजा हुई। १४ जून को हाईकोर्ट ने जितनी सजा भुगत चुके थे, उतने पर उन्हें छोड़ दिया। १६ जून को प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति की रिहाई हुई।

जेल से छूटने के बाद सन् १९३० का वर्ष इन्द्रजी ने प्रेस और पत्र को सम्भालने में बिताया।

१९३० में एक नया आन्दोलन उठा था। वह था कि दिल्ली म्युनिसिपैलिटी को कारपोरेशन में बदला जाये। दिल्ली की जनसंख्या १९३० में अधिक नहीं थी। वह लगभग दो लाख के थी। अतः कलकत्ता या बम्बई से उसकी तुलना नहीं की जा सकती थी। लेकिन सरकार कराँची को कारपोरेशन बना रही थी, अतः दिल्ली को भी कारपोरेशन बनाने की आशा और सम्भावना का जन्म हुआ। आबादी की दृष्टि से दिल्ली की स्थिति कराँची के समान थी। कराँची यदि एक बड़ा बन्दरगाह था तो दिल्ली भारत की राजधानी थी। अतः इसके दावे का सहज में विरोध नहीं किया जा सकता था। इस दावे को मनवाने के लिए दिल्ली के नागरिकों ने इन्द्रजी की अध्यक्षता में नेशनलिस्ट पार्टी का संगठन किया। कांग्रेस इस समय गैरकानूनी संस्था थी, इस कारण वह इस कार्य को नहीं कर सकती थी। दिल्ली को आज कारपोरेशन प्राप्त है। दिल्ली के नागरिकों में इस इच्छा का बीज वपन करनेवालों के नेता का नाम प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति था।

इन्द्रजी के जीवन की मुख्य धारा सदा देश की राष्ट्रीय जीवन धारा के साथ-साथ चलती थी। उनके जीवन के अन्य कार्य उस मुख्य धारा की शाखाओं के रूप में होते थे। धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और साहित्यिक कार्यों का प्रवाह राष्ट्रीय प्रवाह के गौण रूप से होता था। ये सब उसकी शाखाएँ थीं। अतः इन्द्रजी के जीवन प्रवाह को समझने के लिए राष्ट्रीय जीवन को सदा ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

गांधी-इरविन पैक्ट के कारण भारत में नया आतमाभिमान जागा और इसके साथ यह विश्वास दृढ़ हुआ कि ब्रिटिश सरकार की आयु भारत में समाप्त होनेवाली है। केवल सुयोग की आवश्यकता है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और प्रेसिडेण्ट विट्ठलभाई पटेल इस विचार के थे। यह दल मानता था कि दूसरा विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ने पर भारत अन्य राष्ट्रों की मदद से स्वतन्त्र हो सकता है। प्रेसिडेण्ट पटेल ने इस कार्य के वास्ते नेताजी को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपनी कमाई का बचा शेष भाग अर्पित किया था। गांधीजी और उनके पीछे चलनेवाली कांग्रेस स्वराज्य चाहती थी, लेकिन ब्रिटेन की कठिनाई और विपत्ति से लाभ उठाकर नहीं। इन दोनों के सिवाय एक दल और था, जो विदेशों में भारत की ओर से प्रचार करने को महत्त्व देती थी, पर विदेशों की मदद से स्वराज्य प्राप्त करने की बात से सहमत नहीं था। इसमें वह एक खतरा देखता था। वह संघर्ष जारी रखने के पक्ष में था। वह समानान्तर सरकार भी स्थापित करना चाहता था। गांधीजी के रचनात्मक प्रोग्राम पर उसको श्रद्धा नहीं थी।

गांधीजी १९३१ के अन्त में गोलमेज कान्फ्रेंस में गये थे। इधर सरकार ने सीमान्त गांधी-खान बन्धुओं को और श्री नेहरू को गिरपतार किया। लार्ड विलिंगटन को राजनीतिक शान्ति खटक रही थी। देश को भी भगतसिंह, राजगुरु और चन्द्रशेखर आजाद की फाँसी चुभ रही थी। उसको अपनी अवस्था पर पछतावा हो रहा था। वह इसका प्रतिशोध चाहता था।

इसके साथ देश में जबर्दस्त 'डिप्रेशन' (सस्तापन) आया। विश्वव्यापी आर्थिक मन्दापन आया। बेकारी बढ़ी। उद्योगों का ह्रास हुआ। जापानी माल से भारत के बाजार भर गये। मैनचेस्टर और बम्बई मिलकर भी जापान को भारत के वस्त्र-बाजार से नहीं निकाल सके।

इन्द्र विद्यावाचपस्ति इस समय सूबा कांग्रेस कमेटी के प्रधान थे। दिल्ली में सरकार से मोर्चा लेने का भार उन पर था। उनका पत्र 'अर्जुन' संकटों को झेलता हुआ मैदान में डटा हुआ इन्द्रजी के विचारों का वाहक और दिल्ली के राष्ट्रीय जीवन का प्रहरी और प्रवक्ता बना हुआ था। गोलमेज कान्फ्रेंस लन्दन से कुछ आशा बँधाती थी। अतः देश कुछ जागृत हुआ था। इन्द्रजी ने इस समय का उपयोग गुरुकुल शिक्षा कमीशन की अध्यक्षता करने में बिताया। गुकुरुल के अधिकारियों की ओर से इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। इस पर भी बहुत-सी गवाहियाँ ली गयीं। कमेटी का असर अच्छा रहा।

सूबा कांग्रेस कमेटी लाला शंकरलाल की पार्टी के नियन्त्रण में थी। लाला शंकरलालजी एक व्यवसायी व्यक्ति थे। वे स्वतः कर्मठ थे। ट्रापिकल इन्शोरेन्स कम्पनी के व्यवस्थापक थे। पर उनके नेतृत्व में कांग्रेस का प्रभाव क्षीण होता जाता था। कांग्रेस दिल्ली के राष्ट्रीय जीवन का मूर्त रूप नहीं रही थी। अतः उस दल से अलग प्रो० इन्द्र के नेतृत्व में डेमोक्रेटिक पार्टी का संगठन किया गया। इस दल में ज्यादातर वे लोग थे, जो १९२६ में कांग्रेस छोड़ गए थे, और कांग्रेस के विरोध में जिन्होंने लालाजी और मालवीयजी का समर्थन किया था। स्वतः इन्द्रजी ने माना है कि "तीन वर्ष के पीछे मैं फिर गतिशील सार्वजनिक जीवन को प्रारम्भ कर रहा हूँ। जितना पीछे कदम रख चुका हूँ, पहले उतना आगे जाना है। शायद उसमें ६ मास लगें।"

उन्हीं दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों के चुनाव में भी इन्द्रजी के पक्ष या स्नातक मण्डल को तीन वोटों से हार मिली। महाशय कृष्ण आर्य प्रतिनिधि सभा के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्री चुने गये और श्री भीमसेन विद्यालंकार पराजित हुए । इस पराजय के कारणों की मीमांसा करते हुए इन्द्रजी ने लिखा :—"हर एक प्रस्ताव में हम तीन वोटों से हारे। यह मुझे इस भूल की सजा मिली जो मैंने गत तीन वर्षों में की । मैंने समझा कि संघर्ष को छोड़कर शान्तिपूर्वक घर में बैठकर शेष काम करने से मनुष्य अधिक उपयोगी हो सकता है । बात यह है कि मनुष्य तभी अधिक काम कर सकता है, जब वह काम करने की शक्ति को निरन्तर बढ़ाता रहे ।"

शामली में ८ जून १९३१ को सूबा राजनीतिक कांग्रेस थी । यहाँ भी इन्द्रजी को लाहौरवाला ही अनुभव हुआ । आप डायरी में लिखते हैं :—"वहाँ भी मेरे सामने वही समस्या आयी, मैं कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न न कर सका । पिछली भूल को अब सुधारने की चेष्टा करूँगा ।" डेमोक्रेटिक पार्टी का संगठन करने की आवश्यकता क्यों हुई और इन्द्रजी इसके सदस्य क्यों हुए, यह पार्श्व-भूमि को देखने से स्पष्ट हो जायेगा । डेमोक्रेटिक पार्टी का बल बहुत बढ़ा । दोनों पक्षों में समझौता कराने के लिए भी जवाहरलाल नेहरू आये । श्री नेहरू इस समय कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे । जुलाई में चुनाव हुआ । डेमोक्रेटिक पार्टी के पचास-के-पचास उम्मीदवार कांग्रेस में चुने गये ।

दूसरी जेल-यात्रा

गांधीजी के भारत लौटने पर इन्द्रजी उनका स्वागत करने बम्बई गये थे । जिस दिन इन्द्रजी दिल्ली पहुँचे, उसी रात गांधीजी और कांग्रेस कार्यसमिति के सब सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये थे । गिरफ्तारियों की धूम थी । लार्ड लिविंग्डन ने एक साथ १२ आर्डिनेन्स जारी किये । कांग्रेस गैरकानूनी हो गयी । इन्द्रजी दिल्ली के दूसरे डिक्टेटर नियुक्त किये गये थे ।

१९३२ को आप दूसरी बार चाँदनी चौक में कांग्रेस के दफ्तर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए गिरफ्तार किये गये । इन्द्रजी कांग्रेस कमेटी के प्रधान थे और गैरकानूनी घोषित कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में काम करने जा रहे थे । फलतः दफा ४४८ में उन्हें छः मास की कड़ी कैद और २०० रुपये जुर्माना की सजा हुई । 'ए' क्लास आपको दी गयी । दिल्ली जेल से आप मुल्तान जेल भेजे गये । वहाँ आप कोठरी नं० ५ बैरक नं० १ में रखे गये । मुल्तान भी आपको अधिक दिन ठहरना नहीं पड़ा । वहाँ से आप लाहौर भेज दिये गये । छः मास की सजा पूरी होने पर १२ जून को लाहौर जेल से छोड़ दिये गये । जेल जीवन में पण्डितजी ने बहुत से नये साथी बनाये । साथ ही राजबन्दियों और जेल के अधिकारियों के बीच सदा संघर्ष कराने का कार्य किया और अच्छी कामयाबी हासिल की । जेल से छूटते ही समाचार मिला कि 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' नामक पुस्तक प्रकाशित हो गयी है । यह हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ने प्रकाशित की थी । पुस्तक का साहित्यिक और ऐतिहासिक जगत् में बड़ा अच्छा स्वागत हुआ । इसकी भाषा बहुत ओजस्वी और प्रांजल है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जेल में रहते हुए इन्द्रजी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती को जो पत्र लिखे, उनसे इन्द्रजी की कृतज्ञता प्रकाशन प्रकृति का परिचय मिलता है। इन्द्रजी का यह अनुभव सच्चा था कि यदि वह प्रथम पत्नी के देहान्त पर दूसरा विवाह न करते तो उन्हें देश-सेवा का सौभाग्य प्राप्त न होता। श्रीमती चन्द्रवती को लिखे गये कुछ पत्रों के अंश निम्न हैं :—

न्यू सेन्ट्रल जेल,
मुल्तान
दिनांक : ११–५–३२

मेरी प्यारी चन्द्र,

मैं तो तुमसे कह ही चुका कि अब जीवन को तुम्हारे साथ मिलकर रचनात्मक कार्य में ही लगाना चाहता हूँ। उसी दृष्टि से सब बातों पर विचार कर रहा हूँ।

मेरे जेल आने पर तुम पर जितना बोझ रहा है उसे मैं खूब अनुभव करता हूँ। तुमने जिस सुन्दरता से उसे उठाया है, उसके कथन के लिए मेरे पास शब्द नहीं। परमात्मा का धन्यवाद करता हूँ कि उसने मुझे तुम जैसा साथी दिया और उससे प्रतिदिन तुम्हारे स्वास्थ्य की प्रार्थना करता हूँ।

इन्द्र

न्यू सेन्ट्रल जेल
२४-५-३२

मेरी प्यारी चन्द्र,

तुमने जो किया वह बहुत ही अच्छा किया। इसीलिए तो मैं तुम्हें अपनी 'बुद्धि' कहता हूँ। इन बातों में तुम मुझसे ज्यादा दूर तक सोच लेती हो।

२८-५-३२

मेरी प्यारी चन्द्र,

मुंशीजी ने कई बातें सुनायीं। संसार ऐसा ही है। हमलोगों का कर्तव्य यही है कि सुनते हुए भी न सुनें। और देखते हुए भी न देखें और अपना कार्य करते जायें। धोखा खाना बुरा है, परन्तु कठिनाई के समय सहनशक्ति और भी बढ़ानी पड़ती है। तुमने इस डेढ़ महीने में जितनी सहिष्णुता और धैर्य से काम लिया है, मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी। परमात्मा ऐसे ही अपनी कृपा दिखलाया करता है। मुझे और किसी वस्तु से इतना सन्तोष नहीं होता जितना इस बात को देखकर होता है कि तुम अपनी सारी शक्ति लगाकर इस कठिन परीक्षा में पास होने का यत्न कर रही हो।

मुझे रात यह स्वप्न आया कि विद्या तुम्हारे गले में हाथ डाले खड़ी है और तुम्हें कह रही है कि :—

"मैं तुम्हारा धन्यवाद करूँ? तुमने इस समय मेरी सारी धरोहर सम्भाल रखी है। मैं दूर से खड़ा देख रहा हूँ और मुस्करा रहा हूँ। मैं तो निरन्तर यही प्रार्थना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करता हूँ कि परमात्मा तुम्हें नीरोग और धैर्यवान् रखे ताकि इस परीक्षा के समाप्त होने पर हम अपने जीवन को प्रेमपूर्वक बिता सकें।

तुम्हारा
इन्द्र

४ सितम्बर को इन्द्रजी की पत्नी श्रीमती चन्द्रवती भी गिरफ्तार हुईं और ५ मास के लिए जेल भेज दी गयीं।

इस जेल अभियान के बाद कुछ दिन फिर देश में आलस्य छा गया था। रैम्जे मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में गांधीजी ने यर्वदा जेल में आमरण अनशन किया था। इसके साथ सविनय कानून भंग का आन्दोलन भी निर्जीव हो गया था। कौंसिल बहिष्कार के पक्षपाती राजाजी महात्माजी की जान बचाने के लिए केन्द्रीय असेम्बली की सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते हुए अनेक बार देखे गये। इस अवस्था में सविनय कानून भंग कैसे चल सकता था। ऐसे समय आन्दोलन ने हरिजन मन्दिर-प्रवेश के आन्दोलन का रूप पकड़ा। लड़ाई अब सरकार से नहीं रही, आपसी हो गयी। इन्द्रजी ने भी नये कार्य-क्षेत्र में शक्ति लगायी। दिल्ली में मुंशी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। दिल्ली में यह पहला प्रान्तीय सम्मेलन था। इन्द्रजी इसके स्वागताध्यक्ष थे। इस साल के प्रारम्भ में घण्टाघर पर कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन भी उसी के समान था। इसके साथ इन्द्रजी का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो रहा था। १९३२ के अन्त में पण्डितजी निम्न दायित्व सम्भाले हुए थे :

(१) 'अर्जुन' कार्यालय का बढ़ता हुआ कार्य।
(२) विजय पुस्तक माला।
(३) पूज्य पिताजी की जीवनी लिखने का कार्य।
(४) दिल्ली स्वदेशी संघ के प्रेसिडेण्ट।
(५) अस्पृश्यता निवारक लीग के जनरल सेक्रेटरी।
(६) दलितोंद्धारक सभा के सेक्रेटरी।

दिल्ली पहुँचने के साथ पुलिस के साथ टक्कर हो गयी। पुलिस ने प्रेस की तलाशी ली। गांधीजी ने ९ मई से २१ दिन का उपवास प्रारम्भ किया था। यह आत्म-शुद्धि के विचार से किया गया था। गांधीजी ने एक साल के वास्ते हरिजन-आन्दोलन का कार्य उठा लिया था। राजनीति से अल्पकालिक संन्यास ले लिया था। जेल में हरिजन कार्य करने की सुविधा देने को सरकार तैयार न थी। गांधीजी उपवास करके जेल से रिहा हों, और फिर जेल जायें, इसके वास्ते तैयार नहीं थे। यह बिल्ली-चूहे का खेल उनको अच्छा नहीं लगता था। इसके साथ सरकार से लड़ाई चलाना सम्भव न था। सेनापति ही युद्ध-क्षेत्र से हट जाये, तो लड़ाई कैसे चल सकती है। इस विषम स्थिति पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का एक अधिवेशन पूना में बुलाया गया था। जेल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से बाहर आये सब नेता और कार्यकर्ता इसमें सम्मिलित हुए थे । इन्द्रजी इस मौके पर कैसे पीछे रह सकते थे ? पूना कांग्रेस के बाद भी सत्याग्रह युद्ध में कुछ तेजी नहीं आई । राजनीतिक जीवन सो गया था । इसे जगाया १७ जनवरी १९३४ को बिहार में आये भारी भूकम्प ने । बिहार की दर्दभरी पुकार सुनकर सब लोग दौड़कर बिहार की स्थिति को देखने और उसकी सहायता के लिए पहुँचे । इन्द्रजी ने भी इसमें भाग लिया ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

तभी दिल्ली में बड़ौदा नरेश की अध्यक्षता में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ । अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन दिल्ली में दूसरा था । पहला अधिवेशन १९२० में हुआ था । स्वामी श्रद्धानन्दजी के आशीर्वाद, सेठ केदारनाथ की कर्मठता और प्रो० इन्द्र के प्रयत्न से यह अधिवेशन हुआ था । उस समय दिल्ली उर्दू की नगरी थी । इस समय दिल्ली हिन्दी की नगरी हो गयी थी । बड़ौदा महाराज ने अपनी तलवार भेजी थी । सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे सेठ घनश्यामदास बिड़ला । परन्तु कार्यवाहक प्रधान थे प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति । सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी आप पर ही पड़ी थी । अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इसके सभापति थे । इस सम्मेलन ने दिल्ली के जीवन में संरक्षता का प्रवेश किया । कवि-सम्मेलन की सफलता असंदिग्ध हो गयी । सम्मेलन का अधिवेशन २४ मार्च से २७ मार्च तक हुआ ।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री घनश्यानदास बिड़ला थे, और पण्डितजी स्वागत-समिति के कार्यकर्ता प्रधान थे । यह बता रहा था कि नया युग आ रहा है । पूँजीपति साहित्य के क्षेत्र में भी रुचि लेने लगे थे । संस्थाए् अपने जीवन और कार्य को सफल बनाने के लोभ में गैरहाजिर जमींदार के समान गैरहाजिर प्रधान भी स्वीकार करने को उद्यत हो रही थी । यह समझौता मनोवृत्ति के परिवर्तन का सूचक नहीं था, बल्कि युग-परिवर्तन का द्योतक था ।

अर्जुन का प्रातः संस्करण

इन्द्रजी के 'अर्जुन' पर भी इस पूँजीवाद की नयी प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा । 'अर्जुन' सायंकाल का दैनिक था । उन दिनों दिल्ली के सब दैनिक चाहे किसी भाषा के हों, सायंकाल निकलते थे । हिन्दुस्तान टाइम्स के मैनेजर श्रीकृष्णदास कोहिली ने ही सबसे पहले प्रातः-काल का दैनिक संस्करण निकालना प्रारम्भ किया । परन्तु 'अर्जुन' ने अपना मार्ग नहीं बदला । अंग्रेजी का दैनिक स्टेट्समैन भी प्रातःकाल प्रकाशित होता था । नेशनल जर्नरल लि० का पत्र 'नेशनल काल' भी सुबह निकलता था । इस कम्पनी ने श्री सत्यकाम विद्यालंकार के सम्पादकत्व में प्रातःकाल 'नवयुग' निकालने की घोषणा की। इस घोषणा ने 'अर्जुन' को मार्ग बदलने और अपना प्रातःकालीन संस्करण निकालने के लिए बाध्य किया।

इन्द्रजी को अनुभव हुआ कि नये आनेवाले पत्रों के समक्ष 'अर्जुन' को खड़ा रहना है, तो इसके वास्ते कम्पनी बनाना अनिवार्य है । पूँजी की आवश्यकता इसके बिना पूरी नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो सकती। इस नयी आवश्यकता के बन्धन ने ही वस्तुतः 'अर्जुन' और पण्डितजी के सम्बन्ध विच्छेद की भूमिका तैयार कर दी थी। इस प्रक्रिया के पूरा होने में कुछ समय लगा, किन्तु आज 'अर्जुन' यदि अपने मूल रूप में नहीं, अपने पहले स्वामी के पास नहीं और वह जीवित नहीं है, तो उसका मूल और वास्तविक कारण है पत्र-प्रकाशन का उद्योग का रूप धारण करना और इसमें पुंजीपतियों का प्रवेश और आर्थिक लाभ की भावना से पत्र-प्रकाशन की बढ़ती मनोवृत्ति। इस स्थिति को इन्द्रजी ने इन शब्दों में लिखा था—इनके (पूंजीपतियों के) लिए पत्र व्यवसाय अन्य व्यवसायों का सहायक तो है ही, परन्तु मुख्य रूप से वे उसे अपनी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का साधन मानते हैं।" वे दिन दूर चले गये, जब सम्पादक ही पत्र का विधाता हुआ करता था। तब हम पराधीन थे, इस कारण स्वाधीनता के सपने देखा करते थे। अब हम स्वाधीन हो गये हैं, अतः वे सपने काफूर हो गये। और संसार का असली रूप सामने आ गया। यह वास्तविक स्वरूप १९३३ के अन्त और १९३४ के आरम्भ में ही इन्द्रजी पर प्रकट हो गया था।

राजनीति में नये उत्साह से प्रवेश

२६ सितम्बर १९३४ को इन्द्रजी ने जिला-कांग्रेस-कमेटी की प्रधानता स्वीकार कर ली। यह उत्तरदायित्व उन्होंने कई वर्षों के इन्कार के बाद लिया था। इसे पूरा बल लगाकर निभाने का संकल्प आपने कर लिया। इस उत्तरदायित्व को लेने के साथ इन्द्रजी ने प्रण किया—"सार्वजनिक जीवन में जिस सादे जीवन की आवश्यकता है, उसका प्रण तो मैं दो मास पहले ही कर चुका हूँ। मैं कुछ वर्षों से खर्चीले जीवन की ओर बढ़ रहा था, उस पर विराम चिह्न लगा दिया है। समृद्ध जीवन और सार्वजनिक सेवा—यह दो जुदा-जुदा मार्ग हैं। इस समय भारत जैसे पराधीन देश में ये दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते।"

सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए यहाँ एक भारी प्रतिबन्ध है। भारत स्वाधीन है, किन्तु वह आज भी गरीब है। उसकी गरीबी का यदि सदा ज्ञान रहे, तो देश के सार्वजनिक जीवन में चाहे कोई क्षेत्र हो शुचिता कायम रह सके।

१९३४ के अन्त में लार्ड विलिंग्डन की ओर से कांग्रेस को चुनौती दी गयी। केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचन की घोषणा की गयी। लार्ड विलिंग्डन का ख्याल था कि कांग्रेस निःशेष हो गयी है, और चुनाव में वह पराजित होगी। इससे ब्रिटिश सरकार की दमन नीति को भारतीय जनता का समर्थन मिलेगा। मद्रास और दिल्ली में इस संघर्ष ने तीव्र रूप धारण किया। मद्रास में श्री सत्यमूर्ति का मुकाबिला श्री रामस्वामी मुदलियार से था, जो लार्ड विलिंग्डन के विशेष रूप से कृपामात्र माने जाते थे। दिल्ली में वाइसराय और उनकी कौंसिल के सदस्य राय साहब नानकचन्द का समर्थन कर रहे थे। कांग्रेस की ओर से श्री आसफअली उम्मीदवार थे। इन्द्रजी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान थे। अतः कांग्रेस की इज्जत और प्रतिष्ठा की रक्षा का उत्तरदायित्व उनपर था। इन्द्रजी पर दिल्ली की जनता को विश्वास था और उनके प्रति श्रद्धा थी। जनता उन्हें निःस्पृह मानती थी। अतः उनके वचन का आदर करती थी। दिल्ली क्लाथ मार्केट के व्यापारियों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ने साफ-साफ वोट माँगने के लिए जानेवाले कांग्रेस नेताओं को कह दिया कि यदि प्रो० इन्द्र वोट माँगने आयेंगे तो उनका वोट कांग्रेस को मिलेगा। कांग्रेस की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए इन्द्रजी दिल्ली क्लाथ मार्केट में वोट माँगने के लिए घूमे। कांग्रेस को सफल बनानेवाला एक और समाचार भी निकला। वोट पड़ने से पहली रात चुनाव सभा में समाचार मिला कि श्री सत्यमूर्ति विजयी हुए हैं। दूसरी विजय थी श्री व्यंकटाचलम् चेरी की और लार्ड विलिंग्डन के कृपापात्र एवं केन्द्रीय असेम्बली के स्पीकर (अध्यक्ष) श्री सन्मुख चेरी की पराजय। इन दोनों समाचारों ने दिल्ली के निर्वाचन का रुख पलट दिया। इसे वाइसराय कौंसिल के सदस्यों का मतदान भी वदल नहीं सका। आसफअली विजयी हुए, प्रो० इन्द्र का परिश्रम सफल हुआ। इस समय पार्लमेन्ट्री वोर्ड के अध्यक्ष डा० अन्सारी थे। इस कारण भी इन्द्रजी अपना उत्तरदायित्व मानते थे।

चुनावों का दौर

इण्डिया ऐक्ट १९३५ का पहला भाग लागू हो गया। इसके अनुसार प्रान्तीय विधान सभाओं का चुनाव हुआ। कांग्रेस पार्लमेन्ट्री कमेटी के अध्यक्ष इस समय सरदार पटेल थे। चुनाव-संग्राम में कांग्रेस को सफल वनाने के लिए इन्द्रजी ने रोहतक, मेरठ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, देहरादून और खुर्जा में बड़ा काम किया और इससे कांग्रेस को असाधारण सफलता मिली।

इस सफलता से उत्साहित होकर इन्द्रजी की अध्यक्षता में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने म्युनिसिपल चुनाव लड़ने का निश्चय किया। उसका उत्तरदायित्व भी इन्द्रजी पर पड़ा। चुनाव लड़े गये। छः नाम तो मजिस्ट्रेट ने रद्द कर दिये। पर शेष सभी कांग्रेसी उम्मीदवार सफल हुए। केवल एक लाला बंगालीमल रह गये। कांग्रेस ने इनको केवल समर्थन मात्र दिया था। दिल्ली के नागरिक और सार्वजनिक जीवन में इन्द्रजी का क्या स्थान था, यह इससे प्रकट हो गया। इस समय इन्द्रजी के चारों ओर समाज और कांग्रेस का जीवन घूम रहा था।

अतः जब दिल्ली में कांग्रेस ने कनवेंशन बुलाने का निश्चय किया, तो उसकी स्वागत-समिति का निर्माण होने पर उसके स्वागताध्यक्ष इन्द्रजी चुने गये। कांग्रेस अध्यक्ष इस समय श्री नेहरू थे। अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष और स्वागताध्यक्ष इन दोनों के पिता थे। १८ साल बाद उनके पुत्र ही स्वागताध्यक्ष और सभापति थे। अन्तर इतना था कि दिल्ली की कनवेंशन थी, और अमृतसर की कांग्रेस वार्षिक अधिवेशन था।

अमृतसर की कांग्रेस की तुलना में दिल्ली कनवेंशन कम महत्व का न था। प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव में मद्रास, बम्बई, यू०पी०, बिहार, आसाम और सीमा प्रान्त में कांग्रेस को असाधारण सफलता मिली थी। अतः स्वभावतः प्रश्न उठा कि कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल बनाये या नहीं। कांग्रेस की सोशलिस्ट पार्टी मंत्रि-मण्डल बनाने की विरोधी थी। कुछ अपरिवर्तनवादी भी इसी मत के थे। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री नेहरू तथा सीता-रामैया भी इसी मत के थे। ये लोग ब्रिटिश सरकार से किसी विषय का समझौता करने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और लड़ाई को स्थगित करने के पक्ष में न थे। राजाजी और श्री सत्यमूर्ति और श्री भूलाभाई देसाई मंत्रित्व ग्रहण करने के पक्ष में थे। कनवेंशन इन दोनों के बीच पुल बनाने के लिए बुलाया गया था। कांग्रेस कार्यसमिति इस प्रश्न पर विभक्त थी। कांग्रेस कार्यसमिति में सोशलिस्ट पार्टी के तीन सदस्य थे। सरदार पटेल, मौलाना आजाद और डा० राजेन्द्र-प्रसाद। वे मौन थे। वे गांधीजी की राय पर काम करनेवाले थे। इस अवस्था में स्वागता-ध्यक्ष का उत्तरदायित्व कम महत्वपूर्ण नहीं था। यह केवल खान-पान की व्यवस्था करना भर नहीं था। हरएक विचार के व्यक्ति को अपने-अपने विचार का प्रचार करने की पूर्ण सुविधा देना भी था। दिल्ली के पुराने नेताओं में से इस समय कोई नहीं रहा था। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और श्री आसफअली ही केवल १९१९ के विख्यात नेताओं में से शेष रह गये थे। अतः स्वागताध्यक्ष का पद केवल शोभा मात्र न था। इन्द्रजी ने डायरी में लिखा:—"ईश्वर की दया से कार्य सफल हुआ।" यह आत्म-सन्तोष इस बात का प्रमाण है कि दिल्ली के राजनीतिक जीवन में इन्द्रजी इस समय किस ऊँचाई पर पहुँचे हुए थे। यह प्रसन्नता उस समय बढ़ गयी, जब जन्माष्टमी के दिन (२८-२-३७ को) 'मुगल साम्राज्य का क्षय' का चौथा भाग भूमिका सहित समाप्त किया। इस महान् ग्रन्थ को लिखने में इन्द्रजी को लगभग दस साल लगे। १९२७ में फिरोजपुर जेल में इसका लिखना प्रारम्भ हुआ था। इसकी तैयारी छात्र जीवन में ही कर ली गयी थी। प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुस्तक 'डिक्लाइन आफ रोमन एम्पायर' (पाँच भागों में) ने इसको लिखने की प्रेरणा दी, इसकी शैली और भाषा दोनों अनुपम हैं। ऐतिहासिक विवेचन पूर्णतः विश्लेषणात्मक है।

इस प्रसन्नता में कुमारी पद्मा की ब्रह्मदत्त के साथ सगाई हो जाने से और अधिक वृद्धि हुई।

सात वोटों से पराजय

किन्तु इस खुशी के बाद ही उन्हें पराजय का दुःख झेलना पड़ा। हरिपुरा कांग्रेस के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ। निर्वाचित प्रतिनिधि ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का निर्माण करते थे। दिल्ली में इन्द्रजी के मुख्य विरोधी शंकरलाल थे। उनका दल अभी तक १९३१ की पराजय को भूला नहीं था। दूसरी ओर इन्द्रजी का दल अपने को अजेय माने बैठा था। उसका आवश्यकता से अधिक आत्म-विश्वास ही उसके लिए और विशेषतः इन्द्रजी के लिए घातक सिद्ध हुआ। इन्द्रजी के मुकाबले में उनके ही पुराने मित्र और सहयोगी श्री नरसिंह को खड़ा किया गया। इन्द्रजी सात वोटों से हारे।

पण्डितजी की पराजय कांग्रेस में नये तत्व के आगमन की सूचना थी। कांग्रेस के मन्त्रित्व लेने के साथ निष्टावान् सेवकों के बदले कांग्रेस में स्वार्थसाधक लोग बड़ी संख्या में आ गये थे। इनका उद्देश्य कांग्रेस की ताकत बढ़ाना नहीं था, बल्कि अपनी आर्थिक स्थिति सुधारना था; ठेके प्राप्त करना और तिजोरियाँ भरना था। परन्तु कांग्रेस के पास उस समय इस ओर सोचने के लिए समय ही नहीं था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिल्ली से गुरुकुल

कांग्रेस में आये नये तत्वों ने पुराने तत्वों को धक्का दिया। इन्द्रजी भी कांग्रेस से हटकर आर्य समाज के क्षेत्र में आ गये। वह सार्वदेशिक सभा के उपप्रधान चुने गये। गुरुकुल कांगड़ी का उन्हें मुख्याधिष्ठाता बनाया गया। इस कार्य के लिए 'सभा' उनसे १९२७ से आग्रह कर रही थी।

इस समय उनका इन दो संस्थाओं के साथ जो सम्बन्ध आरम्भ हुआ, वह स्वास्थ्य के जवाब देने तक बना ही रहा। यह इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि इन्द्रजी का मानसिक झुकाव राजनीति की ओर था, पर श्रद्धालु हृदय धर्म की ओर था। यदि भारत पराधीन न होता तो सम्भव था इन्द्रजी अध्ययन अध्यापन तक ही अपने को सीमित रखते, किसी अनुसन्धान कार्य में अपने को लगाते और अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा को किसी उत्कृष्ट और स्थायी साहित्य के निर्माण या वेद भाष्य में लगाते। वेद भाष्य करने का विचार उनके मन में छात्रावस्था में ही उदय हुआ था। अन्तःकरण की ये प्रवृत्तियाँ इस समय जोर से प्रगट हुईं।

बम्बई से नया पत्र

इन्द्रजी ने पिछले सालों में कई बार बम्बई की यात्रा की थी। बम्बई से हिन्दी का दैनिक निकालने की आवश्यकता का भी उन्हें भान हुआ। बम्बई से हिन्दी का दैनिक पत्र निकालने का प्रयत्न पहले नवाकाल (मराठी दैनिक) के संचालकों ने किया था, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसके बाद श्री जयनारायण व्यास ने जन्मभूमि के श्री अमृतलाल सेठ से मिलकर 'अखण्ड भारत' निकाला। यह राजस्थानियों के वास्ते ही निकाला गया था। यह विशेषतः रियासती जनता का पत्र था। सर्वसाधारण हिन्दी भाषी जनता का पत्र न था। अतः यह प्रयत्न भी विफल हुआ। इन्द्रजी के सामने ये दो विफलताएँ थीं। इनसे हतोत्साह न होकर आपने हिन्दी जनता का हिन्दी दैनिक पत्र बम्बई से निकालने का निश्चय किया। परमात्मा पर भरोसा करके आप बम्बई जा पहुँचे और पत्र निकालने के लिए हिन्दी समाचार पत्र लिमिटेड कम्पनी की योजना प्रारम्भ की।

२१ दिसम्बर को नवराष्ट्र का डिक्लरेशन मिल गया। १० जनवरी १९३९ को नवराष्ट्र का उद्घाटन समारोह हुआ। उद्घाटनकर्ता श्री मुंशी थे। १५ जनवरी को नवराष्ट्र का पहला अंक निकला। यह प्रयत्न कैसा रहा इसका उत्तर है—पत्र खूब चला। एक ही वर्ष में उसके पाँच हजार से ऊपर ग्राहक हो गये थे, और निरन्तर बढ़ रहे थे, विज्ञापन भी आने लगे थे, जिससे आशा बँध गयी थी कि अब नवराष्ट्र पत्र चल निकलेगा।

इन्द्र जी ने लिखा है :—

मेरा लक्ष्य इतना ही था कि बम्बई से एक हिन्दी का दैनिक पत्र निकाला जाय, जिसकी आधारशिला इतनी दृढ़ हो कि वह चिरस्थायी रहे। जुलाई १९३९ में हिन्दी समाचार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्र लिमिटेड के नये डायरेक्टर सेठ हीरालाल बन गये। इस प्रकार इन्द्र जी के बम्बई छोड़ने पर नवराष्ट्र कुछ ही मास और जीवित रहा। नवराष्ट्र इन्द्रजी को बम्बई खींच-कर ले गया था, दूसरा महायुद्ध उनको दिल्ली वापस ले आया। इसके साथ, इन्द्रजी के संघर्ष- पूर्ण जीवन का एक परिच्छेद भी समाप्त हो गया। जीवन-धारा का प्रवाह अब स्थिर हो चला था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्जुन का कार्य

दूसरा महायुद्ध छिड़ने के समय इन्द्रजी की आयु का उत्तर भाग प्रारम्भ हो गया था। इस समय पण्डितजी का मस्तिष्क पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुका था। लेकिन शरीर, मन और बुद्धि का साथ नहीं दे रहा था। इस विवशता पर आपने स्वयं डायरी में लिखा : "शारीरिक दृष्टि से मैं बचपन का रोगी हूँ। दो वर्ष की आयु में मुझे निमोनिया हुआ था। फिर कुछ वर्ष पीछे डबल निमोनिया हुआ। १६ वर्ष की आयु में मुझ पर प्लूरसी का प्रवल आक्रमण हुआ और ३५ वर्ष की आयु में प्रारम्भिक आक्रमण से निर्बल हुए फेंफड़ों को निमोनिया ने और अधिक आहत कर दिया। इस प्रकार से शैवशकालसे ही खांसी और उससे सम्वन्धित रोगों का शिकार रहा हूँ।" यह अनुभूति श्रीइन्द्रजी को अब सदा रहती थी। यदि उनके शरीर को देखकर कोई उन्हें बचपन का रोगी नहीं समझता था, उसका कारण दादा और पिता से मिली शारीरिक विभूति और असाधारण परहेज था।

इन्द्रजी ने स्वयं अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में लिखा है :—

"३५ या ४० वर्ष हो गये, जब एक दिन मैंने शौक के तौर पर ठंडा पानी पिया या कोई अचार जैसी खट्टी चीज खायी तो खांसी हो गयी। थोड़े-बहुत व्यायाम का मुझे सदा शौक रहा है। व्यायाम के अभ्यास से मेरा शरीर चिर रोगी होता हुआ भी समर्थ बना रहा।"

लकिन आयु के उत्तरार्द्ध में साधारण परहेज भी रोगी व्यक्ति की सहायता करने से इन्कार कर लेता है। संघर्ष करने से चित्तवृत्ति उपराम हो जाती है। धक्का देकर आगे वढ़ने की इच्छा शिथिल हो जाती है। जीवन का प्रवाह मन्द और स्थिर गति से प्रवाहित होने लगता है। इसी लिए १९४० से अगले दस साल इन्द्रजी ने शारीरिक परिश्रम के कार्यों को छोड़कर साहित्य-निर्माण में लगाये। सांस्कृतिक कार्य उन्हें मन से प्रिय था। स्वतन्त्रता संग्राम का यह सेनानी एक ओर ब्रिटिश 'साम्राज्य का क्षय' लिख रहा था और उसको उखाड़ने और नष्ट करने का गांधीजी के तरीके से प्रयत्न कर रहा था, दूसरी ओर साहित्यिक साम्राज्य का निर्माण कर रहा था। किन्तु इतने तक ही उन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र सीमित नहीं कर दिया। आर्य समाज और गुरुकुल के लिए उनका शेष जीवन पूर्णतः अर्पित हो गया। सार्वदेशिक सभा के वर्षों मन्त्री रहकर और गुरुकुल कांगड़ी के निरन्तर २० वर्ष संचालक रहकर संघर्ष करते हुए बीते। इस काल में 'अर्जुन' की जो क्वटा भूकम्प के बाद "वीर अर्जुन' का नाम धारण कर चुका था, काया पलट हो गयी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और इन्द्रजी का पत्र से सम्बन्ध लगभग टूट ही गया । यह भी उनके जीवन का एक दुःखद प्रसंग है । इसका उनके शरीर और स्वास्थ्य पर अप्रत्यक्ष रूप से वैसे ही प्रभाव पड़ा, जैसा कि उस माली पर पड़ता है, जिसका लहलहाता फलों से लदा और बड़े परिश्रम से लगाया वृक्ष सहसा सूख जाता है । 'अर्जुन' का अन्त उनके लिए एक असाधारण दुःखद घटना थी । 'वीर अर्जुन' से अलग होने और उसे पूँजीपतियों को सुपूर्द करने की मार्मिक व्यथा पण्डितजी के इन शब्दों में प्रकट हुई :—

"जबतक सम्पादक लोग पूँजी के वशवंद रहे, तब तक पूँजीपति उनपर कृपालु रहे । परन्तु जब अंग्रेजी सरकार के विरोध में लड़ते-लड़ते सम्पादकों को अपनी शक्ति का भरोसा हो गया, तब उन्होंने पूँजीपतियों की खुशामद और धमकी दोनों की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी । तब धीरे-धीरे धनी वर्ग की मनोवृत्ति बदलने लगी । एक और चीज ने भी पूँजीपतियों को अखबारों की ओर आकृष्ट किया । कई समाचार पत्रों की आर्थिक दशा अच्छी हो गयी । देश के राजनीतिक आन्दोलन में गर्मी आने के साथ-साथ अच्छे पत्रों की ग्राहक संख्या बढ़ने लगी । ग्राहक संख्या ने विज्ञापकों का रवैया बदला । जिससे लोकप्रिय समाचार-पत्र अपने पांव पर खड़े होने लगे । यह देखकर पूँजीपतियों के मुंह में पानी आना स्वाभाविक था । उन्हें वहाँ मान और धन दोनों दुर्लभ वस्तुएँ दिखायी दीं । पहले तो उन्होंने प्रभावशाली समाचार-पत्रों को रुपयों की थैलियों से जीतने का यत्न किया, फिर तरह-तरह की धमकियों का प्रयोग किया, और अन्त में स्वयं बड़े-बड़े बैंक बेलेंस लेकर मैदान में उतर आये । फलतः आदर्श के दीवाने पत्रकार भी तो मैदान छोड़कर भाग गये । अथवा मन मारकर पत्रकार-जगत् में श्रमजीवी बन गये । यह परिवर्तन लगभग जिन तीस वर्षों में हुआ, मैं उनमें पत्रकारिता के बीच बाजार में था । मैंने समाचार पत्रों की ओर पूँजीपतियों की तीनों तरह की दृष्टियाँ देखी हैं । मैंने वह दिन भी देखे जब कारखानों के मालिक मेरे कार्यालय में आकर अपने समाचार दिया करते थे और छपने पर टेलीफोन द्वारा या लिखकर आभार प्रदर्शन करते थे । फिर मैंने वह दिन भी देखे, जब उन्होंने अपना प्रतिनिधि भेजकर मुझे अपने यहाँ बुलाया और यह प्रस्ताव रखा कि मैं 'अर्जुन' को उनके कारोबार का हिस्सा बना दूँ । जब उसमें सफलता न हुई, तो मैंने उन्हें कमर कसकर पत्रकारिता के बाजार में दुकानदार बनते भी देख लिया ।"

श्री इन्द्रजी को 'अर्जुन' के कारण पूँजीपतियों से अनेक बार संघर्ष करना पड़ा । पहली टक्कर उनकी फतेहपुरी के एक होटल मालिक से हुई । वह रेलवे का ठेकेदार भी था । 'अर्जुन' में एक समाचार इस आशय का छपा कि यह होटल व्यभिचार का बहुत बड़ा अड्डा बना हुआ है । वैयक्तिक चेतावनी से कोई लाभ न हुआ, तो पत्र में टिप्पणी सहित समाचार छपा, इससे होटल का मालिक तिलमिला उठा । उसने जवाब में एक उर्दू का दैनिक पत्र सनातनधर्म की रक्षा तथा आर्य समाज के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए निकाला । धर्मशालाओं में कुछ लोगों को इकट्ठा करके 'अर्जुन' का बहिष्कार कराने के प्रस्ताव भी उसने स्वीकार कराये । लेकिन इन सब कारणों से 'अर्जुन' का प्रचार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और बढ़ गया। होटल के मालिक ने पत्र ही नहीं बन्द कर दिया, बल्कि अपना होटल भी कुछ समय में बन्द कर बेंच दिया। रेलवे स्टालों का ठेका भी बदल गया। 'अर्जुन' की एक पूँजीपति से यह पहली टक्कर थी। 'अर्जुन' विजयी हुआ, लेकिन यह टक्कर भी अपने चिह्न छोड़ गयी।

पचास हज़ार रुपये के दावे की धमकी

दूसरी टक्कर यथार्थतः बड़े पूँजीपति से हुई। मिल मजदूरों की शिकायत पत्र में प्रकाशित हुई। इस पर मिल मैनेजर का पारा ११० पर चढ़ गया। इतना चढ़ा कि मिल के सेक्रेटरी ने फोन पर पण्डितजी को रात नौ बजे यह धमकी दी—"यदि आप उस चिट्ठी का प्रतिवाद स्वयं नहीं करेंगे तो 'अर्जुन' पर मिल मालिक की ओर से पचास हजार रुपये की मानहानि का दावा किया जायेगा।" यह धमकी भरा समाचार मिलने पर श्री इन्द्रजी ने शान्ति से जवाब दिया : "जरा ठहरिये, मैं अभी उत्तर देता हूँ।" कुछ समय बाद पण्डिपजी ने फोन पर हुई बातचीत के आधार पर एक समाचार लिखा—'सेठजी की ओर से अर्जुन पर मानहानि का दावा' जब यह समाचार आपने मिल के सेक्रेटरी को सुनाया कि वह यह समाचार प्रातःकाल छपने को पत्र में दे रहे हैं तब मिल के सेक्रेटरी चकराये। उन्होंने रात ही रात वकीलों से सलाह की। वकीलों की राय थी कि यदि अदालत में मामला गया, तो 'अर्जुन' की अपेक्षा मिल को अधिक हानि पहुँचेगी। यह परामर्श मिलने के बाद मिल के सेक्रेटरी पीछे हट गये। समाचार का प्रतिवाद लेकर अगले दिन स्वतः दफ्तर में आये।"

इन्हीं दिनों से एक नया हिन्दी दैनिक निकला। इस पत्र की प्रतिद्वन्द्विता ने 'अर्जुन' के रास्ते में असाधारण कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। 'अर्जुन' ६ पृष्ठों का पत्र था। यह २ पैसे का था। नया पत्र ८ पृष्ठ का था और दाम २ पैसा ही था। 'अर्जुन' भी ८ पृष्ठों का हो गया। इस पर नये दैनिक ने पृष्ठ संख्या १० कर दी। 'अर्जुन' को भी पृष्ठसंख्या बढ़ानी पड़ी। 'अर्जुन' पर कागज का ४० हजार रुपयों से अधिक ऋण हो गया था। यह 'अर्जुन' के जीवन का अधिक-से-अधिक विकट समय था। यह कर्ज कुछ समय बाद सूद सहित उतर गया। धैर्य और परिश्रम का सुफल था। किश्ती को पार लगाने वाला भगवान् ही था।

दिल्ली की एक मिल में हड़ताल हो गयी। हड़ताल का समाचार 'अर्जुन' में छपा। इससे मिल मैनेजर घबरा गये। उन्होंने प्रार्थना की कि हड़ताल के समाचार पत्र में न छापे जायें। यदि छपते रहेंगे, तो मिल से प्रेस को जो छपाई का काम जाता है, वह मिलना बन्द कर दिया जायेगा। पण्डितजी ने यह समाचार पत्र में प्रकाशित कराया; 'हड़ताल के समाचार प्रकाशित करने के अपराध में अमुक मिल के मालिकों की ओर से आर्डिनेंस जारी करके छपाई का काम बन्द कर दिया गया है।' नौबत यहाँ तक पहुँची नहीं। मिल के मालिक ने बम्बई से लौटने पर अपने मैनेजर की कार्यवाही नापसन्द की और इस काम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर खेद प्रकट करते हुए कहा—"आपके यहाँ मिल की छपाई का काम पूर्ववत् आता रहेगा।"

१९४७ में दिल्ली से हिन्दी का एक और दैनिक निकला। इस समय दिल्ली में तीन दैनिक हो गये थे। 'अर्जुन' को त्रिकोणात्मक मुकाबला पहली बार करना पड़ा। इस नये पत्र के लिए जो भरती हुई, उसकी तोप का मुंह विशेष रूप से 'अर्जुन' कार्यालय के कर्मचारियों की ओर ही खुला। यह वार वस्तुतः 'अर्जुन' संस्था के शरीर पर था। पण्डितजी को इससे भारी व्यथा हुई। क्योंकि पत्र-संचालन अब एक मिशन न रहकर व्यवसाय और धन्धा हो गया था। व्यवसाय के सामने मिशन नहीं टिक सका।"

'अर्जुन आर्थिक कठिनाई में था फिर भी इन्द्रजी ने पत्र के लिए दूसरे के सामने हाथ नहीं पसारा। ईश्वर पर विश्वास रखा।

ईश्वर पर विश्वास

इन्द्रजी बुद्धिवादी थे, किन्तु परम धार्मिक और भक्त थे। ईश्वर के प्रति उनके हृदय में अमिट विश्वास था। यह विश्वास कभी डिगा नहीं। वे सदा मानते रहे कि जो निर्मल हृदय पुरुष किसी का कभी मन, वाणी, वचन से अहित नहीं करता, अहित नहीं सोचता, भगवान् उसकी सहायता अवश्य करते हैं। नरसी मेहता के समान वे भी कहते थे कि यदि माँगना ही हो, तो सबके देनेवाले शाहनशाह से क्यों न माँगा जाये ? इन्द्रजी यह बात कहते ही नहीं थे, इस पर अटूट विश्वास भी करते थे। इस प्रसंग में जीवन के कई प्रसंग स्मरणीय हैं।

'अर्जुन' पत्र के कार्यालय की घटना है। स्टाफ ने हड़ताल करने की धमकी दी थी। स्टाफ और प्रेस का कहना था कि यदि इन्द्रजी वचन दें कि सोमवार को उनको वेतन मिल जायेगा, तो हड़ताल न होगी। इन्द्रजी ने मजदूरों के नेताओं को बुलाया, बातचीत हुई और तय हुआ कि सोमवार को सबका वेतन बँट जाना चाहिये।

बीच में रविवार पड़ता था। इन्द्रजी का चेहरा प्रसन्न था। दफ्तर में पैसा नहीं था। दफ्तर के लोग चकित थे।

घर में उन्होंने यह बात किसी को नहीं बतायी। रविवार को छुट्टी थी। छुट्टी को कहीं बाहर जाने का उनका पुराना अभ्यास था। उस रविवार को भी ओखला चलने का प्रोग्राम बना। यह भी तय हुआ कि भोजन और चाय-पान वहीं किया जायेगा। अँगीठी मोटर में रखी गयी। मोटर जब चलने को हुई, तब इन्द्रजी ने पत्नी को दफ्तर की घटना का समाचार दिया। पत्नी चिन्ताक्रान्त हो गयी। उसने अनुरोध किया कहीं जाकर पैसे का प्रबन्ध कीजिये। ओखला यात्रा स्थगित कर दें। इन्द्रजी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा। माँगना ही है, तो किसी व्यक्ति से क्यों मागूँ ? सबको देनेवाले दाता हैं, उससे क्यों न माँगें ?" पत्नी की चिन्ता का इससे अन्त नहीं हुआ। पर इन्द्रजी सर्वथा निश्चिन्त थे। ओखला पहुँचने पर उन्होंने सुझाया चाय-पकौड़े बनाये जायें। वे सबको खाते हुए देखेंगे। ऐसा ही किया गया। इन्द्रजी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसन्न थे। बच्चों के साथ पहले के समान विनोद करते रहे। लौटने पर जब सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तब एक बार कहा, चलो रविवार बीत गया। स्वर भारी नहीं था। पर इससे उनकी पत्नी को अनुभव हुए बगैर नहीं रहा कि कल आनेवाली समस्या ने इन्द्रजी को विचारमग्न अवश्य कर रखा है।

सोमवार आया। पण्डितजी नित्य नियम के अनुसार दफ्तर में गये। ९ बजे प्रातः की पहली डाक आयी। पत्रों पर नजर पड़ी। लिफाफे खोले गये। जो खोला, उसी में से चेक निकला। 'अर्जुन' के एजेन्टों ने चेक भेजे थे। चार चेक हाथ में लेकर पण्डितजी उसी समय घर गये, और पत्नी को सुनाकर बोले, "देखो कहता था न, भक्तों को शाहनशाह हुण्डी भेजता है। ४ हजार रुपये के चेक आये हैं। वेतन में तो दो हजार बाँटने हैं।" प्रसन्नता से वातावरण भर गया।

चेक बैंक भेजे गये। दफ्तर में सन्तोष की लहर फैल गयी। पण्डितजी सत्य प्रतिज्ञ रहे। इसकी छाप सहयोगियों पर गहरी पड़ी। पण्डितजी का गुरुमन्त्र था——धैर्य ही मित्र है। वह सफल सिद्ध हुआ। हड़ताल के रूप में उठे बादल छँट गये।

एक और प्रसंग भी ऐसा ही आया——'अर्जुन' से दस हजार रुपये की जमानत माँगी गयी थी। एजेन्टों की ओर से 'अर्जुन' का पैसा इससे अधिक निकलता था। रुपये की वसूली के लिए इन्द्रजी स्वतः निकले। अजमेर होते हुए जयपुर पहुँचे। आवश्यक राशि एकत्र होने में अभी दो-तीन हजार की कसर थी। जयपुर का एजेन्ट दे देता, तो यह समस्या तत्क्षण हल हो जाती। जमानत जमा करने की अवधि में केवल एक दिन शेष था। अजमेर से जयपुर आते हुए इन्द्रजी को ज्वर हो गया था। इसलिए जयपुर में किसी के पास जा भी नहीं सकते थे। एजेन्सी मैनेजर साथ था। उसे एजेन्ट के पास भेजा। एजेन्ट ने कहा इस समय तो वह कुछ नहीं दे सकता। अगले मास चाहो तो जितना निकलता है, उससे दुगुना भेज दूँगा। एजेन्सी मेनैजर ने यह जवाब दिया, जमानत तो कल जमा करनी है, रुपये तो अभी चाहिए। किसी प्रकार भी इन्तजाम करके दो। इन्द्रजी बीमार हो गये हैं, अन्यथा वही आते।

इसका एजेन्ट पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। बोला——"पण्डितजी तो कभी तकाजा नहीं करते। तकाजा तो आप ही सदा करते हो। वे तो देवता पुरुष हैं। चलो, मैं पण्डितजी के पास चलता हूँ। देखना अवश्य मुझे छोड़ देंगे। इधर पण्डितजी जहाँ ठहरे हुए थे वहाँ बातचीत में व्यस्त थे। अकस्मात् डाक आयी। पण्डितजी और उनकी पत्नी दोनों चकित रह गये। देवलाली से एक चेक पाँच हजार रुपये का आया था। चेक पर हस्ताक्षर गुजराती में थे। नाम पढ़ा नहीं जा रहा था। पण्डितजी सोच रहे थे कि इस संकटकाल में यह चेक भेजनेवाला उनका कौन हितैषी हो सकता है। इसी समय जयपुर का एजेन्ट 'अर्जुन' के एजेन्सी मैनेजर के साथ सेवा में पहुँचा। मैनेनर ने एजेन्ट की बात बतायी। एजेन्ट ने हाथ जोड़कर कहा——"पण्डितजी! एक मास का समय दीजिये, आपका सब बकाया भेज दूँगा।" पण्डितजी का काम पूरा हो चुका था। उन्होंने मैनेजर की ओर देखकर कहा——"भाई हमारी तरह इनकी भी कोई मुसीबत हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकती है । जैसा यह कहते हैं, वैसा ही करो और एजेन्ट से कहा, "जाइये, पर अगले मास कुछ-न-कुछ भेज अवश्य देना ।"

एजेन्सी मैनेजर बहुत पुराना था । उसका चेहरा बता रहा था कि पण्डितजी के इस उदारतापूर्ण व्यवहार से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ । जमानत की समस्या उसको परेशान कर रही थी । पण्डितजी ने उसको चेक देते हुए कहा—चलो अब दिल्ली लौटने की तैयारी करो । शाहनशाह ने हुण्डी भेज दी है । पार्टी दिल्ली लौट आयी । जमानत जमा कर दी गयी । परन्तु देवलाली के सहायक मित्र के नाम का पता नहीं लगा । वह अज्ञात नाम के व्यक्ति के नाम लिखी राशि बाद में पण्डितजी ने रुपया पास आ जाने पर गुरुकुल को दान कर दी थी ।

यह इस बात का प्रमाण है कि पण्डितजी का जीवन प्रभु के एक सच्चे भक्त का जीवन था, जो केवल प्रभु की दया पर ही आश्रित था ।

श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड

'वीर अर्जुन' नई प्रतियोगिता में खड़ा न रह सकता, यदि श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड की स्थापना न होती । इसकी स्थापना के पीछे भी इन्द्रजी का त्याग भाव ही काम कर रहा था । कम्पनी की स्थापना के विषय में अपना भाव स्वच्छ करते हुए इन्द्रजी ने लिखा है—

"मैंने प्रारम्भ से ही अर्जुन प्रेस तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रों को अन्य की सम्पत्ति नहीं समझा । वे मेरे लिए सार्वजनिक सेवा का साधन एवं सार्वजनिक वस्तु रहे । जबतक उनकी आर्थिक दशा निर्बल रही, मैंने उन्हें अपने पास रखा, परन्तु जब ग्राहक-संख्या और विज्ञापनों की दृष्टि से वह अपने पाँव पर खड़ा हो गया, तब मैंने उनके सम्भालने के लिए, 'श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड' नाम की कम्पनी संगठित करके प्रेस, पत्र तथा अपनी पुस्तकों का भण्डार सब कुछ उसे सौंप दिया । इस परिवर्तन का परिणाम बहुत अच्छा हुआ । प्रेस और पत्र दोनों की पर्याप्त उन्नति हुई, इतनी उन्नति हुई कि उसे देखकर बहुत-से महानुभावों और पूँजीपतियों के मुंह में पानी आ गया ।"

परन्तु इसी परिवर्तन के कारण, जैसा घटनाक्रम से विदित होगा, 'वीर अर्जुन' से श्रीइन्द्र का ही सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ, बल्कि उनके सम्बन्ध-विच्छेद के कारण पत्र के जीवन का भी अन्त हो गया । इस मौके पर ज्ञात हुआ कि पत्र का प्राण श्री इन्द्रजी की लेखनी थी, पूँजी नहीं । वस्तुत: पूँजीपतियों के साथ संघर्ष होने पर उनको पूँजी से नहीं पछाड़ा जा सकता था । इसके लिए लेखनी का ही बल चाहिये था । श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड के मैनेजर डायरेक्टर पद पर और पत्र में इन्द्रजी का न लिखना ही उसकी मृत्यु का कारण हुआ । इन्द्रजी के जीवन का एक महान् कार्य इस प्रकार उनके ही जीवन में समाप्त हो गया । इसका कवि हृदय इन्द्रजी के स्वास्थ्य पर प्रभाव न पड़ा हो, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता । उनका स्वभाव अत्यधिक गम्भीर था । इस कारण उनका चेहरा बड़ी-से-बड़ी आन्तरिक व्यथा को प्रकट नहीं होने देता था । फिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जब उन्होंने सार्वजनिक सम्मति समझकर कम्पनी बनाई थी, और वह कम्पनी नहीं चल सकी, तो उनका दु:ख स्वभावत: कम हो गया था। यह होते हुए भी यह मानना होगा कि जो अवस्था, यादव कुल का परिवार लेकर हस्तिनापुर लौटते हुए अहीरों से मुकाबला होने पर गाण्डीवधन्वा अर्जुन की हुई होगी, वही पण्डितजी की 'अर्जुन' बन्द होने से हुई। यद्यपि इन्द्रजी ने इस व्यथा को कभी व्यक्त नहीं होने दिया।

योजना का प्रारम्भ

'श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड' के निर्माण की योजना का प्रारम्भ इन्द्रजी ने बम्बई से दिल्ली आने पर किया। इससे पहले हिन्दी पत्र प्रकाशन लिमिटेड का वह निर्माण कर चुके थे। अत: एक कम्पनी खड़ी करने में आनेवाली कठिनाइयों और सम्पादक पर इसके कारण आनेवाली सीमाओं और लगनेवाले प्रतिबन्धों से परिचित थे। इस अनुभव के बाद भी इन्द्रजी ने पूँजीपतियों के पत्रों से लड़ने के लिए कम्पनी बनाना उचित समझा। इसका एक कारण तो था कि पत्रों के प्रति पण्डितजी का उत्साह युवावस्था के समान नहीं रहा था। फिर वह एकाकी थे। उनके भांजे श्री सत्यकामजी विद्यालंकार इससे पहले ही दिल्ली छोड़कर बम्बई जा चुके थे। उनको अपना कोई विश्वास-पात्र उत्तराधिकारी नजर नहीं आता था। पुत्र का मार्ग अलग था। इस अवस्था में 'वीर अर्जुन' को जीवित रखने के वास्ते उनके सामने एक ही मार्ग रह गया था। दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। इस कारण बाजार में पूंजी की कमी नहीं थी।

सत्याग्रह कैम्प

'भारत छोड़ो' का नारा अभी गांधीजी ने देश को नहीं दिया था। नेताजी की पार्टी 'फारवर्ड ब्लाक' गांधीजी को वैयक्तिक सत्याग्रह से आगे बढ़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकी थी, वैयक्तिक सत्याग्रह के लिए तैयारी करने का भार इन्द्रजी पर था। सत्याग्रह को दिशा देने के वास्ते और आवश्यकता होने पर और प्रकट होने पर इसको सफल बनाने के उद्देश्य से तुगलकाबाग के 'श्रद्धा-निकेतन' में सत्याग्रह कैम्प लगाया गया। सत्याग्रह की शिक्षा देने के लिए इससे अच्छा स्थान दिल्ली के आस-पास मिलना सम्भव नहीं था। इस स्थान के पास ही ब्रिटिश सेना की चाँदमारी का स्थान था। अहिंसक सत्याग्रहियों की शिक्षा और सत्याग्रह के अभ्यास के वास्ते इस दृष्टि से यह उपयुक्त स्थान था। सत्याग्रह कैम्प का कार्य २५ सितम्बर को प्रारम्भ हुआ। इसी मौके पर बदरपुर में गांधी जयन्ती भी इन्द्रजी के सभापतित्व में हुई। शायद यह अन्तिम कांग्रेसी सभा थी, जिसका सभापतित्व इन्द्रजी ने कांग्रेस का एक पदाधिकारी होते हुए किया। इसके बाद देश में एक ओर प्रचण्ड आँधी आयी, तूफान आया, और दूसरी ओर इन्द्रजी चिकित्सा के चक्रव्यूह में फँस गये।

आर्य सत्याग्रह की तैयारी

इन्द्रजी जब बम्बई में थे, और दिल्ली आने की तैयारी कर रहे थे, तब हैदराबाद में सत्याग्रह जोर-शोर से चल रहा था। इस सत्याग्रह की योजना बनाने तथा देश में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उचित वातावरण बनाने का कार्य आपने अत्यधिक परिश्रमपूर्वक किया। १९३३ से हैदराबाद में आर्य समाज के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगने प्रारम्भ हो गये थे। ये प्रतिबन्ध समय के साथ बढ़ते ही गये। साप्ताहिक सत्संग रोके गये। हवन-यज्ञ बन्द किये गये। आर्य-समाज के प्रचारकों का हैदराबाद में आना रोक दिया गया। कार्यकर्ताओं को जेल से लेकर काले पानी की सजा दी गयी। आर्य नेता जेल में भर दिये गये। घर से उन्हें पथ्य तक नहीं जाने दिया गया। इन सारी परिस्थितियों पर विचार करने के लिए ३० अप्रैल १९३१ को सार्वदेशिक सभा की एक विशेष बैठक हुई। इसमें श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने १४ सूत्री प्रस्ताव रखा, जिसकी भूमिका में कहा गया था––"यह सभा हैदराबाद रियासत में आर्य समाज और सामाजियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उसकी घोर निन्दा करते हुए उन आर्यनिवासियों के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है। इस सभा को इस बात का विशेष दुःख है कि रियासत के उच्च अधिकारियों ने सभा के प्रतिनिधियों को बार-बार आश्वासन दिये हैं कि आर्य-समाज के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जायेगा, परन्तु आश्वासनों को सदा ही तोड़ा गया है और स्थिति को अधिक-से-अधिक भयंकर होने दिया गया है। यह सभा समझती है कि अब दशा वहुत ही बिगड़ गयी है और उसकी उपेक्षा करना असम्भव है।'

निजाम हैदराबाद से १४ माँगें करते हुए प्रस्ताव के अन्त में कहा गया था : "क्योंकि सभा को दिये गये आश्वासन की रियासत के अधिकारियों ने कोई परवाह नहीं की, सभा यह आवश्यक समझती है कि सम्पूर्ण आर्य जनता को इस आवश्यक प्रश्न के सम्बन्ध में साथ लिया जाये, इसलिए सभा निश्चय करती है कि पाँच मास के अन्दर मध्यप्रदेश, या महाराष्ट्र में किसी ऐसे केन्द्र में, जो हैदराबाद रियासत के समीप है, एक आर्य-सम्मेलन किया जाये, जिसमें विशेषतः हैदराबाद की समस्या पर विचार हो।

"सभा की सम्मति है कि यदि रियासत के अधिकारी परिवर्तन करने को तैयार न हों, तो सम्पूर्ण आर्य समाज को सब उचित उपायों से, जिनमें सत्याग्रह भी शामिल है, अपने अधिकारों के लिए लड़ने को तैयार हो जाना चाहिए।

"यह सभा आर्य रक्षा समिति को आदेश देती है कि वह इस प्रस्ताव के अनुसार आर्य महासम्मेलन के संगठन तथा अन्य सब आवश्यक उपायों को काम में लाकर हैदराबाद में आर्य समाज के अधिकारों की रक्षा करने का प्रयत्न करे।"

सर्व सम्मति से स्वीकृत यह प्रस्ताव इस बात का प्रमाण है कि हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह का वीजवपन करने का कार्य प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने किया। आर्य रक्षा-समिति के आप ही प्रधान थे, अतः इसके संगठन और सत्याग्रह को शुरू करने का दायित्व स्वभावतः आप पर आ गया। यही कारण है कि ३० जनवरी १९३९ को महात्मा नारायण स्वामीजी के सत्याग्रह करने से पहले से जो आर्य रक्षा-समिति का सत्याग्रह हैदराबाद में चल रहा था, वह बाद में आर्य-सत्याग्रह में मिल गया।

हैदराबाद रियासत के बारे में आपका मत था कि इतिहास से स्पष्ट है कि यह रियासत चालाकी, स्वामिद्रोह की बुनियाद पर खड़ी हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सार्वदेशिक सभा के अधिकारी सत्याग्रह से दूर रखे गये थे । यथार्थ सत्याग्रह की जिम्मेदारी सत्याग्रह-समिति और उसके नियुक्त अधिकारियों पर थी । परन्तु इसको कुमुक पहुँचाना, सत्याग्रह शिविरों की व्यवस्था करना, धन जुटाना, और स्वयंसेवकों का संग्रह करने का उत्तरदायित्व सभा पर था । यही कारण है कि सभा के प्रधान प्रो० घनश्यामसिंह गुप्त सत्याग्रह करके जेल नहीं गये । किन्तु सत्याग्रह के डिक्टेटरों और बम्बई से शोलापुर जानेवाले जत्थों का बम्बई में स्वागत-समारोह अभिनन्दन कराने का कार्य आपने अनुपम ढंग से किया । आप सदृश जेल से बाहर रहनेवाले नेताओं को लक्ष्य करके ही महात्मा नारायण स्वामीजी ने दिल्ली की एक सार्वजनिक सभा में कहा था—— "वे लोग जिन्होंने कभी सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लिया है, अच्छी तरह जानते हैं कि जेलों से बाहर रहकर सत्याग्रह-आन्दोलन को चलानेवाले लोगों को जेल में बन्द हो जानेवालों की अपेक्षा अधिक काम करना पड़ता है । मुझे यह कहते अभिमान का अनुभव होता है कि उन सब भाइयों ने जो प्राय: अनिच्छापूर्वक अपने निश्चय के विरुद्ध जेलों से बाहर रहे, अपने कर्तव्यों का अत्यन्त प्रशंसनीय रूप से पालन किया ।"

'अर्जुन' कम्पनी का हो गया

श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड को कारोबार प्रारम्भ करने का सर्टिफिकेट २६ अक्तूबर १९४० को मिला । इस दिन के बाद से 'वीर अर्जुन' इन्द्रजी का अपना वैयक्तिक पत्र न रहकर कम्पनी का हो गया । कम्पनी ने अपना प्रारम्भोत्सव ३ नवम्बर १९४८ को मनाया । 'अर्जुन' का नाम बदलकर 'वीर अर्जुन' इससे पहले ही किया जा चुका था । नाम परिवर्तन का कारण 'अर्जुन' से बराबर जमानतों का माँगा जाना था । १९३० में दिल्ली के सब राष्ट्रीय दैनिक पत्रों के साथ 'अर्जुन' से भी १० हजार की जमानत माँगी गयी थी । इसके विरोध में पत्रों ने अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया था । अगस्त १९३० में सरकार ने जमानत की रकम घटा दी । फलत: 'अर्जुन' का अन्य पत्रों के साथ पुन: प्रकाशन होने लगा । १९३२ में पुन: 'अर्जुन' से दो हजार रुपये की जमानत माँगी गयी । १९३५ में क्वेटा में भूकम्प आया । भूकम्प सम्बन्धी कुछ समाचार 'अर्जुन' में छपे थे । विक्षुब्ध सरकार ने इस पर 'अर्जुन' से पाँच हजार की जमानत माँगी । यह जमा की गयी । इस जमा की गयी जमानत को वापस पाने के लिए 'वीर अर्जुन' का डिक्लेरेशन दिया गया । सरकार ने यह समझकर कि 'अर्जुन' के मुकाबले में नया दैनिक निकाला जा रहा है, इसको बिना जमानत माँगे डिक्लेरेशन दे दिया । 'अर्जुन' ने इसका लाभ उठाया । उसने 'वीर अर्जुन' के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ कर दिया । इसके साथ 'अर्जुन' का प्रकाशन बन्द कर दिया गया । इस कारण 'अर्जुन' के संचालक जमा की गयी जमानत पाने के हकदार हो गये । सरकार की बुद्धि इस लड़ाई में बुरी तरह हारी ।

कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र

आत्म रक्षा के लिए भी हिंसा नहीं करनी चाहिए, यह महात्मा गांधी का मत था । यद्यपि कांग्रेस के चवन्नी सदस्य भी गांधी जी नहीं रहे थे, किन्तु कांग्रेस गांधीजी द्वारा की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुई अहिंसा की परिभाषा से बँधी हुई थी। अहिंसा की इस परिभाषा से आर्य नेता इन्द्रजी का कांग्रेस में रहना सम्भव न रहा। आप नीति के रूप में अहिंसा माननेवालों में नहीं थे। यदि आप चाहते तो श्री जवाहरलाल नेहरू का पदानुसरण कर सकते थे। अथवा उन आयरिश नेता 'डीवेलरा' की नीति का भी अनुसरण कर सकते थे, जो इस प्रकार की प्रतिज्ञाओं को दस्ती बताते हैं। इसी नीति के आधार पर ब्रिटिश सम्राट् के प्रति राज-भक्ति की शपथ ली थी और फिर ब्रिटेन से सर्वथा सम्बन्ध तोड़ने में सफल हुए थे। स्वराज्य पार्टी ने भी कौंसिल में जाने के समय इसी नीति का अनुसरण किया था। इन्द्र जी भी स्वराज्य पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से थे। अतः नीति के रूप में अहिंसा को स्वीकार करके कांग्रेस का सदस्य बने रह सकते थे; किन्तु आपने २७ जून १९४१ को कांग्रेस की चवन्नी सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। त्याग-पत्र के कारणों में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि आत्म-रक्षा के लिए हिंसा को छोड़ना वह नहीं मानते। यह एक सैद्धान्तिक प्रश्न था। गांधीजी के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया। गांधीजी की राय से २ जुलाई १९४१ को इन्द्रजी का इस्तीफा स्वीकार कर लिया गया। यह एक अत्यन्त दुःखद प्रसंग था कि पिछले २०-२२ वर्षों से बराबर जो व्यक्ति कांग्रेस का कर्णधार रहा उसे एक तकनीकी प्रश्न पर कांग्रेस से अलग होना पड़ा।

इन्द्रजी विगत २६ सालों से कांग्रेस के सदस्य चले आ रहे थे। अतः कांग्रेस को छोड़ना उनके लिए एक विकट आत्म वेदना का भी कारण था। इस मानसिक व्यथा का उनके स्वास्थ्य पर भी भारी प्रभाव पड़ा। इन्द्रजी को जो दुःख था, वह उनके ५ जुलाई १९४१ को प्रकाशित निम्न वक्तव्य से स्पष्ट हुआ :

"लगभग २६ वर्ष तक कांग्रेस का सदस्य रहने के पश्चात् कांग्रेस से मेरा पृथक् होना एक विचित्र-सी घटना है। इन २६ वर्षों में मैं न केवल स्वयं कांग्रेस का सदस्य रहा हूँ, मैंने हजारों, शायद इससे भी अधिक सदस्य बनाये हैं। "वीर अर्जुन' द्वारा कांग्रेस की सदस्यता बढ़ाने का जो यत्न करता रहा हूँ, वह इससे अलग है।"

२६ वर्ष पुराना सम्बन्ध एक झटके से टूट जाने से गहरी वेदना होना स्वाभाविक है। कवि हृदयों पर इसका असर अधिक होता है। इन्द्रजी ने अपने कार्य के औचित्य के समर्थन में उन कारणों को विस्तार से बताया, जिनके कारण वह कांग्रेस से त्याग-पत्र देने को विवश किये गये। त्याग-पत्र का अभिप्राय बताते हुए इन्द्रजी ने अपने विस्तृत वक्तव्य में कहा था :

"सबसे पहली बात जो मैं इस त्याग-पत्र के बारे में कहना चाहता हूँ, यह है कि यह त्याग-पत्र कांग्रेस के ध्येय या नियमों के विरोध में नहीं है। कांग्रेस के ध्येय के अनुसार अबतक कांग्रेस सोशलिस्ट, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट सभी कांग्रेस के चार आने के मेम्बर रहे हैं।

"अब तक कांग्रेस की चार आना सदस्यता (प्राइमरी मेम्बरी) के लिए इतना ही पर्याप्त समझा जाता रहा है कि राष्ट्रीय कार्य में शान्तिमय उपायों से काम लेने की प्रतिज्ञा की जाये। परन्तु इधर कुछ समय से महात्माजी कांग्रेस के ध्येय में विद्यमान शान्तिमय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शब्द की व्याख्या बहुत विस्तृत और कठोर रूप में पेश करने लगे हैं। वह अहिंसा का ऐसा व्यापक रूप पेश कर रहे हैं, जो अबतक किसी आचार्य ने पेश नहीं किया। बौद्ध और जैन धर्म भी आत्म-रक्षा के लिए की गयी हिंसा को पाप नहीं मानते। हमारे अन्य शास्त्र तो आत्म-रक्षा में हिंसा को धर्म मानते हैं। महात्माजी कुछ समय के कांग्रेस के सदस्य के लिए, जिस तरह की अहिंसा को अनिवार्य बतला रहे हैं, मेरा अनुभव है कि कांग्रेस के सदस्यों का ९९ फी सदी भाग, वैसी अहिंसा में विश्वास नहीं करता। महात्माजी सत्याग्रह के लिए जिस प्रकार की मानसिक, वाचिक और कायिक अहिंसा को आवश्यक समझते हैं, वह एक अस्वाभाविक वस्तु है। परन्तु महात्माजी को यह भ्रम है और इस भ्रम को पालने के लिए जहाँ महात्माजी उत्तरदाता हैं, वहाँ वे लोग उनसे भी बढ़कर उत्तरदाता हैं, जो महात्माजी की अहिंसा को न मानते हुए भी महात्माजी के अनुयायी बने हुए हैं। मेरा त्याग-पत्र ईमानदारी से बेईमानी का अवलम्बन न करने के कारण से है। जो व्यक्ति महात्माजी द्वारा की गयी शान्तिमय शब्दों की व्याख्या को न मानता हो, उसके सामने ईमानदारी का यही एक उपाय है कि वह अपनी सम्मति स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दे। मैंने वही किया है।

"महात्माजी ने दिल्ली कांग्रेस के अध्यक्ष को आदेश दिया है कि मतभेद मौलिक है, इस कारण मेरा त्याग-पत्र स्वीकार किया जाये। मैं इस स्वीकृति का यह अभिप्राय समझता हूँ कि मैं कांग्रेस के ध्येय में आये हुए "शान्तिमय उपाय" शब्द का यह अभिप्राय नहीं मानता कि आत्म-रक्षा में भी हिंसात्मक उपाय का प्रयोग नहीं हो सकता। इस कारण मैं तबतक के लिए कांग्रेस की मेम्बरी से अलग हो रहा हूँ, जबतक कांग्रेस 'शान्तिमय उपाय' और हिंसा-अहिंसा की उसी व्याख्या को अंगीकार करे, जो महात्माजी कर रहे हैं।

"ऐसी दशा में त्याग-पत्र स्वीकार हो जाने पर भी मैं अपने को उतना ही ठेठ कांग्रेसी मानता हूँ, जितना इससे पूर्व था। मेरा मतभेद कांग्रेस की उस व्याख्या से है, जो इस समय महात्माजी द्वारा की जा कर व्यवहार में स्वीकृत की जा रही है।

"इस त्याग-पत्र का, जिसे त्याग-पत्र नाम नहीं, अपितु प्रतिवाद नाम दिया जाये, तो अधिक उचित होगा।"

कांग्रेस का सदस्य न रहने की हार्दिक व्यथा यहाँ स्पष्ट है। त्याग-पत्र शब्द की जगह 'प्रतिवाद' शब्द का प्रयोग बताता है कि प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कांग्रेस से भौतिक सम्बन्ध कुछ काल के लिए छूट जाने पर भी आत्मिक सम्बन्ध बनाये रखा। यह आत्मिक सन्तोष के लिए काफी नहीं था। आत्मरक्षा के वास्ते हिंसात्मक उपाय का प्रयोग उचित है, यह बात मनवाने का वह बराबर प्रयत्न करते रहे। लेकिन इसमें उन्हें महात्मा गांधी के जीवित रहते सफलता नहीं मिली।

यहाँ एक अद्भुत योगायोग दिखायी देता है। चौराचौरी काण्ड के बाद गांधीजी ने समिति से इस्तीफा दे दिया था, और प्रेजीडेण्ट पटेल के आग्रह करने पर भी न लौटाया था। गांधीजी की राजनीति से स्वामीजी के सहमत न होने के कारण स्वामीजी को इस्तीफा देना पड़ा था। इधर पुत्र को भी गांधीजी की अहिंसा की व्याख्या स्वीकार न होने के कारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कांग्रेस की चवन्नी मेम्बरी से भी इस्तीफा देना पड़ा । इससे यह विदित होता है कि स्वतन्त्रचेता और स्वाधीन मनोवृत्ति के व्यक्ति के लिए सार्वजनिक जीवन और सार्वजनिक संस्थाओं में स्थान नहीं है । यह देश के सार्वजनिक जीवन की एक उग्र टीका मानी जायेगी । परन्तु यह कटु सत्य है । महात्माजी ने दिल्ली कांग्रेस कमेटी को पण्डितजी का त्याग-पत्र स्वीकार करने का परामर्श देते हुए कहा था, कि यह मौलिक मतभेद है । गांधीजी का यह विचार नया था, या पुराना, यहाँ यह एक प्रश्न उत्पन्न हो जाता है । इसी अहिंसा के प्रश्न पर सीमान्त गांधी ने कार्य-समिति से त्याग-पत्र दे दिया था, लेकिन सीमान्त गांधी के सिवाय और किसी ने भी इस प्रश्न पर गांधीजी का साथ न दिया था । स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेस अहिसा की उस व्याख्या को नहीं मानती थी जो गांधीजी करते थे । यह जानते हुए भी महात्माजी ने इन्द्रजी का इस्तीफा स्वीकार करने की सलाह दी । यह उचित प्रतीत नहीं होता । गांधीजी की अहिंसा की व्याख्या भी व्यक्तियों के अनुसार बदलती रहती थी । इस बात को ध्यान में रखते हुए इन्द्रजी के साहस का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है । अपने राजनीति जीवन के भविष्य को आग लगाकर पण्डितजी ने चवन्नी सदस्यता से त्याग-पत्र दिया था । इन्द्रजी उस वातावरण में रहने के अभ्यस्त नहीं थे, जहाँ ढोंग हो, छल हो और न्याय का अभाव हो ।

इस प्रश्न को इन्द्रजी ने फिर दिसम्बर १९४५ में उठाया । तब दूसरा महायुद्ध समाप्ति पर था । कांग्रेस के नेता जेलों से बाहर आ चुके थे । लार्ड वेवल के साथ कांग्रेस की समझौता-बातचीत चल रही थी । अतः यह समय इस प्रश्न पर विचार करने के अनुकूल था । पण्डितजी ने 'वीर अर्जुन' में २६ सितम्बर १९४५ को "कांग्रेस के अहदनामें में परिवर्तन की आवश्यकता" इस शीर्षक से दो कालम का अग्रलेख लिखा । यह लेख पण्डितजी के पाँच साल के विचार-मंथन का फल था और यह उस समय के भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी की मनःस्थिति पर प्रकाश डालता है । अतः यहाँ उसे अविकल रूप से देना ठीक है ।

"कांग्रेस का वर्तमान ध्येय या उद्देश्य, जो उसके प्रति प्रतिज्ञा-पत्र के अन्तर्गत है, भारतवासियों को सब उचित और शान्तिमय साधनों से स्वराज्य प्राप्त कराता है । समय आ गया है कि इस उद्देश्य के शब्दों में परिवर्तन करके कांग्रेस के उद्देश्यवाली धारा में इसे निम्नलिखित रूप दे रखा जाये ।" कांग्रेस का उद्देश्य भारतवर्ष में भारतवासियों का स्वराज्य स्थापित करना है ।

"उद्देश्यवाली धारा का यह रूप हो जाने पर इस धारा में केवल धारा का निर्देश रह जायेगा, साधनों का नहीं । परिवर्तन क्यों आवश्यक है ? इस प्रश्न के उत्तर में मेरा निम्नलिखित निवेदन हैं कि विचारों की स्पष्टता और व्यवहार की सुगमता के लिए यह आवश्यक है कि कांग्रेस के ध्येय और उसके प्राप्ति के उपायों को पृथक्-पृथक् रखा जाये । यह बात किसी से छिपी नहीं है कि ध्येय के विषय में सभी कांग्रेसी सहमत हैं, उपायों के सम्बन्ध में नहीं । उपायों के सम्बन्ध में सदा मतभेद रहे हैं और रहेंगे । उन मतभेदों में अन्तिम निर्णय देश के प्रतिनिधियों का बहुमत प्रगट करता रहा है और आगे भी करता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रहेगा। ध्येय के सम्बन्ध में अब कोई मतभेद नहीं रहा। उस अनन्य लक्ष्य को जितनी स्पष्टता से सब विवादग्रस्त विषयों से अलग रखा जाये, उतना अच्छा है।

"कांग्रेस का उद्देश्य या ध्येय भारतवर्ष में भारतवासियों के पूर्ण स्वराज्य की स्थापना करना है। इस उद्देश्य से देश के प्रतिनिधि कांग्रेस के वृहद् अधिवेशन में एकत्र होकर निश्चय करते हैं कि उद्देश्य की प्राप्ति किन उपायों से की जाती है। बहुमत से जो कार्यक्रम बनता है, कांग्रेस उसकी पूर्ति में लग जाती है और देशवासी कांग्रेस के आदेश को प्राप्त करके उसी को अपना मार्गदर्शक बनाते हैं।"

"गत २५ वर्षों में कांग्रेस की बागडोर महात्मा गांधी के हाथों में रही है। उन वर्षों के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो आपको प्रतीत हो जायेगा कि कांग्रेस के ध्येय ने देश के भिन्न-भिन्न विचार रखनेवाले निवासियों को एक सूत्र में बाँध रखा है। उपायों के सम्बन्ध में बहुत-से मौलिक मतभेद होते रहे हैं और आज भी हैं। एक कांग्रेसी का धारा-सभाओं के कार्यक्रम पर विश्वास है, दूसरे का नहीं है। किसी की केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर आस्था है, दूसरा उसे गौण स्थान देता है। इस प्रकार के मतभेदों के रहते हुए भी हमारा ध्येय ही है, जो हमें एक शृंखला में बाँधे हुए है। ध्येय स्थिर वस्तु है, साधन बदलते रहते हैं। यह मानना आवश्यक है कि विचारों की स्पष्टता के लिए ध्येय को बिलकुल अलग उसके विशुद्ध रूप में रखा जाये। यदि ध्येय और उपाय को एक-दूसरे से उलझा दिया जाये, तो सर्वसाधारण के विचारों में ऐसी गड़बड़ पैदा हो जाती है कि वह किसी भी राजनीतिक समस्या को उसके शुद्ध रूप में न देखकर रंगीन ऐनक की तरह रंगीन रूप में ही देखते हैं। इस उलझन से बचने का एक ही उपाय है कि कांग्रेस की नियमावली की प्रथम धारा में केवल 'ध्येय' का निर्देश हो, उपायों का नहीं।

"कांग्रेस की नियमावली की प्रथम धारा में परिवर्तन की आवश्यकता और भी एक कारण से है। कांग्रेस के उद्देश्य में अहिंसा का समावेश इस आधार पर किया गया था कि कांग्रेस ने महात्मा गांधी के अहिंसावाद को स्वीकार कर लिया है। कांग्रेस के गुजरे ६ वर्षों का इतिहास बताया है कि यह अर्थ ठीक नहीं था। कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी और आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावों पर दृष्टि डालें तो प्रतीत होगा कि कांग्रेस देश की रक्षा के लिए हिंसात्मक उपायों के प्रयोग से सहमत होती रही है। १९४० में पूना में आलइण्डिया कांग्रेस कमेटी का जो अधिवेशन हुआ था, उसमें कांग्रेस ने महात्मा गांधी के अहिंसावाद को कोसों पीछे छोड़ दिया था। उससे स्पष्ट परिणाम निकलता था कि अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग कांग्रेस की व्यावहारिक नीति का अंग है, मूल सिद्धान्त नहीं। हम जानते हैं कि ९९ फी सदी से भी अधिक सदस्य अहिंसा को समयानुकूल व्यावहारिक नीति मानकर ही इसका समर्थन करते हैं। महात्माजी इस बात को जानते हैं और भाषणों तथा लेखों में प्रकट भी करते रहते हैं। ऐसी दशा में सत्य की दृष्टि से क्या यह आवश्यक नहीं कि अपने सर्वसम्मत ध्येय को व्यावहारिक परिवर्तनशील उपायों से अपने विशुद्ध रूप में संसार के सामने प्रकट किया जाये। कांग्रेस समय-समय पर अपने कार्यक्रम को दोहराती

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और आवश्यकतानुसार बदलती रहती है। उपायों की चर्चा उसके कार्यक्रम सम्बन्धी प्रस्ताव में ही होनी चाहिए।

"तीसरा कारण, जिसने कांग्रेस की प्रथम धारा में तबदीली आवश्यक कर दिया है, और यदि वह शीघ्र-से-शीघ्र न की जाये तो बाहर की दुनिया के सामने कांग्रेस की स्थिति सर्वथा उपहास के योग्य बनी रहेगी। इस समय कांग्रेस ने आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों की सफाई का काम अपने जिम्मे लिया है। कांग्रेस देश की आवाज है, देश का बच्चा-बच्चा आजाद हिन्द फौज के नेताओं और सिपाहियों की पूजा कर रहा है। उनकी रक्षा के लिए उतावला है, और कोई बात सुनने को तैयार नहीं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आजाद हिन्द फौज और उसके नेता की कार्यनीति से देशवासी सहमत हैं? और यदि यह सच है तो यह मान लेना चाहिए कि देश स्वराज्य प्राप्ति के उपायों को केवल अहिंसात्मक उपायों तक परिमित रखने के पक्ष में नहीं है। इस समय कांग्रेस एक अजीब परस्पर-विरोध का शिकार बनी हुई है। वह स्वराज्य प्राप्ति के लिए चेवल अहिंसात्मक उपायों को उचित समझती है, और साथ ही आजाद-हिन्द फौज के गिरफ्तार हुए कैदियों की सफाई का प्रयत्न कर रही है। वह सफाई क्या है? यही तो कि स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए हथियार उठाने और लड़ने के अधिकारों के प्रयोग का अधिकार मनुष्यमात्र को है। आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों ने उसका प्रयोग किया है, इस कारण वे निर्दोष हैं। यदि वे निर्दोष हैं, तो कांग्रेस की प्रथम धारा में परिवर्तन आवश्यक है। और यदि परिवर्तन आवश्यक नहीं है, तो कांग्रेस का वर्तमान कार्य केवल एक दिखावा मात्र है। असली बात यह है कि कांग्रेस का आजाद हिन्द फौज के प्रति वर्तमान व्यवहार सर्वथा उचित है और देश के लोकमत का असली प्रतिबिम्ब है। ऐसी दशा में यदि कांग्रेस संसार की दृष्टि में उपहासास्पद और देशकी दृष्टि में हल्की नहीं होना चाहती, तो उसे अपनी प्रथम धारा को दिल्ली के वृहद् अधिवेशन में बदल देना चाहिये।'

अहिंसा और हिंसा के प्रश्न को इन्द्रजी ने यहीं समाप्त कर दिया।

मेरठ कांग्रेस के मौके पर सरदार पटेल ने कहा था—"तलवार का जवाब तलवार से दिया जायेगा।" सरदार पटेल के इस कथन का स्वागत करते हुए इन्द्रजी ने ३० दिसम्बर १९४६ को 'वीर अर्जुन' के अग्रलेख में लिखा :

"महात्मा गांधी के नेतृत्व को माननेवाली कांग्रेस सदा 'ओं शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!' का उच्चारण ही करती रही है। यह पहली बार है कि कांग्रेस की व्याख्यान वेदी पर से शौर्य की ललकार सुनी गयी है। जिन लोगों पर काल्पनिक शान्ति का गहरा असर हो चुका है, वह सरदार पटेल के वाक्य से आश्चर्य में पड़ गये हैं। इधर अटल अहिंसावादियों को सरदार की घोषणा अच्छी नहीं लगी है, और उधर नरम उत्तरों की अभ्यस्त मुस्लिम लीग के कानों पर वह वज्र के समान गिरी है। इन दो समुदायों को छोड़ दें तो शेष सब देशवासियों को सरदार पटेल की ललकार से आश्वासन और जीवन का सन्देश मिला है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"मैं पच्चीस वर्षों से कट्टर कांग्रेसी होता हुआ भी महात्मा गांधी की अहिंसा को अधूरा और अव्यावहारिक मानता रहा हूँ। अपने इस मतभेद को मैं बीच-बीच में सर्वथा स्पष्ट रूप से प्रकाशित भी करता रहा हूँ। इसी मदतभेद के कारण एक बार मैंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया था, किन्तु जब मेरे त्याग-पत्र का प्रश्न महात्माजी के सामने रखा गया तो बहुत विचार-विमर्श के बाद महात्माजी ने यह व्यवस्था दी थी कि ऐसी दशा में मुझे कांग्रेस का सदस्य रहने दिया जा सकता है। तब से मैं निरन्तर कांग्रेस का सदस्य हूँ। महात्माजी की व्यवस्था के अनन्तर मैंने पहली बार कांग्रेस की मेम्बरी का जो फार्म भरा था, उसमें मैंने निम्नलिखित शब्द लिख दिये थे––"मैं मानता हूँ कि आत्म-रक्षा में बल-प्रयोग करना वर्जित नहीं।

"मेरा सदस्यता का यह प्रार्थना-पत्र उस नोट के साथ स्वीकार किया गया था और शायद वह अब तक स्थानीय कांग्रेस कमेटी की फाइल में होगा।

"मैं कांग्रेस का सदस्य तो बन गया, परन्तु मुझे चिन्ता रही कि कहीं मेरे मन्तव्य के सम्बन्ध में कोई भ्रमात्मक विचार न फैल जाये। इस आशंका के निवारण के लिए मैंने "जीवन संग्राम" नाम से एक छोटी-सी पुस्तक लिखी; जिसमें हिंसा-अहिंसा की विवेचना करके यह दिखाने का यत्न किया कि निर्बल पर अत्याचार करना जितना बड़ा पाप है, आततायी को दण्ड न देना उससे से भी बड़ा पाप है। जो व्यक्ति या जाति आतताई की तलवार का जवाब तलवार से नहीं देती, वह पराजय से भी तो नष्ट ही हो जाती है और यदि किसी कारण से नष्ट होने से बच गयी, तो दासता की जंजीरों में जकड़ी जाती है। यह सर्वसम्मत बात है कि दासता विनाश से भी अधिक कुत्सिल और लज्जाजनक वस्तु है।

"मेरठ कांग्रेस के मंच पर से सरदार पटेल ने जो वीर घोषणा की है, वह इस समय अत्यन्त आवश्यक है। जिन देश भक्तों ने भारत-भूमि की स्वाधीनता के लिए अनेक कष्ट सहे हैं और अब भी सहने को उद्यत हैं, उन्हें यह जानकर हर्ष हुआ है कि जिस स्वाधीनता को वे प्राप्त करने में लगे हैं, उसकी मजबूत हाथों से रक्षा की जायेगी। यही कारण है कि इस आवश्वासन का स्वागत हुआ है––तलवार का जवाब तलवार से दिया जायेगा।"

देश आज जिस परिस्थिति में है, और जिसमें से गुजर रहा है, वह भी इस बात की अपेक्षा करती है कि देश तलवार का जवाब तलवार से दे, इस दृष्टि से पण्डित इन्द्र विद्या-वास्चपति के विचार न केवल सामयिक ही हैं, बल्कि बहुत उपयोगी भी हैं।

हिंसा-अहिंसा के शास्त्रीय विवाद में अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए इन्द्रजी ने 'जीवन संग्राम' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक के प्रारम्भ में "विजय रहस्यम्" नाम से इन्द्रजी ने ११ श्लोक लिखे हैं, इन श्लोकों में से नीचे तीन दिये जा रहे हैं। इनसे भी इन्द्रजी के जीवन के प्रति दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण होता है।

"सबला एव जीवन्ति, विलीयन्ते तु निर्बला।
व्यापको नियमो दृष्टो जीवेष्वेष सनातनः।।"
"युद्धेन योग्यो जयति, क्लीवो युद्धेन नश्यति।
तस्माद् युद्धे तुलादण्डे, साफल्यमुच्यते बुधैः।।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन श्लोकों में अन्तर्निहित सिद्धान्तों से ही सबल जीवित रहते हैं, निर्बल नष्ट हो जाते हैं। युद्ध के कारण योग्य जीवित रहते हैं और नपुंसक नष्ट हो जाते हैं। राष्ट्रों का तुलादण्ड युद्ध है यही व्याख्या 'जीवन संग्राम' में की गयी है।

सच्चाई यह है कि जातियों में व्यक्तित्व को उन्नत करने का मुख्य निमित्त जीवन-संग्राम या युद्ध ही है। 'सोना आग में पड़कर चमकता है, कस्तूरी की महक पत्थर पर घिसने से फैलती है।' यह कोरी कहावत ही नहीं है, इसके पीछे एक बहुत जबरदस्त सच्चाई छिपी हूई है।

वह सच्चाई यह है कि जो जाति देर तक अटूट शान्ति और सुरक्षा में पड़ी रहे, वह केवल समूह रूप से ही नहीं प्रत्युत व्यक्तिगत रूप से भी प्रमादी, विलासी, आरामपसन्द और निर्बल हो जाती है। जीवन-संघर्ष ही जातियों को बलवान बनाता है, और वही व्यक्तियों के कार्य का परिस्कार करता है।

युद्ध क्या पाप है? इसके उत्तर में इन्द्रजी का स्पष्ट अभिमत सर्वथा युक्ति-युक्त और प्रेरणादायी है, और देश की वर्तमान परिस्थिति में मार्गदर्शक है। इन्द्रजी की मान्यता थी—"राजनीतिक जगत में भी यदि भले और बुरे को पहचानने की कसौटी प्राकृतिक भावनाओं की उपेक्षा करके बना ली जाये तो उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। स्पष्टता या अभिव्याप्ति मानवीय वस्तु है, राक्षसी नहीं। जैसे स्त्री को बच्चे की चाह होती है, उसी प्रकार हृदय रखनेवाले मनुष्य को बढ़ने की चाह रहती है। वह आगे बढ़ना चाहता है, नाम कमाना चाहता है, शक्ति सम्पन्न होकर दूसरों से बड़ा बनने की हविस रखता है। इसे महत्वाकांक्षा कहते हैं। इसी का रूपान्तर उन्नति की अभिलाषा है।

"जिस व्यक्ति में जीवन-शक्ति है, वह आगे बढ़ना चाहता है। इसी प्रकार जो जाति जीवित है, वह भी आगे बढ़ना चाहती है। दो व्यक्तियों या दो जातियों में आगे बढ़ने की जो होड़ पैदा होती है, उसी का नाम प्रतिस्पर्धा है। मनुष्य-जीवन के हर एक पहलू में प्रतिस्पर्धा जीवन की संगिनी बनकर चलती है। केवल वहीं प्रतिस्पर्धा नहीं है, जहाँ जीवन का अभाव है। प्रतिस्पर्धा जीवन का चिह्न है। यह जब क्रिया रूप में आती है, तब उसे जीवन-संघर्ष या जीवन-संग्राम का नाम दिया जाता है।

"यह मानी हुई बात है कि उत्तम प्रतिस्पर्धा उन्नति की माता है। एक दूसरे से अधिक विद्वान्, अधिक धनी और अधिक शक्तिसम्पन्न होने की इच्छा व्यक्तियों तथा जातियों को असाधारण गति से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। जातियों के अन्तर्गत व्यक्तियों की परिमित प्रतिस्पर्धा से जैसे जाति के सामूहिक धन, ज्ञान और प्रभाव की वृद्धि होती है, इसी प्रकार पृथ्वी पर जातियों की आपसी नियमित प्रतिस्पर्धा से मनुष्य-जाति की सामूहिक उन्नति अवश्यम्भाविनी है।

"राष्ट्रों की इस प्रतिस्पर्धा में संघर्ष का उत्पन्न होना सम्भव है। वह संघर्ष युद्ध के रूप में परिणत हो जाये यह भी सम्भव है। केवल इस कारण से कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कहीं युद्ध न छिड़ जाये प्रतिस्पर्धा को रोका नहीं जा सकता। युद्ध अपने आप में कोई बुरी चीज नहीं है। यदि अच्छे उद्देश्य से लड़ा जाये, तो युद्ध मनुष्य जाति की उन्नति के लिए एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु है।

"वह महत्वाकांक्षा, जो मानवीय उन्नति का मूल बीज है, राष्ट्रीय रूप में आकर युद्ध को जन्म देता है। युद्ध एक कसौटी है, जिसमें कसे जाकर राष्ट्र अपने असली रूप को प्रकट कर देते हैं। दो जातियाँ आपस में युद्ध करके यह फैसला कर लेती हैं, उनमें से जीवित रहने के योग्य कौन है ? युद्ध विधाता की तुला है, जो तौलकर बता देती है कि कौन-सा राष्ट्र उन गुणों के कारण भारी है, जो राष्ट्र जीवित रहने का अधिकारी बनाते हैं। यदि यह युद्ध संसार से उठ जाये, तो संसार केवल घास-फूस से भर जाये।

"महत्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा, आगे बढ़ने की इच्छा, आदि भिन्न नामों से प्रकट होनेवाली भावना से प्रेरित होकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करनेवाले राष्ट्रों में यदि युद्ध होता है, तो कोई अनर्थ नहीं है। वह मनुष्य जाति की जीवन-यात्रा का एक पड़ाव है। उसे केवल भावुकतापूर्ण आदर्शवाद से मिटाया नहीं जा सकता।

"इस जीवन संग्राम के मध्य खड़े होकर झूठी करुणा और नपुंसकतापूर्ण रक्षा की दुहाई देकर जो व्यक्तियों और जातियों को हथियार फेंकने की प्रेरणा करते हैं वे यथार्थ मार्ग-दर्शन नहीं करते। युद्ध-क्षेत्र से भागना कायरों का काम है। क्षेत्र में डटकर लड़ना वीरों का काम है। यह जीवन एक संग्राम क्षेत्र है। इसमें वही लोग जीवित रह सकते हैं और विजयी हो सकते हैं, जो झूठी भावुकता को दूर भगाकर जान की बाजी लगा देते हैं। यही युद्ध के विरुद्ध भावुकता-प्रधान युक्ति का उत्तर है। जिसे तुम दया कहते हो, राष्ट्र-भूमि में वह कायरता है, जिसे तुम करुणा के नाम से पुकारते हो, वह संघर्षकाल में आत्म-हत्या है। यही जीवन-संग्राम का मूल सिद्धान्त है।

"यह युक्ति कि किसी को मारना चाहें--वह आततायी ही क्यों न हो--हिंसा है, और हिंसा पाप है--सच्ची नहीं है। गीता में कहा है--जो समझता है, कि वह मारता है या मरता है, वे दोनों ही नासमझ हैं। यह (मनुष्य) न मारता है और न मरता है। इसका अभिप्राय है कि जो मरता है, वह शरीर है परन्तु चेतन मनुष्य शरीर से सर्वथा भिन्न है। उसे आत्मा कहते हैं। वह न मरता है और न मारता है। मारने और मरने की परिभाषा उन लोगों की बनायी हुई है, जो जीवन के रहस्य को नहीं जानते। आत्मा अमर है, वह मर नहीं सकता। जब कोई मरता ही नहीं, तो मारनेवाला कौन ? मरने-मारने की परिभाषा नासमझों की बनायी हुई है।

"अत्याचारी और दस्यु अपने कर्मों से अपने आप ही मर जाते हैं। युद्ध में उन्हें पराजित करनेवाला योद्धा तो निमित्त मात्र होता है। पापियों को दण्ड देने और मारने से कोई पाप नहीं लगता। इसके विपरीत यदि अत्याचारी और दस्यु को उसके कुकर्मों का दण्ड न देने और मारने से कोई पाप नहीं लगता। इसके विपरीत यदि अत्याचारी और दस्यु को उसके कुकर्मों का दण्ड न दिया जाये, और उसके हाथ से बलात्कार द्वारा प्राप्त की हुई विभूति न छीन ली जाये तो उन व्यक्तियों को पाप लगता है, जो शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होते हुए भी रक्षा नहीं करते। अत्याचार करना जितना बड़ा पाप है, अत्याचार को सहना उससे भी बड़ा पाप है। क्योंकि अत्याचार करनेवाला इसी कारण अत्याचार कर सकता है कि कमजोर आदमी अत्याचार को बर्दाश्त करता है।"

इन्द्रजी के ये विचार इस बात का प्रमाण है कि देश का विचारक वर्ग गांधीजी की अहिंसा की परिभाषा से सहमत नहीं था, किन्तु एक मात्र इन्द्रजी ने ही उसका सार्वजनिक रूप से विरोध करने का साहस किया। सचाई और ईमानदारी का यह आदर्श अपने आप में एक अनुकरणीय उदाहरण है। सत्य-व्यवहार का किस चरम-सीमा तक इन्द्र जी परिपालन करते थे, उसका यह एक अन्यतम उदाहरण है।

आर्य समाज के क्षेत्र में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का जो वार्षिक अधिवेशन अक्तूबर १९४१ में हुआ, उसमें अधिवेशन में भारी क्रान्ति हो गयी। सभा ने सभा के पुराने प्रधान दीवान बहादुर बद्रीदास और उपप्रधान श्री पं० विश्वम्भरनाथजी का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और उनकी जगह श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार (अब स्वामी समर्पणानन्दजी) को प्रधान और पं० ज्ञानचन्द्र और प्रो० इन्द्र विद्यावास्चपति को उपप्रधान चुना। इसका अर्थ था कि सभा के संचालन का सारा भार और उत्तरदायित्व उपदेशकों और स्नातकों के हाथ में आ गया। गुरुकुल दल की सत्ता स्वीकार ही नहीं की गयी, सभा पर उसकी पूर्ण रूप से प्रभुता व्याप्त हो गई। किन्तु यह दल अधिक देर टिका नहीं। क्यों नहीं टिका, इसके कारणों की छानबीन करने की यहाँ इस समय आवश्यकता नहीं है। क्योंकि कुछ ही दिनों बाद सभा के प्रधान पुनः दीवान बद्रीनाथ जी हो गये। उस समय गुरुकुल के आचार्य का पद रिक्त था। पण्डितजी ही मुख्याधिष्ठाता और आचार्य, इन दोनों पदों का कार्य करते थे। लेकिन पण्डितजी गुरुकुल कांगड़ी सदा नहीं रहते थे। रहते दिल्ली में थे, आवश्यकतानुसार गुरुकुल चले जाया करते थे। यह व्यवस्था आदर्श नहीं थी। आचार्य की आवश्यकता थी परन्तु पण्डितजी की कल्पना में यह बात कभी नहीं आयी थी कि सभा के प्रधान ही आचार्य बनने की महत्वाकांक्षा भी रखते हैं। इस विषय में पण्डितजी और सभा के प्रधान के मध्य में कोई बात भी नहीं हुई थी। अतः २४ अक्तूबर १९४२ को लाहौर में हुई सभा में श्री रामेश्वर के प्रस्ताव पर पं० बुद्धदेव विद्यालंकार को आचार्य चुना गया। इन्द्रजी के लिए यह एक आकस्मिक घटना थी। इन्द्रजी सभा के उपप्रधान थे और इस नाते गुरुकुल कांगड़ी का कार्य देखते थे। स्थिति विचित्र थी। वैधानिक कठिनाइयाँ थीं। सभा का प्रधान ही गुरुकुल का आचार्य था। वह प्रधान था प्रतिनिधि सभा में, मगर गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता व सभा के उपप्रधान पद इन्द्रजी के आधीन थे। एक व्यक्ति के एक ही समय एक ही संस्था में अनेक पद लेने से कार्य में जहाँ गड़बड़ी आती है, वहाँ अकारण संघर्ष भी पैदा होता है। इस संघर्ष को बचाने के लिए, गुरुकुल के आचार्य से यह सुनने पर कि 'क्या यह अच्छा न होगा कि आप गुरुकुल से अलग हो जायें? इन्द्रजी के मन पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसे आपने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"मैंने दो दिन विचार के अनन्तर यह लिखकर त्याग-पत्र दे दिया --आप (बुद्धदेवजी) प्रधान और आचार्य दोनों हैं, इस कारण तब तक मैं मुख्याधिष्ठाता नहीं रह सकता, जब-तक यह वैधानिक कठिनाई दूर न हो।"

यह त्याग-पत्र ८ नवम्बर १९४८ को दिया गया और इसी रात पण्डितजी को तीव्र उदर शूल ने आ घेरा। तीन सप्ताह तक घोर कष्ट हुआ। बहुत निर्बल हो गये। डाक्टर के० एन० बोस का इलाज था। श्रीमती चन्द्रवती की परिचर्या से इन्द्रजी को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हुआ। स्वस्थ होने पर इन्द्रजी का हृदय कृतज्ञता से पूर्ण था। उन्होंने डायरी में लिखा है--"प्रिय चन्द्रवती ने मेरी अनन्य परिचर्या की। उसे मैं नहीं भुलाऊँगा।"

बीमारी से इन्द्रजी उठे ही थे, और दफ्तर में बैठने लगे थे कि गुकुल से पण्डित बुद्धदेवजी का बुलावा आया और उनको सूचना दी कि गुरुकुल की दशा अति गम्भीर है। इन्द्रजी गुरुकुल जाने को बाध्य हुए। १२ जनवरी १९५२ तक वहाँ रहे।

उधर गुरुकुल की स्थिति चिन्ताजनक थी, इधर 'वीर अर्जुन' प्रेस और साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' से पन्द्रह-पन्द्रह सौ की दो जमानतें माँगी गयीं। साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' बन्द कर दिया गया। परन्तु प्रेस की पन्द्रह सौ रुपये की जमानत दाखिल कर दी गयी। दैनिक 'वीर अर्जुन' १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कुछ मास बन्द रहकर पुनः प्रकाशित होने लगा था। इससे प्रेस को चालू रखना अनिवार्य था। दिल्ली के अन्य दैनिक भी दिसम्बर से प्रकाशित होने लगे थे, जिन्होंने कुछ मास के वास्ते प्रतिवाद स्वरूप अपना प्रकाशन स्थगित किया था।

सम्पादक सम्मेलन

युद्ध और 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के कारण सरकार की ओर से पत्रों पर अनेक तरह के प्रतिबन्ध लगाये गये थे। ये प्रतिबन्ध समाचारों के प्रकाशित होने तक से सम्बन्ध रखते थे। प्रेस की स्वाधीनता संकट में थी। इस संकट के निवारणार्थ आवश्यक उपायों पर विचार करने के लिए दिल्ली में एक अखिल भारतीय सम्पादक-सम्मेलन बुलाने की योजना की गयी। इस सम्मेलन के आयोजकों में तीन व्यक्ति मुख्य थे : श्री देवदास गांधी (अंग्रेजी), श्री देशबन्धु गुप्त (उर्दू) और प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति (हिन्दी)। यह सम्मेलन स्टेट्समेन के सम्पादक श्री आर्थरमूर की अध्यक्षता में हुआ। इसका दूसरा अधिवेशन भी दिल्ली में बाम्बई क्रानिकल के सम्पादक श्री ब्रेलवी की अध्यक्षता में हुआ। 'आल इण्डिया एडिटर्स कांफ्रेन्स' की नींव इसी समय पड़ी। वह आजतक जारी है। इस पर अंग्रेजी का प्रभुत्व था। देशी भाषाओं के पत्रों का इसमें कोई स्थान नहीं था। अतः इन्द्रजी ने हिन्दी पत्रकार-सम्मेलन बुलाने का संकल्प किया। इसकी स्वागत-समिति के आप ही अध्यक्ष चुने गये और दैनिक 'विश्वमित्र' के संचालक श्री मूलचन्द अग्रवाल की अध्यक्षता में हिन्दी पत्रकार सम्मेलन भी हुआ। इसमें केवल सम्पादक मात्र सम्मिलित नहीं हुए थे। हिन्दी पत्रों के संचालक और सहायक सम्पादक भी सम्मिलित हुए थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य समाज गुरुकुल, और (वीर अर्जुन) का कार्य करते हुए और रोग से लड़ते हुए भी सरकार से टक्कर लेने में इन्द्रजी पीछे नहीं रहे। उससे लड़ने और मोर्चा लेने का मौका ढूंढ़ते रहते थे।

एक बार जब 'वीर अर्जुन' का अग्रलेख लिखी रहे थे कि एक सज्जन इन्द्रजी के पास आये। उन्होंने कहा कि बस, आप इस कागज पर दस्तख़त कर दीजिये, इसके कारण आप पर किसी प्रकार की जिम्मेदारी न आयेगी। आपका नाम मिल जाने से मेरी कम्पनी के शेयर सरलता से बिक जायेंगे और कम्पनी चल निकलेगी। पण्डितजी ने यह जानकर कि उन पर रुपये पैसे की कोई जिम्मेदारी न आयेगी, उस कागज पर दस्तख़त कर दिये और इस घटना को भी भूल गये। इधर यह कम्पनी चली। कम्पनी ने कुछ वर्षों तक चलने के बाद अपना दिवाला निकाल दिया। पण्डितजी को इस कम्पनी की वार्षिक रिपोर्ट भी कभी नहीं मिली थी। सहसा उनको लिक्विडेटर का नोटिस आ गया, कि बकाया रकम भरें। इन्द्रजी भारी चक्कर में फँस गये।

सार्वदेशिक के मन्त्री और गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और गुरुकुल कांगड़ी में चल रहा संघर्ष भी वहीं तक सीमित नहीं रहा। वह सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तक भी पहुँचा। विरोधियों द्वारा गड़बड़ी मचाने का यत्न करने पर भी "निर्वाचन शानदार शान्ति से हुआ।" इन्द्रजी २८ मार्च १९४३ के अधिवेशन में सर्वसम्मिति से सार्वदेशिक सभा के मन्त्री चुने गये।

इन्द्रजी के प्रतिस्पर्धी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा में ही पराजित नहीं हुए, बल्कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के निर्वाचन में भी परास्त हुए। इन्द्रजी यहाँ पुनः सभा के उपप्रधान और गुरुकुल कांगड़ी के अस्थायी रूप से मुख्याधिष्ठाता और आचार्य चुने गये। २९ मई १९४३ से पण्डितजी का गुरुकुल के साथ पुनः विधिवत सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस समय जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, वह जीवन पर्यन्त कायम रहा। ये १७ वर्ष पण्डितजी के गुरुकुलीय जीवन के भी हैं, और दिल्ली जीवन के भी हैं। जीवन की मुख्यधारा राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ चलती रहकर भी दिल्ली और गुरुकुल में विभक्त रही। एक का केन्द्र कांग्रेस थी और दूसरी का आर्य-समाज। कांग्रेस और आर्य-समाज के मध्य संतुलन रखते हुए जीवनधारा को ले जाना सरल कार्य नहीं था। वह अनेक प्रयोगों को जन्म देनेवाला था, संशयों को उत्पन्न करनेवाला था। इन्द्रजी दोनों के मध्य पुल होकर रहे, इस असाधारण समन्वय का श्रेय उनकी सन्तुलित बुद्धि, अत्यधिक गम्भीर स्वभाव और अपूर्व धैर्य को है। नीतिकार का कहना है :—

"नरपति हित कर्मा द्वेष्यतां याति लोके
जनपद हित कर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रः
इति महति विरोधे विद्यमाने सदाते
नृपति-जन पदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥"

कांग्रेस प्रशासन और जनता, दोनों से एक समान भाव से सम्मानित होना इस समय भी साधारण बात नहीं थी। कांग्रेस क्षेत्र में आर्य-समाजी को जिस संशय से देखा जाता है,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसको अनुभवी ही जानते हैं। इस दशा में पण्डितजी का दोनों धाराओं में प्रवाहित होते हुए जीवन बिताना अत्यन्त आश्चर्यजनक था।

इन्हीं दिनों उन्होंने कई अन्य प्रवृत्तियों में भी भाग लिया। उनमें से एक हिन्दी पत्रकार-सम्मेलन भी था।

हिन्दी पत्रकार-सम्मेलन

अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार सम्पेलन का दूसरा वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इसके सभापति पण्डितजी चुने गये। दैनिक पत्रों के सम्पादकों और संचालकों में पण्डितजी का सर्वोच्च स्थान था। १९१८ के अन्त में आप ने ही सर्वप्रथम हिन्दी दैनिक का प्रकाशन किया था। उस समय केवल 'विश्वमित्र' और 'भारत मित्र' ही एक मात्र दैनिक पत्र हिन्दी जगत् में थे। 'भारत मित्र' पंचम जार्ज के समय दैनिक हुआ था और वह तब से चल रहा था। प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर हिन्दी में अनेक दैनिक निकले। 'कलकत्ता-समाचार,' 'अभ्युदय' और 'श्री वैंकटेश्वर समाचार' उनमें प्रमुख थे। परन्तु इन तीनों में से कोई स्थायी नहीं हुआ। छपरा का 'नारद' दैनिक था, पर उसकी गिनती दैनिक पत्रों में नहीं की जाती थी। यह केवल विज्ञापनों से ही भरा रहता था। इन्द्रजी का स्थान हिन्दी पत्र-सम्पादकों में चोटी के पत्रकारों में भी सबसे आगे था। अतः आपके अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन के सभापति चुने जाने का सर्वत्र सोत्साह अभिनन्दन किया गया और माना गया कि अब हिन्दी पत्रकारों का स्थायी संगठन बन सकेगा। इसी आशा से सम्मेलन का कार्यालय उनके पास दिल्ली में रखने का निश्चय किया गाया।

रोगों से लड़ाई

यह कार्य तो गौण था। देश सेवा और गुरुकुल सेवा को उन्होंने जीवन का मुख्य कार्य बनाया था। लेकिन इन दोनों में अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता था। गुरुकुल का कार्य करने और ब्रिटिश सरकार के साथ लड़ने के अतिरिक्त इन्द्रजी को अपने रोगों से भी लड़ना पड़ता था। इस लड़ाई का वर्णन इन्द्रजी ने अपनी डायरी में निम्न प्रकार किया है—

"स्वास्थ्य सुधरा नहीं। एक साल से पर्वत पर जाने का प्रोग्राम बन रहा था, पर जाना नहीं हो सका था। अब गिरते स्वास्थ्य की रक्षा के लिए पहाड़ पर जाना और कुछ काल वहाँ ठहरना जरूरी हो गया।" पहाड़ पर जाने पर भी गुरुकुल की चिन्ता आपको सताती रहती थी।

अपने स्वास्थ्य के बारे में उन्होंने एक बार लिखा—

"इधर जेल की कृपा से मेरे पेट में गोले का दर्द भी बीच-बीच में उठने लगा था। १९४२ की देशव्यापी राज-क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में काम का जोर पड़ने और दिनचर्या में अव्यवस्था हो जाने के कारण मुझपर दोनों व्याधियों का इकट्ठा आक्रमण हो गया। पाचन शक्ति बहुत खराब हो गयी, और खांसी का प्रकोप बढ़ गया। फिर भी मैंने लिखने और बोलने का काम बन्द न किया। जिसका परिणाम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह हुआ कि १९४४ के अन्त में दोनों व्याधियों के सन्निपात में फँस गया। मैं चारपाई पर लेटा हुआ था, इस कारण मेरा शरीर रोग के दूसरे दिन से ही लेटा हुआ दवाखाना बनने लगा। रोग औषधियाँ और उनके प्रभाव मुझ पर ऐसे छा गये, जैसे आकाश पर आँधी छा जाती है। नींद, भूख और चैन सब विदा हो गये। कानों ने जवाब दे दिया। तीन दिन तक वहीं इलाज जारी रहा। इसी बीच कमर में सख्त दर्द होने लगा। तीन दिन और रात लगभग नींद के बिना ही गुजरी। फलतः मेरी दशा बहुत ही संकटपूर्ण हो गयी। एक बार तो अत्यन्त निर्बलता के कारण परिवार के लिए बहुत चिन्ता का अवसर आ गया था।"

इस लम्बी बीमारी से मुक्त होने पर प्रसन्न होना स्वाभाविक था। क्योंकि वे अनुभव करते थे "मेरी यह शारीरिक परीक्षा बहुत ही कड़ी थी। मेरा वर्ष भर में पुर्नजन्म हुआ है। वर्ष के मध्य तो मुझे प्रतीत होने लगा था कि मेरा क्रियात्मक जीवन समाप्त हो चुका अब केवल दिन काटना शेष है। परन्तु ईश्वर की कृपा हुई और पुनः सेवा योग्य हो गया। मेरी यह दृढ़ इच्छा है कि मैं अभी जीकर सार्वजनिक सेवा और निजकर्तव्यों का पालन कर सकूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि ईश्वर की दया के बाद मेरी पत्नी चन्द्रवती की सेवा और तत्परता ने ही मुझे उस परीक्षा में से उत्तीर्ण कर दिया। दिवंगत आत्मा की यह अभिलाषा थी कि मनुष्य सेवा द्वारा जनता का प्रिय बनूँ--वह पूरी हो, यही प्रार्थना है।"

आर्य-सम्मेलन : मुस्लिम लीग को चेतावनी

इन्हीं दिनों एक नयी दिशा का कार्य-भार इन्द्रजी के कंधों पर पड़ा।

मुस्लिम लीग की ओर से आर्य-समाज के मान्य-ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' पर पाबन्दी लगाने का भयानक और विषैला प्रचार किया जा रहा था। अतः इन्द्रजी की प्रेरणा और प्रस्ताव पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने डाक्टर श्यामप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में २०–२१–२२ फरवरी १९४४ को दिल्ली में आर्य सम्मेलन बुलाया। स्वागत-समिति के अध्यक्ष लाला नारायण दत्त ठेकेदार थे, और प्रधान मन्त्री इन्द्रजी थे। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री के नाते आप इस आयोजन का प्रबन्ध कर रहे थे। इस सम्मेलन में श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय के प्रस्ताव और प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुमोदन और गोस्वामी गणेशदत्त महन्त के समर्थन से निम्न आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

"अखिल भारतीय आर्य-महासम्मेलन का यह अधिवेशन बड़ी गम्भीरता से अनुभव करता है कि मुस्लिम लीग की ओर से (जो कि अपने को राजनीतिक संस्था कहती है) हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने का संगठित प्रयत्न किया जा रहा है। 'सत्यार्थ प्रकाश' का विरोध इस आन्दोलन का आरम्भ मात्र है। 'सत्यार्थ प्रकाश' में लाखों मनुष्य वैसी ही श्रद्धा और भक्ति रखते हैं, जैसे किसी अन्य धर्मग्रन्थ के प्रति उसके अनुयायिओं की होती है। यह ग्रन्थ विगत ६० वर्ष से (अब ९१ वर्ष से) जनता के समक्ष है। इसका भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन हो चुका है। और सर्वथा मुक्त भाव से इसका देश भर में प्रचार होता रहा है। आर्य-सभाओं के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्सवों पर यह सभी व्याख्यानों का विषय रहा है। आर्य संत्सगों और संसर्ग में इसका नित्य पाठ होता रहा है। परन्तु देशवासियों के किसी भाग की ओर से उस पर आपत्ति नहीं उठायी गयी।"

इस लम्बे प्रस्ताव के अन्तिम भाग में कहा गया था—"यह सम्मेलन स्पष्ट घोषणा करता है कि सामान्यतः समस्त हिन्दू-जगत् और विशेषतः आर्य-समाज अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए कोई कसर उठा न रखेगा। और अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए उद्यत रहेगा।

"इस सम्मेलन की धारणा है कि मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य यह है कि सरकार और आर्य-समाज एवं हिन्दुओं तथा मुसलमानों के मध्य में गहरा विरोध उत्पन्न हो जाये। इस सम्मेलन का विचार है कि मुस्लिम लीग अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य विफल होगी।"

प्रस्ताव की भाषा और इसका गठन इस बात का साक्षी है कि "सार्वदेशिक-सभा' के मन्त्री की हैसियत से विषय निर्धारिणी और सम्मेलन के संचालन का कार्य इन्द्रजी ने ही किया। आर्य समाज की नीति को नयी दिशा देने में उन्हें कुछ सफलता हुई। इससे इन्द्रजी का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया।

इस उत्तरदायित्व के बढ़ने का एक और कारण भी बन गया। वह यह कि १९४४ में पुनः इन्द्रजी सार्वदेशिक-सभा के सर्व सम्मति से मन्त्री चुने गये।

अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार संघ के आगामी वर्ष के लिए भी आप ही अध्यक्ष चुने गये। सम्मति निम्नलिखित प्रकार से आयी।

इन्द्रजी को—२१ मत, पराड़करजी को—१२ मत, बनारसीदास जी को—१० मत, रायशंकर जी को—४ मत।

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन : अध्यक्ष चुनाव काण्ड

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के जयपुर अधिवेशन के अध्यक्ष-पद के लिए प्रस्तावित नामों में भी एक नाम इन्द्रजी का था। मतदाताओं का बहुमत इन्द्रजी के पक्ष में था। मतगणना का परिणाम भी यही निकला। किन्तु मतगणना का परिणाम सम्मेलन कार्यालय ने प्रकाशित करने से रोक लिया। फलतः एक विराट् आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसकी प्रचण्डता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि सहारनपुर से प्रकाशित 'नया जीवन' और 'विकास' के सम्पादक और संचालक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने सम्मेलन के दफ्तर के सामने अनशन करने की घोषणा कर दी। प्रबल आन्दोलन होता देखकर सम्मेलन के तात्कालिक अधिकारियों ने पहला चुनाव ही रद्द कर दिया और दूसरे चुनाव की घोषणा की। इस समय इन्द्रजी ने आश्चर्यजनक शालीनता का परिचय दिया। पंजाब के सनातन धर्म-सभा के महामन्त्री गोस्वामी गणेशदत्तजी भी मैदान में आ गये। भय था कि सम्मेलन के अध्यक्ष का चुनाव कहीं आर्य समाज और सनातन धर्म के मध्य संघर्ष का विषय न बन जाये। इस संघर्ष के होने पर सम्मेलन के अधिकारी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आई०सी०एस० के जिस व्यक्ति को अध्यक्ष चुनवाना चाहते थे, वह अनायास चुन लिया जाता। अतः इन्द्रजी ने अपने समर्थकों के प्रबल अनुरोध की रक्षा न करके अपनी उम्मीद-वारी वापस ले ली और गोस्वामी गणेशदत्तजी के निर्वाचन के लिए उनका मार्ग पूर्ण प्रशस्त कर दिया। लोकैषणा का संयम करना सरल बात नहीं है। परन्तु इन्द्रजी का उस पर भी पूर्ण नियन्त्रण था। इन्द्रजी अनुपम संयमी और अत्यन्त आत्म-सन्तोषी व्यक्ति थे। प्रत्येक घटना के बाद उनके मन का भाव यही रहता था--"मनुष्य केवल साधन मात्र है--होता सब कुछ भगवान् की इच्छा से ही है।"

'आर्य-समाज का इतिहास' : लेखन कार्य

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी के बलिदान से पहले आर्य-समाज का इतिहास लिखने का कार्य प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति को सौंपा गया था। इस इतिहास का पहला भाग दयानन्द जन्म-शताब्दी के मौके पर १९२५ में प्रकाशित हुआ था। यह सर्वत्र पसन्द किया गया था। 'प्रभा' में इसकी आलोचना करते हुए कविवर 'नवीन' ने लिखा था--"हिन्दू समाज ने जब करवट बदली, तो उसका नाम आर्य-समाज हुआ।" और उसकी उपादेयता प्रकट है। किन्तु उसका दूसरा बाग १९४४ तक भी न निकल सका। यह बात पण्डितजी को भी खटकती थी। उन्होंने सहसा एक दिन जो अनुभव किया वह डायरी में निम्न शब्दों में लिखा है--"आज प्रातःकाल अपने पुस्तकालय में आने पर पूज्य पिताजी के चित्र पर दृष्टि पड़ी। उसके सामने कुछ देर तक बैठकर विचार किया तो प्रतीत हुआ कि वह मुझे मेरी वह प्रतिज्ञा याद दिला रहे हैं, जिसमें मैंने कहा था--"मैं आर्य-समाज का इतिहास लिखकर पूरा करूँगा। मैंने अब तक उस कार्य को पूरा नहीं किया। इसे करने का उनका अन्तिम आदेश था। मैंने उसी समय पूज्य पिता जी के चित्र को साक्षी रखकर यह प्रण किया कि अब उस आदेश के पालन का समय आ गया है, अतः अब विलम्ब न करूँगा। उसी समय तैयारी प्रारम्भ कर दी। अनुभव हुआ कि मेरे संकल्प ने पिताजी को सन्तोष दिया है।"

'अर्जुन' की रजत जयन्ती

उन दिनों आप पुनः सार्वदेशिक सभा के सर्वसम्मति से मन्त्री चुने गये। लेकिन आपने ९ अगस्त १९४६ को अपना त्याग-पत्र महात्मा श्रीनारायण स्वामीजी को भेज दिया। क्योंकि आप पर अनेक अन्य कामों का बोझ था। उनमें 'अर्जुन' की रजत जयन्ती मनाने का भी बृहत् कार्य था।

२७ जनवरी १९४६ को 'वीर अर्जुन' की रजत जयन्ती डा० पट्टाभिसीतारामैया के सभापतित्व में मनायी गयी। इस अवसर पर 'वीर अर्जुन' का एक विशेषांक भी प्रकाशित किया गया था। इसका नाम जयन्ती-विशेषांक था।

'वीर अर्जुन' को बधाई भेजते हुए राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने निम्न सन्देश भेजा था--"वीर अर्जुन' की रजत-जयन्ती के अवसर पर उसे मेरी हार्दिक बधाई। पिछले २५ वर्षों में दिल्ली के प्रभावशाली क्षेत्र में उसने मेरे प्यारे भाई श्री इन्द्रजी की शक्ति पाकर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निर्भीकता से देश की सेवा की है और हिन्दी का मान रखा है। यह हिन्दी भाषियों के प्रेम और सम्मान का अधिकारी है। वह चिरंजीवी हो, और इन्द्रजी के करों में हिन्दी प्रेम का गाण्डीव सदा राष्ट्रीयता की रक्षा करे।"

"रजत-जयन्ती उत्सव से, इन्द्रजी को हार्दिक प्रसन्नता हुई। क्योंकि आप अनुभव करते थे कि भारतवर्ष में अनेक समाचार पत्रों का जीवन बचपन में ही समाप्त हो जाता है। ऐसी दशा में किसी समाचार-पत्र के लिए २५ वर्ष की प्रौढ़ता प्राप्त करना बड़े गौरव की बात है। विशेषकर किसी दैनिक पत्र के लिए।" इस अवसर पर आपने अपने हृदय के उद्‌गार निम्न शब्दों में व्यक्त किये थे—"मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि 'वीर अर्जुन' और भी अधिक वीरता के साथ राष्ट्र की सेवा सदा करता रहे।"

"इस अवसर पर मैं सभी सहयोगियों से यह भी निवेदन करना चाहता हूँ कि हिन्दी भाषा का गौरव बनाये रखने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हिन्दी समाचार पत्र विशेषकर हिन्दी दैनिक अपने को इस प्रकार सर्वांगपूर्ण बनावें जिससे हिन्दी भाषा-भाषी पाठकों को अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों की आवश्यकता न रह जाये और वे समाचार पत्र जगत् में अपना उचित स्थान प्राप्त करें।"

इस अवसर पर प्रकट की गयी इन्द्रजी की दोनों आशाएँ पूर्ण नहीं हुईं। 'वीर अर्जुन' की पुरानी परम्परा का अन्त हो गया। बाद में उसका स्वतन्त्र अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

इन्द्रजी की दूसरी आशा भी पूर्ण नहीं हुई। आज भी ऐसा कोई हिन्दी दैनिक नहीं जिसे पढ़ने के बाद समाचार जानने के लिए ही अंग्रेजी दैनिक पत्र पढ़ने की आवश्यकता का अनुभव न होता हो।

पत्रकार जीवन के अनुभव

दिल्ली के समाचार पत्रों के सम्बन्ध में इन्द्रजी का वह अनुभव उल्लेख योग्य है जो उन्होंने अपने संस्मरणों में अंकित किया है—"गत १५ वर्षों में इस प्रान्त में बन्द हुए हिन्दी दैनिक पत्रों की संख्या एक दर्जन से अधिक है, और इस समय चलनेवाले हिन्दी दैनिकों की संख्या तीन हैं। जो पत्र बन्द हुए उनके सम्पादकीय-विभाग में काम करनेवाले अधिकतर पत्रकार बेरोजगार हो गये और कई अब तक बेरोजगार हैं। यह ठीक है कि तीन पत्रों के पत्रकारों की स्थिति सुधर गयी, परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि उससे चौगुने पत्रों में कार्य करनेवाले पत्रकारों की स्थिति बिगड़ गयी।"

"१९४७ के अगस्त मास में भारत में स्वराज्य स्थापित हो गया। नयी परिस्थिति से धनिक समाचार पत्रों ने पूरा लाभ उठाया। अब उनके लिए उतनी सावधानता की आवश्यकता न रही। क्योंकि राजभक्ति और देशभक्ति में कोई विरोध न रहा। उनमें सब प्रकार की शक्ति अधिक मात्रा में थी। अतः राष्ट्रीय सरकार का ध्यान भी उनकी ओर ही खिच गया। परिणाम यह हुआ कि जो मध्यम श्रेणी के स्वतन्त्र समाचार पत्र स्वाधीनता के युद्ध में वर्षों तक जूझते रहे, वे एक-एक करके बन्द होने लगे अथवा धनिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्रों के पेट में विलीन होने लगे । यह निश्चित बात है कि पिछले आठ वर्षों में भारत भर में जितने समाचार पत्रों का जन्म हुआ, उससे कई गुना अधिक समाचार पत्रों की मृत्यु हुई । जो जीवित रहे उनमें से अधिकतर धनिक पत्रों के समाचार पत्रों के संचालकों के कुटुम्ब में शामिल हो गये । इस उलट-फेर ने बीसियों पत्रकारों को बेरोजगार करके शिक्षितों की बेरोजगारी की समस्या को बढ़ा दिया ।"

समाचार पत्रों के ध्येय के सम्बन्ध में पण्डितजी के निश्चित विचार थे । उनका विचार था—"अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के हो जाने पर भी समाचार-पत्र का मुख्य कार्य आज भी समाचार देना ही है । जनता तक अप्रिय सच्ची बात पहुँचाने से जैसे उस समय सरकार अप्रसन्न होती थी, आज भी होती है; किन्तु अन्य सभी अंशों में बहुत परिवर्तन आ गया है । प्रभाव में आजकल का समाचार-पत्र सरकार से बराबर की टक्कर लेता है । कानून की शक्ति सीधे तौर से हाथों में न होने से उसे कानून से तत्काल दबना पड़ता है, परन्तु लोकमत द्वारा वह कानून को प्रभावित करने की शक्ति रखता है । इस कारण उसके प्रभाव को दीर्घ दृष्टि से देखें, तो, वह सरकार से कम नहीं ।

"यदि पत्रों का ध्येय केवल अर्थोपार्जन ही हो गया, तो वे समाज का जितना कल्याण करेंगे, उससे अधिक अकल्याण भी हो सकता है । समाचार पत्र को साधारण व्यवसाय नहीं बनाया जा सकता, वह देश की जनता का शिक्षक है । वह लोकमत बनाता है, और देश को शान्ति अथवा युद्ध की ओर ले जाने का मुख्य साधन है ।"

समाचार पत्रों की नवीन परिस्थिति इन्द्रजी के स्वाभानुकूल नहीं थी । इसलिए वे उस पत्र को त्याग गये, जो उनके जीवनभर के श्रम का फल था । 'वीर अर्जुन' से इन्द्रजी का अलग होना कोरी भावुकता के कारण नहीं था, बल्कि विचारों और आदर्श के संघर्ष के कारण था । पत्र द्वारा राष्ट्रीयता का प्रसखर तेज उदीप्त रखना जब सम्भव नहीं हुआ, तब इन्द्रजी ने विश्राम की इच्छा से नहीं, बल्कि, इस कारण से कि 'वीर अर्जुन' उनके विचारों का सुवाहक माध्यम नहीं रहा था; 'वीर अनर्जु' भी त्याग दिया । आदर्श और सिद्धान्त की रक्षा के लिए जीवन के उत्तरार्ध में अपने स्वार्थों का त्याग कर देना जीवन की अविस्मरणीय बात रहेगी । भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में यह एक बेजोड़ घटना है । आपने लेखनी को पूँजी के आगे झुकने से इनकार कर दिया और लेखनी को बन्दनीय बनाये रखा ।

अपने पत्रकार-जीवन के अनुभवों की चर्चा आपने श्री पद्मसिंह शर्मा कमलेशजी से की थी । अनेक पत्रों ने उसे प्रकाशित किया था । उसके कुछ अंशों का उद्धरण देना यहाँ अप्रासंगिक न होगा । इन्द्रजी के ये स्वानुभव उनके पत्रकार जीवन के व्यक्तित्व पर प्रामाणिक प्रकाश डालते हैं । कमलेशजी लिखते हैं—

४ जून की बात है । दोपहर के ११ बजे होंगे । दिल्ली के भारत विख्यात हिन्दी-अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स की दुकान पर बैठा था कि अचानक भाई श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने कहा—"इन्द्रजी आये हैं, चलो मिल लें ।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मैं इस बार उनसे मिलने का निश्चय करके ही दिल्ली गया था। इसलिए मैं सुमनजी के साथ दुकान के पीछे के हिस्से में, जहाँ सुमनजी बैठते हैं बाहर आया। एक ५ फ़ुट लम्बा, दुबला-पतला, लगभग ६० वर्ष की उम्र का व्यक्ति जिसका सिर नंगा, बदन पर खद्दर की धोती और कुर्ता तथा पैरों में चप्पल थी, आत्माराम एण्ड सन्स के हिन्दी विभाग के प्रबन्धक श्री भीमसेनजी से किसी पुस्तक के विषय में बात कर रहा था। उससे सुमनजी ने मेरा परिचय कराते हुए बताया--"ये ही इन्द्रजी हैं, जिनसे तुम 'इण्टरव्यू' के लिए मिलना चाहते थे।"

मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपनी 'मैं इनसे मिला' नामक इण्टरव्यू की पुस्तक उन्हें भेंट करते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे इण्टरव्यू के लिए कोई समय और दिन निश्चित कर दें और पुस्तक पर सम्मति भी दे दें। उस समय मेरा यह खयाल था कि वे दोनों कामों के लिए शीघ्र तैयार हो जायेंगे, लेकिन उन्होंने इण्टरव्यू का समय तो किसी भी दिन प्रातः-काल रखने के लिए कह दिया, पर सम्मति के लिए कहा कि मैं इस पुस्तक को देखकर ही कुछ कह सकता हूँ। उनकी इस स्पष्टवादिता से मुझे यह अनुभव हुआ कि यह व्यक्ति निःसन्देह ऐसा पत्रकार रहा होगा, जो स्पष्ट मत के प्रदर्शन में कभी नहीं झिझका होगा।

"उस दिन उनसे वहाँ और कोई बातचीत नहीं हुई। दो-दिन बाद मैं प्रातः काल ६–३० बजे उनके निवासस्थान (चन्द्रलोक, जवाहर नगर, मलकागंज रोड) दिल्ली पर पहुँचा। पैदल गया था, आशा तो न थी कि समय से पहले पहुँच जाऊँगा, पर अनदेखी जगह का अन्दाज न होने पर भी मैं जा पहुँचा ६–३० बजे। बड़ा संकोच हो रहा था कि समय टेलीफोन से निश्चय किया था ७ बजे का और पहुँच गया आधा घण्टे पहले। हिम्मत करके आवाज दी तो एक बालिका (जिसके विषय में पीछे मुझे इन्द्रजी ने बताया कि वह उनकी पुत्री ऊषा है तथा उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी भी है) आई और उसने मुझे ले जाकर बैठक के कमरे में बैठा दिया।"

"उस कमरे में बैठकर मैं इन्द्रजी की प्रतीक्षा करने लगा। इनके ड्राइंग रूम में केवल एक ही महापुरुष की प्रतिमा शीशे के भीतर से झाँकती दिखायी दी और वह महापुरुष हैं इन्द्रजी के यशस्वी पिता स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज। शेष कमरा बिलकुल सूना है। यदि यह बात सही है कि किसी व्यक्ति की रुचि का पता उसके कमरे की तस्वीरों से लगता है तो मैं कहूँगा कि इन्द्रजी में राष्ट्रीयता और समाज के लिए मिटने की भावना ही प्रबल होनी चाहिए।

"थोड़ी देर में ही इन्द्रजी आकर कोच पर बैठ गये। उसी वेष में वे घर पर भी थे, जिसमें मैंने उन्हें आत्माराम एण्ड सन्स के यहाँ देखा था। शिष्टाचारवश मैंने अपनी जल्दी आने की बात कही और उनसे क्षमा माँगी तो वे बोले कोई हर्ज की बात नहीं। ७ बजे का समय तो मैंने इसलिए दिया था कि मैं उस समय तक तैयार हो ही जाता हूँ। वैसे प्रयत्न यही रहता है कि ६–३० बजे ही दैनिक कार्यों से निवृत्त हो लूँ। आपके जल्दी आने से कोई बाधा नहीं पड़ी।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मैंने आश्वस्त होकर और यह देखकर कि वे विचार-विनिमय के लिए तैयार हैं, उनसे पूछा कि "आप तो हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं। फिर आपके नाम के साथ यह 'प्रोफेसर' की उपाधि क्यों लगी है ?"

उन्होंने कहा कि "मेरे जीवन का प्रमुख धन्धा तो पत्रकारिता ही है, पर मैं गुरुकुल में पढ़ाता रहा हूँ, इसलिए नाम के आगे प्रोफेसर लग गया है। मैंने गुरुकुल में ७–८ वर्ष पढ़ाया है। इस प्रोफेसर बनने की भी एक कहानी है। बात यह हुई कि जब पिताजी ने गुरुकुल की स्थापना की तो मैं और मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्रजी जो सन् १९१३ में राजा महेन्द्र प्रताप के साथ इंग्लैण्ड गये और १९२२ में रेवोल्यूशनरी पार्टी में सम्मिलित होकर काम करते हुए कहीं लुप्त हो गये। दोनों आरम्भ में उसमें भर्ती किये गये। वहीं से हम दोनों स्नातक हुए। यह सन् १९१२ की बात है। सन् १९०० से पूर्व स्वामीजी जालन्धर में वकालत करते थे और वहीं से उर्दू में 'सद्धर्म प्रचारक' नाम का अखबार निकालते थे। 'सद्धर्म प्रचारक' का प्रेस भी था। यह पत्र पीछे चलकर हिन्दी में हो गया था। गुरुकुल का काम आ पड़ने पर स्वामीजी ने प्रेस गुरुकुल को ही दे दिया था। यही नहीं, हमारे स्नातक होने के ६ महीने पहले उन्होंने हमें बुलाकर अपनी कोठी के दान-पत्र पर भी हमसे हस्ताक्षर करा लिये थे। स्नातक होने के समय हमारे पास कुछ नहीं था। उस समय काम चुनने की बात आयी तो मैंने पत्रकार बनने का इरादा प्रकट किया। फलस्वरूप हरिश्चन्द्र तो गुरुकुल में अध्यापक हो गये और मैं केवल सप्ताहिक 'सद्धर्म प्रचारक' को लेकर दिल्ली आ गया। क्योंकि प्रेस गुरुकुल को दिया जा चुका था। स्वामीजी गुरुकुल में ही थे। हरिश्चन्द्रजी स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। गुरुकुल में जिन ५२ मन्तव्यों पर हस्ताक्षर करने पड़े थे, उनके सम्बन्ध में मतभेद होने से उन्होंने एक वर्ष बाद ही त्याग-पत्र दे दिया। ऐसी दशा में स्वामीजी ने मुझे गुरुकुल आने का आदेश दिया। मैं हरिश्चन्द्र-जी के स्थान पर चला गया और हरिश्चन्द्रजी दिल्ली आ गये। गुरुकुल में मैं तुलनात्मक धर्मशास्त्र और इतिहास पढ़ाता था।"

"उसके बाद आप पत्रकार कैसे बने ?" मैंने प्रश्न किया।

उनका उत्तर था—"पत्रकारिता मेरे संस्कारों में थी। यदि यह कहूँ कि मैं पत्रिका-कारिता के संस्कारों के साथ ही पैदा हुआ था तो अत्युक्ति नहीं होगी। जब हम छोटे थे तो पिताजी 'सर्द्धम प्रचारक' निकालते थे। प्रेस भी घर में ही था। इसका प्रभाव यह हुआ कि जब मैं आठ वर्ष का था और हरिश्चन्द्रजी १० वर्ष के थे, हम ४–४ पृष्ठ के हस्तलिखित अखबार निकाला करते थे। गुरुकुल पहुँचने पर भी हमारी वह प्रवृत्ति चलती रही। वहाँ भी हम दोनों ने दो पत्र निकाले थे, वह भी सचित्र। लेख संस्कृत और हिन्दी में रहते थे। हम दोनों भाइयों को पत्रकारिता का गहरा शौक था। आगे चलकर जब गुरुकुल से 'सद्धर्म प्रचारक' हिन्दी में निकला, तो हम उसमें भी लिखने लगे। तब मैं 'क्ष' कल्पित नाम से लिखता था। उसी समय की एक मजेदार घटना मुझे याद है। हमारे एक अध्यापक थे श्रीशिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ'। उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक भाष्य लिखा। नये विचारों से युक्त वह अपने ढंग की अनूठी चीज थी। उसके विषय में मैंने 'क्ष' नाम से 'सद्धर्म प्रचारक' में आलोचनात्मक लेख लिखा। पण्डितजी ने लिखे लेख को देखा तो क्लास में उसकी बड़ी कटु आलोचना की। उन्होंने दो सप्ताह बाद उसका जवाब दिया। मैंने फिर उनके जवाब का जवाब लिखा। यों दो-तीन लेखों में मेरी उनसे झड़प हुई। कहीं बात खुल न जाये इस डर से कुछ समय बाद मैंने लिखना स्वयं ही बन्द कर दिया। उस विवाद से मेरा पत्रकार का दृष्टिकोण बना। तब 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक निकलता था। १९११ में दरबार होने के समय १५ दिन वह पत्र दैनिक भी निकला। वह मेरा दैनिक-पत्र सम्पादन का प्रथम अनुभव था।

गुरुकुल से मुझे बाहर निकलकर पत्र निकालने की प्रेरणा लोकमान्य तिलक और उनके 'केसरी' पत्र से मिली। गुरुकुल में हमें स्वाध्याय-मण्डल के यशस्वी लेखक श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी चित्रकारी सिखाते थे। वे तिलक-भक्त थे। उनके प्रभाव से मेरी भी श्रद्धा तिलक महाराज और उनके पत्र 'केसरी' के प्रति हुई। १९१२ में जब दिल्ली आकर सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया, तो मैंने 'विजय' नामक पत्र निकाला। दिल्ली में उस समय 'मार्निंग' पोस्ट नाम का अंग्रेजी दैनिक निकलता था, जो टोडी पत्र 'पाइनियर' से खबरें लेकर छाप देता था। मैंने एक दैनिक राष्ट्रीय पत्र निकालने का संकल्प करके दैनिक 'विजय' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।"

"लेकिन आपको एक सरकार विद्रोही पत्र 'विजय' का डिक्लेरेशन कैसे मिला?"

इसका श्रेय श्रीमती एनीबेसेंट के साथी श्री तारिणीप्रसाद सिन्हा को है। वे 'मानचेस्टर गार्जियन' के स्टाफ में रह चुके थे। गुरुकुल होकर जब वे दिल्ली आये तो, मैंनें उनसे 'डिक्लेरेशन' की अपनी कठिनाई बताई। वे बड़ी पहुँच के आदमी थे। कोई काम उनके लिए असम्भव नहीं था। बोले, सायंकाल तक डिक्लेरेशन लेकर आऊँगा, यह कहकर वे कमिश्नर के यहाँ पहुँचे और कहा, हम लोग 'विजय' जिसका अर्थ 'विक्टरी' होता है अर्थात् आपकी विजय (योर विक्टरी) निकालना चाहते हैं। कमिश्नर ने खुश होकर डिक्लेरेशन दे दिया और सायंकाल वे उसे लेकर मेरे पास आये। आश्चर्य की बात तो यह है कि आपने खाना भी कमिश्नर के साथ ही खाया। यह तिकड़म मेरे बूते का न था। मेरा हाल तो यह है कि मैं ऐसे काम कर ही नहीं सकता। मेरे मित्र ऐसे कामों में मेरी मदद करा देते हैं।"

यहाँ उन्होंने तत्कालीन न्यूज एजेन्सियों की हिन्दी-पत्रों के प्रति मनोवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए मुझे बताया कि जिस समय उन्होंने डिक्लेरेशन प्राप्त कर 'विजय' को निकालने का निश्चय किया तो एसोसिएटिड प्रेस के डाइरेक्टर श्री राय ने उनसे कहा, "मेरे प्यारे बच्चे, दिल्ली से हिन्दी दैनिक निकालने की हिम्मत न करो, यहाँ उनके लिए कोई क्षेत्र नहीं है।" उन्होंने उत्तर दिया--"मैं पत्र तो अवश्य निकालूँगा।" इस पर राय ने कहा--"लीडर, पायोनियर आदि से खबरें लेकर ६ महीने तक पत्र निकाल, उसके बाद न्यूज एजेन्सी से बातें करना।"

इन्द्रजी ने राय की बात नहीं मानी और पत्र निकाल दिया। कितनी सफलता से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चला, इसका विवरण इन्द्रजी के शब्दों में ही सुनिये। उन्होंने बताया—"पत्र निकला, पत्र छपता था हैण्ड प्रेस पर। पहले दिन ७० कापियाँ बिकी और वह भी प्रायः हिन्दी पढ़नेवाली लड़कियों ने ही लीं। तीन महीने में उसकी बिक्री १५०० तक पहुँच गयी। वह पत्र जितना छपता था, सब बिक जाता था। उन्हीं दिनों महात्माजी ने रौलट एक्ट पर सत्याग्रह की घोषणा कर दी और मुझे दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी का मन्त्री बना दिया। उस समय मेरे जोश का यह हाल था कि कलम को मैंने बिलकुल बेलगाम भगाया। 'विजय' की धूम मच गयी। पहला राष्ट्रीय पत्र था। खूब बिकने लगा। उस पर सरकार की कोपदृष्टि पड़नी ही थी, जमानत माँगी गयी और सेन्सरशिप लगाया गया। फलतः पत्र बन्द करना पड़ा। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि मैं बेदाग निकल गया। दो साल चुप रहने के बाद उसीका नाम बदलकर मैंने 'अर्जुन' निकाला।"

जब मैंने यह कहा कि पीछे का आपका 'अर्जुन' अब तो 'वीर अर्जुन' के नाम से निकलता है, तो वे कहने लगे,—'हाँ' पीछे से 'अर्जुन' को 'वीर अर्जुन' करना पड़ा। इसका कारण यह था कि 'अर्जुन' से और मुझसे सरकार परेशान थी। दो हजार, पाँच हजार और एक हजार तक की जमानतें हमसे माँगी गयीं और हमने दी भी। 'अर्जुन' के पाँच सम्पादक न्यूनाधिक समय के लिए जेल में रहे। १९२७ में कश्मीर गया तो मेरे पीछे 'अर्जुन' में कुछ साम्प्रदायिक लेख छप गये, जिसके कारण 'अर्जुन' के सम्पादक, प्रिन्टर और पब्लिक पर मुकदमा चल गया। मुझे साढ़े ५ साल की कड़ी सजा मिली, जो सेशन में ६ महीने की रह गयी। साथ ही पत्र से पाँच हजार रुपये की जमानत भी माँगी गयी। इसके पश्चात् जमानत के जब्त होने की नौबत भी आ गयी। ऐसे संकट के समय हमें यह युक्ति सूझी कि क्यों न नाम बदल दिया जाये। हमने 'वीर अर्जुन' के नाम डिक्लेरेशन दिया। सरकार ने यह सोचकर कि 'अर्जुन' का एक प्रतियोगी खड़ा होना, अच्छा है, 'वीर अर्जुन' के नाम से डिक्लेरेशन दे दिया। हमने 'अर्जुन' बन्द कर दिया और 'वीर अर्जुन' चलने लगा।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि आपको निरन्तर आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा है।" मैंने कहा।

वे बोले—"आप ठीक कहते हैं। मैंने ३० साल की पत्रकारिता में एक पैसा भी नहीं बचाया। सब सरकार ले गयी। लेकिन मुझे दुःख नहीं है। मेरी दृष्टि में पत्र सार्वजनिक जीवन के साधन मात्र हैं। कमाने की चीज नहीं हैं। मुझे तो प्रसन्नता इसी बात की है कि मेरे प्रयत्नों ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि दिल्ली की भूमि में हिन्दी अखबार भी पनप सकते हैं। मेरे पत्र निकालने के बाद दिल्ली में हिन्दी पत्रों की बाढ़ आ गयी। जब मैंने दिल्ली में दैनिक पत्र निकाला था, उस समय यहाँ अंग्रेजी पत्रों के अलावा हिन्दी, उर्दू का कोई पत्र न था। 'विजय' निकलने के कुछ दिन पीछे यह दशा हुई कि मुसलमान तक उसे खरीदते और दूसरों से पढ़ाकर सुनते थे।" यहीं जब मैंने उनसे पूछा कि आपने 'वीर अर्जुन' से सम्बन्ध-विच्छेद क्यों किया, तो उन्होंने कहा—"दो साल से पहले यह निश्चय करके कि अब मैं पत्र के प्रबन्ध-कार्य से अलग होकर अधिक समय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में लगाऊँगा। मैंने पत्र की संचालक-संस्था 'श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड' के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद से त्यागपत्र दे दिया था और उस स्थान पर दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारी लाला हंसराज गुप्त चुन लिए गये थे। उस समय यह निश्चय हुआ था कि 'वीर अर्जुन' की नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा, वह पूर्ववत् स्वतन्त्र बनी रहेगी। किन्तु, मेरी वह इच्छा पूरी न हुई। पत्र शीघ्र ही संघ के हाथों में जाकर स्वतन्त्रता खो बैठा। तब मैंने उससे हाथ खींच लिया और उसमें लिखना भी छोड़ दिया।

"राजनीतिक पार्टी के सम्बन्ध में मेरा विश्वास है कि मनुष्य को उसका चुनाव उसी प्रकार रहना चाहिए, जैसे वर-वधू का चुनाव किया जाता है। चुनाव से पहले खूब सोच-विचार कर लेना चाहिए। परन्तु एक बार चुनाव हो जाने पर जहाँ तक सम्भव हो, तलाक न होना चाहिए। मैंने राजनीति में कांग्रेस को प्रारम्भ से ही अपना लिया था और अब तक उसी में हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कांग्रेस का गुलाम हूँ। मैं राजनीति के कार्य-क्षेत्र में कांग्रेसी, परन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र में स्वतन्त्र समालोचक हूँ।"

इसी बीच बहन उषा चाय ले आयीं। मैं चाय पीने लगा। बातचीत का सिलसिला फिर भी जारी रहा। मैंने आज के पत्रकारों की बात छेड़ दी और कहा—"आज तो पत्रकार की अवस्था बड़ी डाँवाडोल है। उनकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। यदि वे बेचारे ट्रेड यूनियन के आधार पर संगठित होते हैं तो दृढ़ स्थितिवाले या आप जैसे मिशनरी स्पिरिटवाले पत्रकार उनका विरोध करते हैं। ऐसी स्थिति में कैसे वे अपनी आत्मा के अनुसार चल सकते हैं और देश का पथ प्रदर्शन कर सकते हैं?"

इन्द्रजी इस प्रश्न पर कुछ देर तक सोचकर बोले—"आज तो पत्रकारिता में स्वतन्त्र विचार की हत्या हो गयी है। यह कला आज पूँजीपतियों की क्रीतदासी बनती जा रही है। बहुत से हिन्दी पत्रों के सम्पादक तथा उस सम्पादक मेरे पास 'अर्जुन' में कार्य कर चुके हैं। मेरे पास काम करते हुए उन पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं था। वे सम्मति प्रकट करने में स्वतन्त्र थे। पेचीदा मामलों में भी स्वतन्त्रता से विचार व्यक्त करते थे। हम वेतन चाहे सौ ही रुपये देते थे, लेकिन आत्मा नहीं खरीदते थे। तब ये मिशनरी पत्रकार थे। आज पत्रकारिता में सम्पादकों के चार-पाँच सौ रुपये वेतन मिलता है, लेकिन मैं जानता हूँ कि उनमें से कइयों को परिस्थिति की परतन्त्रता खल रही है। क्योंकि उन्हें वही लिखना पड़ता है, जो उनका मालिक चाहता है। पूर्व समय के सत्य के लिए मर मिटनेवाले इन सहकारी सम्पादकों की आत्मा पर आज भारी बोझ डाल दिया गया है। स्वतन्त्र पत्रकारिता बड़ी कठिन हो गयी है। यदि पत्रकार के भीतर शक्ति और कौशल हो तो वह अपनी मान रक्षा कर सकता है। लेकिन प्रलोभन इतने हैं कि यह बहुत कठिन है। कोई भी योग्य और स्वाभिमानी पत्रकार इस स्थिति में कार्य नहीं कर सकता। उसे अलग होना पड़ेगा। आपके ही यहाँ के पं० हरिशंकर शर्मा को एक बार 'आर्य मित्र' से अलग होना पड़ा था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"यदि आप चाहें कि ट्रेड यूनियनों से पत्रकारों की स्वतन्त्रता की रक्षा हो जाये तो असम्भव है। ट्रेड यूनियन से आर्थिक प्रश्न तो हल हो जायेगा, पर मन की स्वतन्त्रता या स्वतन्त्र सम्मति के लिए वहाँ अवकाश नहीं है। पहले पत्र चलाना एक विशेष समाजोपयोगी कार्य था। आज व्यापार अथवा राजनीतिक पार्टियों का प्रचार ही पत्रों का उद्देश्य हो गया है। संचालकों को सरकार के इश्तहारों की गुलामी एक दूसरी चोट है। शक्ति के उपयोग की सबको चिन्ता है, त्याग कोई करना नहीं चाहता।"

इतना कहते-कहते वे देश की वर्तमान सरकार, कांग्रेसी नेता और जनता की दिशा का विश्लेषण करने लगे। उन्होंने कहा—"यदि आप आत्मा की रक्षा की बात कहें तो इसकी आवश्यकता तो हर क्षेत्र में है। आज राजनीतिक दृष्टि के बदलने से जीवन की दृष्टिकोण ही बदल गया है। जो लोग किसी दिन ५० रुपये मासिक में घर का खर्च चलाते थे, वे अब १५०० में भी नहीं चला पाते। हमें बहुत से अपने साथियों का हाल मालूम है कि वे कैसे दिन काटते थे, पर आज वे मिनिस्टर बनते ही एक रात में बदल गये हैं। वे लौकिकता पर इतना जोर देने लगे हैं कि आश्चर्य होता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी कर्मचारियों, मन्त्रिमण्डलों और पत्रकारों तथा जनता सबके चरित्र का स्तर ऊँचा हो। यदि ऐसा न होगा, तो यह स्वराज्य ताश के पत्तों के मकान की तरह बैठ जायेगा। जो मित्र स्वराज्य से पूर्व गरीबी और त्याग के दृष्टान्त समझे जाते थे, वे आज धन की हवा में उड़ते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। यह जो निर्बलता का प्रवाह बह रहा है, वह रुकना चाहिए। सब लोग यदि हवाई जहाज में ही चलने लगें और गरीब देश का रुपया उड़ाने लगें, तो कल्याण कैसे होगा। मुद्राराक्षस में लिखा है कि आचार्य चाणक्य सम्राट् चन्द्रगुप्त को वृषल अर्थात् शूद्र कहा करते थे। एक बार कुछ लोगों ने सम्राट् को भड़का दिया कि चाणक्य का सम्राट् को शूद्र कहना अनुचित है। चन्द्रगुप्त क्रोध में आकर चाणक्य के घर गया और देखा कि छप्पर पर पयाल और खूँटी पर लंगोट के सिवा और कुछ नहीं है। उसे देखकर उसके मन में यह बात समा गयी कि जो व्यक्ति साम्राज्य का निर्माण करके भी ऐसी निःस्पृह अवस्था में रह सकता है, उसे सम्राट् तक को शूद्र कहने से कौन रोक सकता है। हमारे स्वराज्य-निर्माता इस भारतीय उदाहरण को भूल गये हैं। आज उन्हें अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता है। प्रतिष्ठा क्या खाक है। हर व्यक्ति गाली देता है। यदि हमारे मन्त्री स्वेच्छा से १००० रुपये में गुजारा कर लेना मान लेते, तो देश का खर्च आधा रह जाता और अमरीका से कर्ज नहीं लेना पड़ता। आज तो कर्ज लेने पर भी आमदनी से खर्च ज्यादा है।"

इस स्थिति से उबारने के उपायों के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा—"शिक्षा, दृष्टान्त और प्रचार से ही हम स्थिति को सँभाल सकते हैं। शिक्षा में सुधार हुआ ही नहीं है और उसका होना देश की प्राथमिक आवश्यकता है। नैतिक और आचरण सम्बन्धी बातों के प्रचार की भी आवश्यकता है। फिर सबसे बड़ी चीज है दृष्टान्त। जनता वही करेगी, जो बड़े करेंगे। त्याग ऊपर से ही शुरू होना चाहिए। बिना इसके उपदेश निरर्थक है।" देश की वर्तमान दशा पर उनके विचारों का परिचय पा लेने पर मैंने एक व्यक्तिगत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रश्न पूछा । "क्या तीस वर्ष की पत्रकारिता में आपको कभी प्रलोभन का शिकार नहीं होना पड़ा ? यदि होना पड़ा, तो कैसे आप बचे ?"

इस प्रश्न पर इन्द्रजी ने जो कुछ कहा वह पूँजीपतियों की मनोवृत्ति पर सर्चलाइट फेंकनेवाला है । किस प्रकार पूँजीपति साम, दाम, दण्ड और भेद से पत्रकारों को खरीदना चाहते हैं और न खरीदे जाने पर अपने मित्रों द्वारा स्वतन्त्र पत्रों को मिटाने की चेष्टा करते हैं, ये सब बातें मुझे श्री इन्द्रजी के द्वारा दिये गये इस प्रश्न के उत्तर में मालूम हो गयीं । उन्होंने कहा—"प्रलोभन मुझे ऐसे मिले हैं, जैसे किसी भी पत्रकार को न मिले होंगे ।" यह कहकर उन्होंने अपने तीन दृष्टान्त इस प्रकार सुनाये—"एक बार एक करोड़पति के प्रतिनिधि ने मेरे पास आकर कहा कि 'सेठजी की इच्छा अपने अंग्रेजी पत्र के साथ 'अर्जुन' को मिला लेने की है ।' मैंने कहा कि मैं तैयार हूँ । पर नीति मेरी रहेगी । इस पर सेठजी तैयार नहीं हुए । इसी बीच सेठजी के कारखाने में हड़ताल हो गयी । हड़ताल का समाचार 'अर्जुन' में छपा । समाचार के छपते ही कारखाने के मैनेजर का टेलीफोन आया कि समाचार गलत है, यदि आप इसका प्रतिवाद नहीं छापते तो 'अर्जुन' पर मानहानि का दावा होगा । साथ ही यह भी कहा गया कि हम आपको सार्वजनिक कामों में सहायता देते रहते हैं । इसलिए आपको हमारा लिहाज करना चाहिए । मैं कड़ा बन गया और कह दिया कि आप चाहे जो करें, मैं प्रतिवाद नहीं छापूँगा । अभियोग करोगे तो सफाई दूँगा । रही चन्दे की बात, तो मेरा व्यक्तिगत लाभ उससे नहीं होता । वह तो सार्वजनिक कामों में जाता है । उन्होंने वकीलों से उसी समय बातचीत की । पर केस चल नहीं सकता था और बदनामी का भी डर था । तब उन्होंने दूसरा उपाय मुझे झुकाने का सोचा । घाटा सहकर भी एक नया हिन्दी का पत्र निकालने की घोषणा कर दी । कुछ ही दिन बाद 'अर्जुन' से दो पृष्ठ ज्यादा का नया पत्र निकाला गया । हमारे चार पृष्ठ थे, उनके ६ । जब हमने ६ किये तो उन्होंने ८ कर दिये । हमने आठ किये तो उन्होंने दस कर दिये । फल यह हुआ कि हम पर कागजवाले का चालीस हजार रुपया कर्ज हो गया । हमारे कई हितैषी कागज के व्यापारी जे० एन० सिंह के पास गये और 'अर्जुन' को ऋण में खरीदने की इच्छा प्रकट की । लेकिन जे० एन० सिंह कम्पनी के चैयरमैन श्री सूर्यनारायणजी ने मेरी लाज रख ली । उन्होंने साफ कह दिया कि मेरा रुपया देर से आये या जल्दी से, मिलेगा अवश्य । मुझ पर जो चार बड़े-बड़े राजनीतिक मुकदमें चलाये गये, उन सबमें सरकार की ओर से राजबहादुर, सूर्यनारायण ही वकील के तौर पर खड़े हुए । परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे उनसे कभी शिकायत नहीं हुई । क्योंकि उनका व्यवहार सदा शिष्टतापूर्ण रहा । ऐसा उदार हृदय व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा, जो कि स्वतन्त्र पत्रकार की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए पूँजीपतियों के सरताजों का तिरस्कार कर सके । वस्तुतः जे० एन० सिंह का सूद सहित सारा ऋण कुछ समय में मैंने चुका दिया । एक दूसरा भी मामला ऐसा ही हुआ । वे धनी सज्जन भी एक हिन्दी अखबार चाहते थे और 'अर्जुन' को लेना चाहते थे । यहाँ भी नीति का प्रश्न आया और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बात जहाँ-की-तहाँ रही । कुछ दिन बाद उनकी चौथी या पाँचवीं शादी होने का समाचार मिला और यह भी पता चला कि वह शादी आर्य-समाज के एक पण्डित द्वारा करायी जायेगी। मैं उन दिनों सार्वदेशिक सभा का मंत्री था । मैंने आर्यवीर दल के कप्तान को बुलाकर कहा कि ऐसी शादी से आर्य-समाज का सहयोग नहीं होना चाहिए और वह रुकनी चाहिए । विवाह मण्डप सज चुका था और तैयारी में थोड़ी-सी कमी थी कि आर्य-समाज द्वारा भेजा हुआ सारा सामान वहाँ से हटवा दिया गया । इससे वह सज्जन मुझसे बहुत नाराज हो गये । फलतः दिल्ली में एक और हिन्दी दैनिक पत्र का जन्म हुआ । जिसने 'अर्जुन' को परास्त करने का भरसक प्रयत्न किया ।

"तीसरा मामला भी ऐसा ही हुआ । एक स्थानीय मिल की हड़ताल का समाचार 'अर्जुन' में छपा तो मिल मालिक की ओर से दी गयी बहुत-सी धमकियाँ यहाँ भी सुननी पड़ीं । मिल का गजट हमारे यहाँ छपता था । उसको उनके मैनेजर ने हमारे यहाँ से हटाने की धमकी दी । लेकिन मिल के मालिक समझदार आदमी थे, उन्होंने बाहर से लौटकर सारा मामला समझ लिया और और गजट हमारे यहाँ ही छपने की आज्ञा दे दी । उनसे मेरे सम्बन्ध आज भी अच्छे हैं ।

"इसके अतिरिक्त 'अर्जुन' में रियासतों के समाचार बहुत छपते थे । वहाँ से तो अनेक प्रलोभन मिलते रहते थे । एक बार तो सीकर और जयपुर के झगड़े में एक सज्जन रुपयों की पगड़ी देने के लिए आये थे । जिन्हें मैंने बहुत ही विनयपूर्वक आफिस से उतर जाने के लिए बाधित किया ।"

मैंने देखा कि इन्द्रजी को बोलते-बोलते काफी देर हो गयी है । इसलिए कहा कि आज यहीं बातचीत समाप्त हो जानी चाहिए, शेष बातें कल हो जायेंगी । वे इस पर राजी हो गये ।

दूसरे दिन मैं फिर नियत समय पर पहुँच गया । आज मुझे उनकी तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी । वे मेरे पहुँचते ही आ गये । मुझे सुमनजी के यहाँ उनकी वे पुस्तिकाएँ मिल गयीं थीं, जिनमें उनकी बीमारी से लड़ाई का वर्णन है । इसलिए मैंने इसी प्रसंग पर बात छेड़ी । वे सार्वजनिक जीवन की भाँति निजी जीवन में भी बीमारियों से लड़ते रहे हैं और विश्वास के बल पर सफलता प्राप्त की है । इसलिए इस प्रसंग पर बात छिड़ते ही बोले—"मैंने कई भयंकर बीमारियाँ देखी हैं । दो साल की उम्र में मेरी माताजी मर चुकी थीं । उसके पश्चात् मुझे निमोनिया ने धर दबाया । ४ साल की आयु में डबल निमोनिया हुआ । १६ साल की आयु में प्लुरसी का आक्रमण हुआ, ३६ साल की उम्र में ब्रांको निमोनिया से पीड़ित रहा । सार्वजनिक कार्य में रत रहते हुए भी और इन बीमारियों का स्थायी इलाज न कराने से और इन सबके मेल से कोई ४६ वर्ष की उम्र में एक नयी बीमारी का जन्म हुआ, वह था गोले का दर्द । ज्वर भी रहने लगा । डाक्टरों ने कह दिया कि बाँया फेफड़ा खराब है । डाक्टर अन्सारी ने मेरे स्वास्थ्य की परीक्षा करके सलाह दी कि जैसे एक हाथ के कटने पर दूसरे हाथ से काम करते रहते हैं, पर कम काम करते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं, वैसे ही एक फेफड़े से काम लो पर कम। लेकिन मेरे लिए व्याख्यान देना और सार्वजनिक कार्य छोड़ना सम्भव न था। इसलिए दोनों फेफड़ों का एक ही से काम लेता रहा। दो-तीन बार जेल भी गया। परिणामस्वरूप १९४२ के सत्याग्रह-आन्दोलन में अधिक बीमार हो गया। १९४४ में फिर एक साल तक बीमार रहा। प्रारम्भ में एलोपैथिक इलाज किया। कलकत्ते से बुलाकर डॉ० विधानचन्द्र राय को दिखाया। वैद्यक, एलोपैथिक, प्राकृतिक-चिकित्सा आदि सब प्रकार के इलाज कराये पर सभी व्यर्थ हुए। इतना होने पर भी मैं एक क्षण को भी नहीं निराश हुआ। सौभाग्य से मुझे डाक्टर आर० एन० बेरी जैसा होम्योपैथिक डाक्टर मिल गया। मुझे रात को महीनों से नींद नहीं आती थी और बुखार रहता था। बेरी साहब के इलाज से चार दिन में ही नींद आने लगी और कुछ दिन में मैं अच्छा भी हो गया।

तबसे मैंने नियमित जीवन बिताना आरम्भ कर दिया है। मैं सभा–सोसायटियों में व्याख्यान देने से बचता हूँ। बाजार और पार्टियों के खाने से दूर रहता हूँ और उपवास तो कभी नहीं करता। उपवास करने से अँतड़ियाँ वैसे ही कमजोर हो जाती हैं, जैसे तेज चलती हुई मोटर को सहसा रोकने से उसके पुर्जे खराब हो जाते हैं। पेट खराब हो तो कम खाना खाइये पर खाइये जरूर। बिलकुल खाना न छोड़िये।"

इतना कहकर वे अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रवती की प्रशंसा करते हुए बोले—"मेरे स्वास्थ्य का आधार मेरी पत्नी है। वे बराबर मेरे साथ रहती हैं और यात्रा तक में अंगीठी तथा थैला साथ बाँधे रहती हैं। ताकि मुझे पथ्य का खाना मिलता रहे। इस कारण मुझे कभी बाहर का खाना नहीं खाना पड़ता। रेल के डिब्बे में भी वे खाना पकाने की व्यवस्था कर लेती हैं।"

जब मैंने दिनचर्या के सम्बन्ध में पूछा तो वे कहने लगे—"चार बजे उठकर टहलने जाता हूँ। ६ बजे तक नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रातः काल का नाश्ता करता हूँ। पेय ही मेरा नाश्ता होता है। पतला हलुवा मेरे नाश्ते में रहता है। अकेला दूध मुझे नहीं पचता। आधा दूध और आधी चाय ठीक रहती है। दोपहर को भोजन, वह भी सादा। सायंकाल को ठंडी चीज नहीं लेता। बर्फ या खटाई को नहीं छूता। रात को फिर दलिया या दलिये की खिचड़ी। प्रातःकाल ७ बजे निश्चित रूप से काम में लग जाता हूँ और डेढ़-दो घण्टे लिखता हूँ। प्रातः ९ के बाद संसद या पत्र का कार्य करता हूँ। रात को १० बजे के बाद चाहे कुछ भी हो, जागता नहीं। ८ बजे खाना खा लेता हूँ और आराम करता हूँ। कमरे में अन्धेरा करके सो जाता हूँ। उस समय मित्र और परिवार के लोग भी मेरे स्वास्थ्य का ध्यान रखकर मुझे नहीं छेड़ते।"

नियमित लिखने की बात चलने पर मैंने उनसे पूछा—"आपने कौन-कौन-सी पुस्तकें लिखी हैं।"

उन्होंने कहा—"लिखना मेरी हाबी है। यदि मैं सार्वजनिक जीवन में आकर पत्र न निकालता तो बहुत लिखता। अब भी मैंने २४ पुस्तकें लिखी हैं। २२ साल की उम्र में नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी लिखी थी। उसके बाद प्रिंस विस्मार्क और गेरीबाल्डी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के जीवन-चरित्र लिखे। सन् २७ में जेल गया तो 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' ग्रन्थ लिखा। जेल-यात्रा के परिणामस्वरूप 'शाह आलम की आँखें', 'सरला की भाभी : तीन भाग', 'अपराधी कौन' और 'जमींदार' ये छः उपन्यास लिखे। पुस्तकें लिखने में मुझे बड़ा उत्साह रहता है। उस समय मुझे आर्थिक लाभ का ध्यान नहीं रहता। इसलिए मेरी पुस्तकों में से अधिकांश को दुबारा छपाने का ध्यान ही मुझे नहीं आता। आजकल मैं 'किरातार्जुनीय' के दो-चार श्लोकों का रोज अनुवाद करता हूँ। संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद मेरी दृष्टि में हिन्दी के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। छात्रावस्था में मैं संस्कृत और हिन्दी में कविता भी करता था। एक बार आचार्य पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने हमारी संस्कृत काव्य-रचना की परीक्षा भी ली थी। मेरी हिन्दी कविताओं का संशोधन पण्डित श्रीधर पाठक किया करते थे। गांधीजी की आश्रम भजना-वली में 'हे मातृभूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ' गाना मेरा ही लिखा हुआ है। लगभग ४० वर्ष से मैंने कविता करना छोड़ दिया है। मुझे अनुभव हुआ है कि मेरे लिए गद्य लिखना ही स्वाभाविक है।"

"क्या भविष्य में भी आप लिखने की सोचते हैं ?" मैंने पूछा।

"अवश्य" उन्होंने कहा—"लिखना, जैसा मैं कह चुका हूँ, मेरी हाबी है। गत वर्ष मैंने रघुवंश के आधार पर हिन्दी में सम्राट् रघु का जीवन-चरित्र प्रकाशित किया था। अब मैं 'किरातार्जुनीय' के आधार पर 'अर्जुन की घोर तपस्या' लिख रहा हूँ। साथ ही मैं भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के उदय और अस्त पर एक बड़ी पुस्तक भी लिख रहा हूँ। जो मेरी मुगल सम्राज्य सम्बन्धी पुस्तक के ढंग की होगी। ज्योतिषियों का कहना है कि मेरी आयु लगभग ९० वर्ष की होगी। इस हिसाब से अभी मैं ३० वर्ष तक लिखने का कार्य कर सकूँगा।"

समय पर्याप्त हो चुका था और मुझे यह विचार तंग-सा करने लगा था कि दो दिन से मैं एक वयोवृद्ध पत्रकार को कष्ट दे रहा हूँ, पर मन यह चाहता था कि अभी और बातें करूँ। इसलिए मैंने उनसे सफल पत्रकार बनने के विषय में एक प्रश्न किया—"आपकी दृष्टि में सफल पत्रकार कैसे बना जा सकता है ?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने बताया—"पत्रकार दो प्रकार के होते हैं, एक तो सर्वश्री गणेशशंकर विद्यार्थी, महात्मा गांधी और लोकमान्य जैसे मिशनरी पत्रकार, दूसरे आर्थिक दृष्टि से सफल पत्रकार। मेरी सम्मति में पत्रकार किसी भी प्रकार के हों, सफलता उन्हीं को मिलेगी, जो स्पष्ट और डाइरेक्ट लिखेंगे। अग्रलेख भी छोटा हो, एक या सवा कालम का। दो-ढाई कालम का अग्रलेख व्यर्थ है। लिखते समय पत्रकार को ग्राहक का हृदय पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि पत्रकार के लिए अपनी सम्मति की स्वतन्त्रता को बचाना भी आवश्यक है। क्योंकि ग्राहक ऐसे प्रभावशाली पत्रकार का आदर करते हैं, जो निर्भीकता से सत्य का समर्थन करे। तीसरी बात यह है कि वह जो सम्मति बनाये, खूब सोच-समझकर बनाये और अन्त तक उस पर दृढ़ रहे। कारण, वह जनता का सच्चा पथप्रदर्शक है और चंचल बुद्धि होने से वह जनता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का विश्वास खो बैठेगा। चौथी बात है, उसका निष्पक्ष होना। उसे किसी पार्टी का वकील नहीं बनना चाहिये। ऐसा करने से वह सन्तुलन खो देगा। और संतुलन खो देना पत्रकार की सफलता में सबसे बड़ी बाधा है। विदेशों में पत्रकार का स्थान मिनिस्टरों के बराबर माना जाता है। मैं तो उसे मिनिस्टर से भी ऊँचा मानता हूँ। क्योंकि मिनिस्टर सरकार की नीति से बँधा हुआ है और सम्पादक सर्वथा स्वतन्त्र रहता है। जो पत्रकार वकील की तरह चाहे जिस पार्टी का प्रचार करने लग जाता है, वह पत्रकारिता के स्तर को नीचा करता है। यदि यही होता रहा और पत्रकार की स्वतन्त्रता लुप्त हो गयी, तो पत्रकारिता की अन्त्येष्ठि समझनी चाहिए। मेरी सम्मति में सफल पत्रकार वही हो सकता है, जो निर्लोभी और तपस्वी हो। इसलिए तपस्या फलता का मूल आधार है।"

अचानक मेरी दृष्टि घड़ी की ओर चली गयी। ९ बज रहे थे। मुझे उनकी दिनचर्या का ध्यान आ गया। मैंने अपनी बातचीत बन्द कर दी। दो-दिन की बातचीत में इन्द्रजी ने राजनीतिक और पत्रकार जीवन की अनेक ऐसी घटनाएँ बतायीं, जो उनके चरित्र की महत्ता पर तो प्रकाश डालती ही हैं; साथ ही तत्कालीन भारतीय जीवन से भी उनका गहरा सम्बन्ध है। उसमें से दो घटनाएँ ऐसी हैं, जिनको मैं कभी नहीं भूल सकता। एक तो इन्द्रजी की एक डिप्टी कमिश्नर से मुठभेड़ से सम्बन्धित है। जिसमें अनेक मित्रों के समझाने पर भी उसकी कोठी पर मिलने नहीं गये और अपना सिर ऊँचा रखा क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों के पास न जाने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। दूसरी घटना का सम्बन्ध कांग्रेस से मतभेद हो जाने से है। इन्द्रजी निरपेक्ष अहिंसा में विश्वास नहीं रखते और अत्याचारी और आक्रमणकारी का सशस्त्र प्रतीकार करना अपना धर्म समझते हैं। लेकिन कांग्रेस की सदस्यता में पूरी अहिंसा की शर्त थी। एक बार कांग्रेस के फार्म पर हस्ताक्षर करते हुए इन्द्रजी ने फार्म पर यह टिप्पणी दे दी कि अपराधी को दण्ड देने या आततायी के सशस्त्र प्रतिरोध करने को मैं हिंसा या पाप नहीं मानता। यह मामला गांधीजी तक पहुँचा। गांधीजी ने दिल्ली-कांग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष को लिखा कि यदि इन्द्र का मतभेद केवल इतना ही है, तो वह कांग्रेस का सदस्य रह सकता है। क्योंकि ऐसा मतभेद तो बहुत-से कांग्रेसियों का है। यह व्यवस्था आने पर इन्द्रजी ने फार्म पर हस्ताक्षर कर दिये और अपना मतभेद लिखित रूप से प्रकट कर दिया। मैंने ऐसा अनुभव किया कि इन्द्रजी यदि अपने जीवन के अनुभवों को लिखें, तो राजनीतिक तथा पत्रकार-जीवन के विषय में अनेक उपयोगी बातें प्रकाश में आ सकती हैं। उनके संस्मरण बड़े काम के होंगे। मैंने तो उनसे चलती बार ऐसी प्रार्थना भी की और उन्हें विश्वास भी दिलाया है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जब इन्द्रजी के संस्मरण हिन्दी-जगत् को पढ़ने को मिलेंगे।"

× × ×

इसी वर्ष आप प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने गये। यह उसका दूसरा वार्षिक अधिवेशन था। इन दिनों देश का वातावरण बदल रहा था। स्वाधीनता आने के साथ देश-विभाजन भी हो रहा था। हिन्दी का प्रश्न भी तीव्र रूप में आया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अब हिन्दी की सीधी टक्कर अंग्रेजी से हुई। अब तक अंग्रेजी-पत्र इस टक्कर को बचाये हुए थे। इस वास्तविक प्रश्न को वे हिन्दी-बनाम उर्दू, हिन्दी बनाम हिन्दुस्तानी, आदि विविध रूपों में उलझा देते थे। लेकिन अब यह सम्भव नहीं रहा था। ऐसी कठिन परिस्थिति में दिल्ली ने इन्द्रजी सदृश सुलझे हुए और परखे हुए निष्ठावान् व्यक्ति के हाथ में बागडोर देकर दूरदर्शिताका परिचय दिया। इन्द्रजी ने संविधान-परिषद् को भाषा सम्बन्धी समस्या का हल करने में सब तरह से मदद दी और प्रान्तिक सम्मेलन के अध्यक्ष-पद का कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से किया। इससे हिन्दी-जगत् में दिल्ली की प्रतिष्ठा बढ़ी और दिल्ली के मत को हिन्दी-जगत् का मत माना जाने लगा। दिल्ली का सम्मेलन प्रान्तिक था, लेकिन इन्द्रजी के सभापति होने के कारण इसमें श्रद्धेय टण्डनजी, मुख्यमन्त्री श्री रविशंकर शुक्ल, पं० बालकृष्णशर्मा 'नवीन', ठाकुर छेदीलाल और विधान-परिषद् के अन्य अनेक सदस्यों ने भाग लिया। अतः इस प्रान्तिक सम्मेलन ने भी अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का रूप धारण कर लिया। यह सम्मेलन नवम्बर १९४८ में हुआ था। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मेरठ में दिसम्बर १९४८ सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन ने उसकी भूमिका का कार्य किया और उसके लिए मार्ग तैयार कर दिया। दिल्ली में किये गये निर्णय ही मेरठ में दुहराये गये।

सार्वदेशिक सभा के पुनः प्रधान। सत्यार्थ प्रकाश रक्षा समिति की जीत

२४ अप्रैल १९४९ को सार्वदेशिक सभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ। सर्वसम्मति से इन्द्रजी को आगामी वर्ष के लिए सभा का प्रधान चुना गया। सार्वदेशिक सभा के साथ इन्द्रजी का सम्बन्ध १९२४ से भी पहले तब से चला आ रहा था, जब डा०केशवदेव शास्त्री इसके मन्त्री थे। इन्द्रजी तब इसके उपमन्त्री थे। इन्द्रजी डॉ० केशवदेव शास्त्री के बाद आप इसके मंत्री चुने गये। १९२९ में आप कुछ काल के लिए इस पद से हट गये। बम्बई में 'नवराष्ट्र' का कार्य सँभाल देने के बाद आप जब दिल्ली आ गये, तो पुनः इसके मन्त्री चुने गये। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा की स्थापना करने का श्रेय आपके पिता महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) को था। इसे दृढ़ करने का कार्य भी उन्होंने ही किया था। परन्तु इसकी रक्षा करने और इसको उन्नत बनाने का कार्य इन्द्रजी ने किया। इसके द्वारा दक्षिण भारत में वैदिक धर्म के प्रचार क्षेत्र का विस्तार किया गया। प्रचारकों की कठिनाइयों को दूर किया गया। उनका वेतनमान भी बढ़ाया गया। इस सभा में ही आपके कार्यकाल में आर्यवीर-दल के संगठन को जीवित संगठन बनाया गया। सभा के मुखपत्र 'सार्वदेशिक' की ओर भी आप ध्यान देते रहे।

इन्द्रजी के कार्यकाल में सार्वदेशिक सभा ने जो सबसे बड़ा कार्य किया, वह था सिन्ध सरकार द्वारा सत्यार्थ प्रकाश पर लगाये गये अन्याय पूर्ण प्रतिबन्ध को दूर करवाना। इसमें सार्वदेशिक सभा को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस अवसर पर सभा की लड़ाई मुस्लिम लीग से हुई। कराँची में मुस्लिम लीग का मि० जिन्ना की अध्यक्षता में सम्मेलन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुआ। इसमें जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया वह था—"स्वामी दयानन्द की 'सत्यार्थ प्रकाश' नाम की किताब के कुछ अध्याय हजरत मुहम्मद और धर्मों के अन्य संस्थापकों के विरुद्ध आपत्तिपूर्ण, अपमानजनक और भड़कनेवाले, आक्षेपों से पूर्ण है। लीग सरकार से यह माँग करती है कि सरकार उन अध्यायों को गैरकानूनी घोषित करे। साथ ही सरकार उन अध्यायों को प्रकाशित करनेवालों पर इण्डियन पीनल कोड के आधीन मुकद्दमा चलाये, ताकि इस प्रकार के साहित्य का प्रकाशन भविष्य के लिए बन्द हो जाये।" मुस्लिम लीग का यह प्रस्ताव आर्य समाज के लिए एक जबर्दस्त ललकार था। सहसा २२ जून १९३३ को यह समाचार छपा कि सिन्ध सरकार सत्यार्थ-प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने का विचार कर रही है। इस समय सार्वदेशिक सभा के मन्त्री इन्द्रजी थे। सभा की ओर से तार देकर सिन्ध सरकार से कहा गया—"कृपा करके ऐसे अदूरदर्शितापूर्ण कदम को न उठाइये।" इसके साथ चेतावनी भी दी गयी थी कि अन्यथा कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ेगा। आर्य-जगत् की ओर से भी सिन्ध सरकार को इसी आशय के पत्र और तार भेजे गये। सिन्ध की मुस्लिम लीगी सरकार इससे घबरायी। उसने ८ जुलाई १९४३ को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा कि सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही करने का विचार उसका नहीं है। सार्वदेशिक सभा ने इस पर सन्तोष ही प्रकट नहीं किया, बल्कि सिन्ध सरकार को 'बहुत-बहुत धन्यवाद' देने की उदारता भी दिखायी।

सिन्ध सरकार की यह घोषणा मि० जिन्ना और मुस्लिम लीग को पसन्द नहीं आयी। इसकी प्रतिक्रिया उसके दिसम्बर १९४३ के अधिवेशन में स्वीकृति प्रस्ताव (जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है) के रूप में प्रकट हुई थी। आर्य-समाज ने मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को युद्ध की चुनौती माना। चुनौती मानकर ही सार्वदेशिक सभा ने सिन्धी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश का नया संस्करण छपवाया। सिन्ध के आर्य इस ग्रन्थरत्न को अपने साथ २४ घण्टे रखने लगे। कुछ ने सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश को कण्ठस्थ करने का बीड़ा भी उठाया।

मुस्लिम लीग के प्रस्ताव के उत्तर में सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा ने—इन्द्रजी इस समय सभा के मन्त्री थे—निम्न आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया :

"सत्यार्थ प्रकाश लाखों आर्यों की धर्म-पुस्तक है और इसने करोड़ों हिन्दुओं के लिए ही नहीं, वरन् भारत तथा विदेशों के निवासियों के लिए भी प्रकाश के स्रोत का कार्य किया है। लगभग ७० वर्षों से सत्यार्थ प्रकाश संसार के सामने है और भारत की समस्त भाषाओं और यूरोप की कई मुख्य-मुख्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और कहीं से भी कभी इसके किसी भाग की जब्ती का प्रश्न गम्भीरतापूर्वक उपस्थित नहीं किया गया।

'जिन आर्यों और अन्य व्यक्तियों ने सत्यार्थ प्रकाश से प्रकाश ग्रहण किया है, वे सब मदान्ध मुसलमानों द्वारा उत्तेजित होने पर भी इस लम्बे समय में अहिंसात्मक रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ के मान्य लेख जिस उदात्त भावना से प्रेरित थे, वह यह है कि संसार में शान्तिपूर्वक धार्मिक और सामाजिक सुधार का कार्य किया जाये।'

'सभा का यह भी विश्वास है कि इस्लाम और अन्य मतों के सम्बन्ध में सत्यार्थ प्रकाश में प्रकट की हुई सम्मति उचित आलोचना की सीमा का अतिक्रमण नहीं करती। इसके विपरीत कुरान में कई ऐसे वाक्य हैं, जो काफिरों अथवा गैरमुस्लिमों के विरुद्ध हिंसा का स्पष्ट रूप से प्रचार करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप आर्य-समाज के कई प्रसिद्ध नेता मुसलमानों की मदान्धता की बलि चढ़ चुके हैं। इस पर भी आर्य-समाज ने कुरान और हमीसों के ऊपर वर्णित वाक्यों के निकाले जाने की माँग करने का कभी विचार तक नहीं किया।"

प्रस्ताव में यह आशा प्रकट करने के साथ कि भारत सरकार मुस्लिम लीग की माँग मंजूर नहीं करेगी, कहा गया था—"अन्त में यह सभा अपनी पूर्व घोषणा को बलपूर्वक पुनः दोहराना चाहती है कि यदि दुर्भाग्यवश भारत सरकार ने सत्यार्थ-प्रकाश के विरुद्ध कोई निश्चय किया, तो आर्य और करोड़ों हिन्दू जिनमें सेना की सेवा में लगे हुए जाट और अन्य भी सम्मिलित हैं, अपने इस पवित्र धर्म-ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द की रक्षा के लिए सब प्रकार के त्याग और बलिदानपूर्वक उसका विरोध करने में विवश होंगे।"

इस प्रसंग में सार्वदेशिक सभा को ८० वर्ष के वयोवृद्ध संन्यासी महात्मा नारायण स्वामीजी के सेनापतित्व में कराँची में सत्याग्रह करना पड़ा। पाँच दिन यह चला और सिन्ध सरकार ने ग्रन्थ पर से प्रतिबन्ध हटा लिया। यह सत्याग्रह सिन्ध सरकार की १० अक्तूबर १९४६ की आज्ञा के विरोध में था, जिसमें १८९८ की धारा ९८ की अन्तर्गत सत्यार्थ प्रकाश के १४वें समुल्लास की कापियों, अनुवाद या उद्धरण जहाँ भी प्राप्त हों, जब्त करने का आदेश दिया गया था। इस नादिरशाही हुक्म ने सन्त व साधु स्वभाववाले डा० राजेन्द्र प्रसाद तक की शान्ति को भंग कर दिया था। आपने एक पत्र में लिखा—"मुझे आश्चर्य है कि सत्तर साल से प्रचलित एक धर्म पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगानेवाली यह आज्ञा कहीं उस व्यवहार का पूर्व रूप तो नहीं, जो लीग के शासन में मुसलमानों से भिन्न लोगों के साथ किया जायेगा।" डॉ० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा प्रकट किया गया भय मिथ्या नहीं निकला। सत्यार्थ-प्रकाश की रक्षा के वास्ते सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने 'सत्यार्थ प्रकाश' रक्षा-समिति का संगठन महात्मा नारायण स्वामीजी की प्रधानता में किया था, और इसके मंत्री इन्द्रजी थे। आर्य-समाज को नई दिशा दिखाने और उसको राष्ट्रीय पथ पर चलते रहने के लिए तैयार करने का काम इस अवसर पर इन्द्रजी ने ही किया।

सिन्ध सरकार ने अपना फरमान वापस ले लिया था, पर भोपाल के नवाब जल्दी माननेवाले न थे। नवाब भोपाल मुस्लिम लीग के संरक्षक और पालक थे। भोपाल रियासत के सीहोर के नाजिम ने भी सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने की १९४७ में मूर्खता की थी। सार्वदेशिक सभा ने जब इस मामले को अपने हाथ में लिया तो नवाब

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भोपाल ने सीहोर के जिला मजिस्ट्रेट को पुराना हुक्म वापस लेने को बाध्य किया। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश पर किया गया दूसरा हमला भी व्यर्थ हो गया। इन्द्रजी की सावधानी और प्रबल शान्ति नीति के कारण समाज की किश्ती पार हो गयी।

सार्वदेशिक सभा ने पुनः इन्द्रजी को ही प्रधान चुनते हुए इन सब बातों को ध्यान में रखा और विश्वासपूर्वक उनको ही अपनी नाव का प्रधान मल्लाह बनाया।

उन्हीं दिनों गुरुकुल कांगड़ी का कार्य भी आप कर रहे थे।

गुरुकुल कांगड़ी का पुनः मुख्याधिष्ठाता नियुक्त होने पर आपने गुरुकुल कांगड़ी की स्वर्ण-जयन्ती को सफल बनाने का अथक उद्योग किया। स्वर्ण-जयन्ती को सफल बनाने और धन-संग्रह करने के उद्देश्य से आप आगरा, मथुरा, बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों पर भी गये।

इन सब सार्वजनिक दायित्वों के साथ आप परिवार के दायित्व को भी पूरी तरह निभाते रहे।

एक निष्ठवान् हिन्दू के लिए कन्यादान करना पुण्य का कार्य सदियों से माना जाता रहा है। ४ मार्च १९४२ को जब इन्द्रजी की छोटी कन्या पुष्पा का विवाह सम्पन्न हुआ, तो इन्द्रजी ने अनुभव किया कि सम्पूर्ण पारिवारिक दायित्व को उन्होंने पूर्ण कर लिया। उन्होंने बरात का स्मरण डायरी में इन शब्दों में अंकित किया है। "यह एक बड़ी जिम्मेदारी थी, जिससे मैं मुक्त हो गया। परमात्मा की परम दया है कि उसने मुझे इस कर्तव्य पालन के योग्य बनाया। मेरे इस कार्य में सहधर्मिणी चन्द्रवती ने जो सहयोग दिया है, उसे मैं कभी भुला नहीं सकता। वह मुझे जीवन भर स्मरण रहेगा और मार्गदर्शक बनेगा। दोनों ओर के परिवार ने भी अच्छा साथ दिया। विवाह सकुशल हो गया। मित्रों और बन्धुओं ने खूब हाथ बँटाया। मैं ऋण से उऋण हो गया। इस संस्कार की शान और सफलता का श्रेय अधिकतर चन्द्रवती को है। उसके अनथक परिश्रम के बिना यह शुभ कार्य पूर्ण न हो सकता था। यह बात मैं जीवन भर नहीं भूल सकता।" इन्हीं दिनों हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने हैदराबाद के अधिवेशन में इन्द्रजी को 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया। उन्हें यह उपाधि उनकी अनुपस्थिति में ही प्रदान की गयी।

इन्हीं दिनों आप संसद के सदस्य चुने गये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल का स्वर्ण-जयन्ती उत्सव

इन्द्रजी के प्रयत्न से गुरुकुल कांगड़ी का स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव १ मार्च १९५० से ६ मार्च १९५० तक बड़ी सफलता से मानाया गया। इस मौके पर राष्ट्रपति गुरुकुल पधारे। राष्ट्रपति ने दीक्षान्त भाषण दिया। इन्द्रजी को सन्तोष था कि बहुत सफल उत्सव हुआ। यह मुख्य रूप से इन्द्रजी के ही प्रयत्न का फल था। चारों ओर से उन्हें इस सफलता पर बधाइयाँ मिलीं। इस हर्ष को आपने अपनी डायरी में लिखा--"परमात्मा का धन्यवाद है कि मैं इस ऋण के कुछ भाग को उतारने में सफल हुआ। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे ऋण का शेष भाग उतारने में भी सफलता प्राप्त हो।"

इस अवसर पर इन्द्रजी ने 'गुरुकुल कांगड़ी के ६० वर्ष' नाम से एक पुस्तक भी लिखी, तथा प्रकाशित की। इसमें गुरुकुल कांगड़ी के विकास का इतिवृत्त दिया गया है। झोंपड़ियों से प्रारम्भ होकर गुरुकुल भवनों तक कैसे पहुँचा, यह इस पुस्तक में पण्डितजी ने अपनी प्रांजल भाषा में लिखा है। गुरुकुल की मावी योजनाएँ बनाते हुए आपने लिखा--"यह तो हुआ गुरुकुल के ६० वर्षों का सिंहावलोकन। जब हम उसके भविष्य की ओर दृष्टि डालते हैं, तो हमें बहुत विस्तृत क्षेत्र दिखायी देता है। सबसे पहला काम तो यह है कि इस समय जो गुरुकुल विश्वविद्यालय का ढाँचा तैयार हुआ है, उसे पूर्णता तक पहुँचाया जाये। प्रत्येक विभाग में उन्नति की गुंजाइश है। विद्यालय की शिशु श्रेणियों की व्यवस्था बड़ी श्रेणियों से अलग करना आवश्यक है, ताकि उन्हें माता की गोद-सा विश्राम मिल सके। शेष श्रेणियों का प्रबन्ध तथा शिक्षा को उन्नत करके गुरुकुल विद्यालय को अन्य गुरुकुलों तथा स्कूलों के लिए आदर्श बनाने का यत्न होना चाहिए। वेद, कला, विज्ञान तथा वृत्ति के महाविद्यालयों की शिक्षा को उन्नत करना चाहिए। वे शिक्षार्थियों के लिए आकर्षण के केन्द्र बन जायें। भवन बहुत बन चुके हैं, अब भी बन रहे हैं और आगे भी बनते रहेंगे। परन्तु वास्तविक कर्तव्य यह है कि गुरुकुल के मूल सिद्धान्त की रक्षा करते हुए शिक्षा के सार को तथा उपयोगिता को अधिकाधिक बढ़ायें, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ऊँची योग्यतावाले गुरुओं का संग्रह आवश्यक है। हमें उसका भी प्रयत्न जारी रखना चाहिए।"

इस विवरण को समाप्त करते हुए पण्डितजी ने लिखा--"एक विभाग खुलना शेष है। गुरुकुल की प्रारम्भिक नियमावली में उसकी चर्चा है। विद्या सभा ने १९४३ में शिक्षा की जो योजना स्वीकार की थी, उसमें शिल्प तथा उद्योग की शिक्षा को भी स्थान दिया था। गुरुकुल के संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ने पुरानी भूमि में कला-भवन की स्थापना करके शिल्प शिक्षा का आरम्भ भी कर दिया था। परन्तु बाढ़ से अन्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इमारतों के साथ कला-भवन भी बह गया। नयी भूमि में अभी तक शिल्प की शिक्षा आरम्भ करने के लिए कोई पग नहीं उठाया जा सका। आशा है कि अवसर अनुकूल होने पर विद्या सभा की स्वीकृति से गुरुकुल के कार्यकर्ता कुछ समय पश्चात् शिल्प शिक्षा की भी व्यवस्था कर सकेंगे।"

यह बताता है कि गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता पण्डित इन्द्रजी विद्यावाचस्पति की गुरुकुल की उन्नति के लिए कौन-सी नयी योजनाएँ थीं। शिल्प महाविद्यालय और इंजीनियरिंग महाविद्यालय की गुरुकुल में स्थापना होनी अभी शेष है। पण्डितजी की यह मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। सम्भवतः इसी का विचार करके उन्होंने यह लिखा था— "ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे ऋण का शेष भाग उतारने में भी सफलता प्राप्त हो।"

प्रधान पद का त्याग

२३ अप्रैल १९५० के चुनाव में इन्द्रजी पुनः सार्वदेशिक सभा के प्रधान निर्वाचित हुए, किन्तु आपने यह कहकर इस पद को ग्रहण करने से इनकार कर दिया कि "मैं प्रधान पद पर आरूढ़ न रहूँगा। मेरे हाथ में अन्य कार्य भी हैं। वास्तविक कारण था उन्हें गुरुकुल, संसद और 'वीर अर्जुन' के कार्यों से अवकाश न मिलता था।

वस्तुतः इन्द्रजी के लिए यह तीन कार्य भी अधिक सिद्ध हुए। फलतः ८ मई को 'वीर अर्जुन' की व्यवस्था में भारी परिवर्तन हुआ। मैनेजिंग डाइरेक्टर पद से इन्द्रजी ने त्याग-पत्र दे दिया। इन्द्रजी ने यह परिवर्तन अपने कार्य की सुविधा, और 'वीर अर्जुन' की उन्नति के लिए ही किया था। आपको आशा थी कि इसका परिणाम भला ही होगा। परन्तु, उनकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध नहीं हुई।

आपकी शक्ति गुरुकुल के कार्य-संचालन में ही अधिक लगती रही।

दिल्ली में रहते हुए भी इन्द्रजी का ध्यान गुरुकुल की ओर लगा रहता था। जब कभी गुरुकुल के आचार्य ने बुलाया, तभी आपको गुरुकुल जाना पड़ा। आपकी पत्नी चन्द्रवती बहुत बीमार थीं, तो भी आपको कई बार जाना पड़ा। आपके कुशल निर्देशन में गुरूकुल की प्रत्येक समस्या का समाधान होता रहा।

गुरुकुल के लिए आपके हृदय में सदा तीव्र अनुराग रहा। १६ जुलाई १९५० को जब दिल्ली में विद्या-सभा का अधिवेशन हुआ, तब इसी कारण विद्या-सभा ने सर्वसम्मति से फिर इन्द्रजी को ही पाँच वर्षों के लिए मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया। ये पाँच वर्ष १६–७–५० से १५–७–५५ तक की अवधि के थे। इन्द्रजी इस दायित्व को अस्वीकार न कर सके। इन्द्रजी की आयु उस समय ६० वर्ष की थी। उन्हें विश्राम चाहिए था, किन्तु गुरुकुल के हित में उन्होंने अपने स्वास्थ्य की चिन्ता का भी त्याग कर दिया।

१९५१ में इन्द्रजी का एक पारिवारिक मनोरथ पूरा होने से उन्हें बड़ा सन्तोष मिला। सितम्बर १९३० में उनके मकान की बुनियाद रखी गयी थी। १९५१ में मकान तैयार हो गया। इस अवसर पर हुए मांगलिक यज्ञ की चर्चा करते हुए इन्द्रजी ने डायरी में लिखा—"यह कार्य मेरी जीवन-संगिनी चन्द्रवती की प्रेरणा का परिणाम था। और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसकी पूर्ति में उसका अथक परिश्रम मुख्य साधन बना। इस कारण मकान का नाम 'चन्द्रलोक' रखा है। इसके साथ मेरे जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना हुई। जवाहर नगर सब्जी मण्डी में मेरा मकान बनकर तैयार हो गया। ७ अक्तूबर १९५१ रविवार के प्रातः ८ बजे उसका मांगलिक यज्ञ हुआ। सभी ने मुझे और चन्द्र को इस मकान के लिए बधाई दी। यह मकान बन गया--यह परमात्मा की कृपा का ही फल है।"

कष्टदायक बड़ी दुर्घटना

१९५१ का वर्ष इन्द्रजी के लिए बड़ा शुभ रहा, किन्तु वर्ष के अन्तिम दिनों में एक बड़ी दुर्घटना हो गयी। हुआ यह कि २९ दिसम्बर १९५२ को प्रातःकाल ९ बजे घर में आपका पैर फिसल गया। गिरकर कुल्हेड़ी हड्डी (हिप बोन्स) टूट गयी। हड्डी टूट जाने पर भी इन्द्रजी हिले-डुले नहीं। जहाँ गिरे थे, वहीं शान्ति से बैठे रहे। इस समय आपने जो धीरज और अपूर्व सहन-शक्ति दिखायी, उसे देखकर सभी डाक्टर आश्चर्य चकित रह गये। जोशी के अस्पताल में पण्डितजी को ले जाया गया। जोशी के अस्पताल पहुँचने पर इन्द्रजी की सहन-शक्ति की और एक बार परीक्षा हुई।

डाक्टरों ने आपके फेफड़ों की कमजोरी के कारण क्लोरोफार्म सुँघाने से मना कर दिया था। समस्या थी कि बिना निःसंज्ञ किये दो हड्डियों के बीच गरारी कैसे डाली जाये। इन्द्रजी ने डाक्टरों से कहा, आप अपना काम कीजिये। मेरे मुख पर रूमाल डाल दीजिये। ऐसा ही किया गया। बिजली की धारा चली, हड्डियों के बीच बर्मे को चलाया गया, हड्डियों में छेद हो गया। इन्द्रजी ने उफ् तक नहीं की। छेद हो जाने पर इन्द्रजी की टाँग छत से लटका दी गयी। डॉक्टरों ने जब हड्डी में छेदने का काम समाप्त किया, तब इन्द्रजी ने डॉ० खेड़ा से कहा, बस इतनी ही बात के लिए आप चिन्ता कर रहे थे। हड्डी में छेद करवाना और गरारी डलवाना अत्यन्त असाधारण बात है। चेतनावस्था में यह नहीं किया जाता। परन्तु इन्द्रजी ने चेतनावस्था में यह चिकित्सा कार्य होने दिया। चिकित्सा-जगत् में यह एक बड़ा और अद्भुत कार्य माना गया। इस समय की असह्य वेदना को इन्द्रजी ने जिस धैर्य से सहा, उसने इन्द्रजी के सब परिचितों को और वहाँ उपस्थित लोगों को उनकी महानता का विश्वास दिला दिया। उनका अपूर्व धैर्य और उनकी अपूर्व सहन-शक्ति सबके लिए प्रेरणादायिनी बनी।

छत से टाँग टँगी होने पर भी इन्द्रजी से मिलने के लिए आनेवाले सज्जनों के सब प्रश्नों का विस्तार से जवाब देते थे। और प्रश्नकर्ता को सन्तुष्ट करके ही भेजते थे। अस्पताल में इन्द्रजी लगभग दो मास रहे। आपकी स्थिर मनोवृत्ति और आपके असाधारण संयम ने आरोग्य-लाभ करने में बहुत सहायता दी। प्रारम्भिक सावधानता के कारण हड्डी के सेट होने में कठिनाई नहीं हुई।

रोग-काल के संस्मरणों में आपने डायरी में लिखा--"इस रोग में सेवा का बोझ फिर प्रिय चन्द्र पर पड़ा। इसका आभार मैं कभी नहीं भूल सकता।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन दिनों तत्कालीन राष्ट्रपति "डा० राजेन्द्रप्रसाद ने पत्र तथा गुलदस्तों की भेंट द्वारा सहानुभूति दिखलायी ।"

श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन अस्पताल में देखने आये ।

सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ने पग-पग पर क्रियात्मक सहानुभूति और अपनापन दिखाया ।

नगर और बाहर के आर्यजनों तथा गुरुकुलवासियों ने गहरी सहानुभूति प्रकट की । किन्तु इन्द्रजी लिखते हैं--"राजनीतिक साथियों ने उपेक्षा दिखायी, शायद चुनाव के कारण ।"

२२ फरवरी १९५२ को इन्द्रजी का अस्पतालवास समाप्त हुआ । लेकिन इस समय भी आप उठकर खड़े नहीं हो सकते थे । तथापि आपने अखिल भारतीय संस्कृति-सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष होना मान लिया । दिल्ली में संस्कृति-सम्मेलन डॉ० भगवान्दास की अध्यक्षता में हुआ । इन्द्रजी स्ट्रेचर पर सम्मेलन में पहुँचे । इन्द्रजी की इस कर्तव्य-परायणता से सब कार्यकर्ता बहुत प्रभावित हुए और सम्मेलन के स्थायी संगठन का प्रधान इन्द्रजी को चुना गया ।

२९ मार्च १९५२ को इन्द्रजी के राज्य-परिषद् का सदस्य चुने जाने की घोषणा गजट में प्रकाशित हुई ।

जनसत्ता का सम्पादन और त्याग-पत्र

राज्य परिषद् के सदस्य चुने जाने के साथ ही इन्द्रजी ने अपने ऊपर एक और जिम्मेदारी ले ली । यह थी, "जनसत्ता दैनिक के सम्पादन की । ६२ साल की आयु में आपने यह सेवा क्यों ग्रहण की और किन अवस्थाओं में की, इसका उत्तर स्वतः इन्द्रजी ने इस प्रकार दिया है । पण्डितजी किसी पूँजीपति के पत्र में सम्पादक होना नहीं चाहते थे । उन्होंने स्वतः लिखा है---"मैं जाल में कैसे फँसा, इसकी कहानी सुनिये :

"मुझे चारपाई पर लेटे चार महीने बीत गये थे । चिकने फर्श पर पैर फिसल जाने से मेरी जाँघ की हड्डी टूट गयी थी, जिसने मुझे लगभग ३ मास तक दिल्ली के प्रसिद्ध जोशी अस्पताल में और एक मास तक घर पर लेटने के लिए बाध्य कर दिया । अभी मैं चारपाई से उठकर अच्छी तरह घूमने-फिरने भी नहीं पाया था कि एक दिन मेरे एक निकट सम्बन्धी महोदय का टेलीफोन आया ।"

"निकट सम्बन्धी महोदय ने टेलीफोन द्वारा मुझे सूचना दी--समाचार पत्रों के एक प्रसिद्ध स्वामी और संचालक एक नये हिन्दी पत्र के लिए प्रधान सम्पादक की तलाश में हैं । मैंने उन्हें आपका नाम सुझाया है, जिसे उन्होंने पसन्द भी कर लिया है । सम्बन्धी महोदय ने मुझसे आग्रहपूर्वक कहा कि ये पत्र-स्वामी बहुत सज्जन हैं, राष्ट्रीय विचारों के हैं और बात के धनी हैं। आप अपने स्वभाव के अनुसार उनके प्रस्ताव को रद्द न कर दीजियेगा। मैं उन्हें लेकर आपके पास आऊँगा ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"अगले दिन वे अपने मित्र पूँजीपति महोदय को लेकर मेरे मकान पर आये। मैं सहारा लेकर चारपाई से उठा और बातचीत करने के लिए कुर्सी पर बैठा।

"लगभग डेढ़ घण्टे तक बात हुई। पत्र स्वामी ने अपना अभिप्राय यह बतलाया कि वह दिल्ली में अपने अंग्रेजी अखबार के साथ हिन्दी का एक ऐसा दैनिक पत्र निकालना चाहते हैं, जो सर्वसाधारण का प्रिय बन जाये। उसकी ग्राहक संख्या कम-से-कम ३० हजार तक पहुँच जाये। पत्र की नीति राष्ट्रीय हो और भाषा सरल होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि मैं आपकी योग्यता और नीति से परिचित हूँ, इस कारण चाहता हूँ कि आप इस आयोजन में मेरी सहायता करें। मेरा यह प्रयत्न हिन्दी-जगत् के लिए लाभदायक होगा।

"मैंने पत्र स्वामी के सम्मुख अपने विचार स्पष्ट शब्दों में रख दिये। मैंने जो कुछ कहा उसका सारांश यह था कि—

"मैं ३० वर्ष से अधिक समय तक दैनिक पत्रकारिता का काम करता हुआ ऊब चुका हूँ। अब शेष समय स्थिर साहित्य की सेवा में लगाना चाहता हूँ। विशेष रूप से इस समय तो शारीरिक अस्वस्थता के कारण किसी बन्धन में बँधने की मेरी इच्छा नहीं है। फिर भी यदि हिन्दी-पत्रकारिता का हित समझकर मैं आपको सहयोग देना चाहूँ तो उसकी कुछ शर्तें हैं। सबसे पहली शर्त तो यह है कि मैं पत्र की सम्पादकीय नीति में सर्वथा स्वतन्त्र रहूँगा। मैं उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहूँगा। जिस दिन मेरी नीति में हस्तक्षेप किया जायेगा, उसी दिन पत्र से सम्बन्ध विच्छेद कर लूँगा।

"दूसरी शर्त यह कि मुझ पर पत्र कार्यालय में समय का कोई बन्धन न होगा। संसद, गुरुकुल तथा अन्य जिम्मेदारियों के कारण कार्यालय में नहीं बैठ सकूँगा, तो भी सम्पादकीय विभाग की पूरी जिम्मेदारी मेरी होगी।

"इन दो शर्तों के साथ मैं केवल दो वर्ष तक नया पत्र चलाने में सहायता दूँगा और मैं विश्वास रखता हूँ कि यदि प्रेस और प्रबन्ध विभाग ने पूरी सहायता दी, तो दो वर्ष में पत्र की ग्राहक संख्या ३०,००० तक पहुँच जायेगी।"

जनसत्ता को लोगों ने कितना पसन्द किया और पत्र स्वामी की आशाएँ कितनी पूरी हुईं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक वर्ष के अन्दर-अन्दर पत्र १५००० हजार से ऊपर छपने लगा और उसकी ख्याति उसी कार्यालय से निकलनेवाले अंग्रेजी दैनिक से अधिक हो गयी।

यह होने पर भी दो साल पूरे होने से पहले ही पण्डितजी को पत्र क्यों छोड़ना पड़ा? इसका उत्तर इन शब्दों में पण्डितजी ने दिया है—"मेरे पैतृक और शिक्षा जनित संस्कारों के कारण एक अड़चन बनी रही। वर्ष भर मैंने कभी पत्र-स्वामी की कोठी पर पेशी न दी। कार्यालय के छोटे-बड़े कर्मचारियों से आशा की जाती थी कि वे सेठजी के दिल्ली आने पर उनकी कोठी पर हाजिरी देंगे, परन्तु मैंने उस नियम का पालन नहीं किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे कमरे का द्वार सभी के लिए खुला था। पत्र-स्वामी, जनरल मैनेजर, सम्पादक और

चपरासी सभी वहाँ आ सकते थे और बात कर सकते थे । मैं उसे पर्याप्त समझता था । परन्तु व्यापारिक लोकाचार की दृष्टि से वह दोष समझा गया ।

"विस्फोट इस प्रकार हुआ । मैंने अपने सम्पादकीय लेख में बम्बई सरकार की एक आज्ञा की कड़ी आलोचना की । पत्र स्वामी महोदय की उस आज्ञा से विशेष अनुकूलता थी । मेरा लेख पढ़कर उन्होंने हेड क्वाटर्स से दिल्ली के कारोबारी जनरल मैनेजर को फोन द्वारा आज्ञा दी कि वह मुझे सम्पादकीय लेख को वापस लेने के लिए कहें । उस बेचारे ने कुछ घबराते हुए अपने मालिक का सन्देश मुझे टेलीफोन से ही कह दिया । मैंने उन्हें उत्तर दे दिया कि मैंने जो लेख लिखा है, वह ठीक समझकर लिखा है, उसे वापस लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । मैं पत्र की सम्पादकीय नीति का निर्णय करने में स्वतन्त्र हूँ । उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहता ।

"जब मेरा उत्तर पत्र-स्वामी महोदय तक पहुँचा तो वे तिलमिला गये । मुझे उनका पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मुझसे अपना मतभेद सूचित करते हुए स्पष्टीकरण की माँग की । बात को जरा हलका करने के लिए कुछ अप्रसांगिक चीजें भी लिख दीं । परन्तु मुख्य बात नीति सम्बन्धी मतभेद की ही थी ।

उस समय पूँजीपति पत्र-स्वामी की मनोवृत्ति का नग्न रूप मेरी आँखों के आगे आ गया । मैंने १ जुलाई १९५३ को जनसत्ता का सम्पादन छोड़ते हुए सूचना दी कि 'आपने आश्वासन के विरुद्ध मेरी सम्पादकीय-नीति में हस्तक्षेप करने का यत्न किया है । इस कारण मैं आज से पत्र का कार्य छोड़ रहा हूँ । मैं न पत्र के लिए कुछ लिखूँगा और न कार्यालय में जाऊँगा ।'

'मेरे इस निर्णय को सुनकर बेचारे मैनेजिंग डायरेक्टर सहसा घबरा गये । उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि चाहे मैं पत्र के लिए लिखना छोड़ दूँ, पर अपना नाम कम-से-कम पत्र पर छपने दूँ । अन्यथा पत्र की ग्राहक संख्या गिर जायेगी । उनकी परेशानी पर मुझे सचमुच दया आ गयी और मैंने उन्हें महीने भर तक अपना नाम पत्र-सम्पादक के तौर पर छापने की अनुमति दे दी ।'

'मुझे इस कार्य से मुक्त होने के कारण बहुत सन्तोष मिला । मेरी आत्मा पर बोझ न पड़ा और गुरुकुल तथा साहित्यिक कार्य के लिए अधिक समय मिला ।'

जनसत्ता से पण्डितजी को हटाने के लिए प्रयत्नपूर्वक कोशिश की गयी थी । क्योंकि जनसत्ता के लेखों के आधार पर तत्कालीन सूचना-प्रसार मन्त्री द्वारा प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के पास पण्डितजी के बारे में शिकायत की गयी थी । इसका पता इन्द्रजी को तब चला, जब इन्द्रजी के ही शब्दों में "मुझे कांग्रेस के सेक्रेटरी श्री बलवन्तराय मेहता (स्व०) का पत्र मिला, जिसमें जवाबतलबी की गयी थी । (पण्डितजी राज्य परिषद् के सदस्य थे और कांग्रेस पार्टी के एक सदस्य) मैं ५ जुलाई को मेहताजी से मिला, तो उन्होंने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि अब कोई बात शेष नहीं रही । मैं पत्र लिखकर नेहरूजी का सन्तोष करा दूँगा ।" इसके बाद भी पण्डितजी का मन शान्त नहीं हुआ । उनके मन में संशय बना रहा । क्योंकि पण्डितजी ने लिखा है—'शायद मामला अभी शान्त नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुआ । ये लोग अभी हाथ-पैर मारेंगे । परन्तु उससे मुझे कोई डर नहीं है । सत्य को किसी से डरना नहीं चाहिए ।'

गुरुकुल कार्य में प्रगति

उन दिनों राज्य सभा की सदस्यता के साथ-साथ गुरुकुल का काम भी चल रहा था । गुरुकुल को सरकारी मान्यता प्राप्त कराने के सिलसिले में दिल्ली के शिक्षामन्त्रालय और लखनऊ के अनेक चक्कर इन्द्रजी ने लगाये ।

इन्द्रजी के जीवन के अन्तिम दस वर्ष अत्यधिक कार्य व्यस्तता के रहे । इन सब कार्यों का केन्द्रविन्दु गुरुकुल ही रहा । आपके लिए राज्य सभा की सदस्यता की उपयोगिता भी गुरुकुल की अभिवृद्धि के साधन रूप में ही थी । राज्य-सभा की प्रथम कार्यावधि समाप्त होने के समय इन्द्रजी की मानसिक स्थिति का चित्र उनकी डायरी में अंकित निम्न शब्दों से मिलता है ।

"राज्य सभा का मेरा कार्य २ अप्रैल १९५८ को समाप्त हो गया । दो वर्ष पार्लमेण्ट के (तब विधान सभा ही पार्लमेण्ट का काम करती थी) और ६ वर्ष राज्य सभा के ये वर्ष इस प्रकार के अनुभवों के लिए पर्याप्त थे । मेरे लिए तो ये अनुभवों के ८ वर्ष थे । उनका क्रियात्मक मूल्य था—केवल गुरुकुल का परिवर्धन । उसमें मुझे पर्याप्त सफलता मिली ।"

"देश की जैसी राजनीतिक दशा है, उसकी दृष्टि से राज्य सभा या लोक-सभा की सदस्यता केवल एक शोभा है । कुछ लोगों के लिए वह रोजगार भी है । विशेषत: उनके लिए जो मिनिस्टरी आदि की तलाश में हों । सफलता पाने के लिए खुशामद चाहिए और अपने विचारों को दवाने की प्रवृत्ति भी चाहिए । मैं इसे ईश्वर की कृपा समझता हूँ कि मैं उस परीक्षा से अछूता निकल आया हूँ । गुरुकुल की स्थिति बहुत कुछ स्थिर हो चुकी है । मेरे अनुभवों का भण्डार भी भर गया है । अब मैं अधिक स्वतन्त्रता से लिख-बोल और कर सकता हूँ ।"

साहित्य रचना

१९५५ के आरम्भ (२२–१–५५) को इन्द्रजी ने अपने साहित्यिक कार्यक्रम का जो लेखा तैयार किया था वह दर्शनीय है —

"आजकल निम्नलिखित पुस्तकें लिख रहा हूँ:"

(१) ईशोपनिषद् भाष्य, (२) आर्य समाज का इतिहास (दूसरा भाग), (३) भारत में ब्रिटिश राज्य का उदय और अस्त ।

पत्र पत्रिकाओं में लेख भी भेजता रहता हूँ ।

इन्द्रजी ने अकबर से लेकर लार्ड माउण्ट बेटन तक के भारत का इतिहास लिखा है । यह सम्पूर्ण इतिहास ७ खण्डों में है । कहानी कहने के टेक पर ऐतिहासिक विश्लेषण और उत्थान-पतन की गाथा लिखी है । यह कार्य ही अपने आप में इन्द्रजी को हिन्दी-जगत् में अमरता प्रदान करने के लिए पर्याप्त है । इसके अतिरिक्त और जो सार्वजनिक सेवा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का कार्य इन्द्रजी कर रहे थे, बराबर चल रहा था। अपनी डायरी में आप आत्मनिरीक्षण करते रहते थे। वहीं आपने लिखा :

१. गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता हूँ ।
२. भारतीय राज्य-सभा का सदस्य हूँ।
३. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यकर्ता प्रधान हूँ ।
४. युनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में सलाहकार के तौर पर बुलाया जाता हूँ।
५. भारत शिक्षा मन्त्रालय की विश्व कोष परामर्श समिति का सदस्य हूँ ।

ये सब कार्य समय को पूरी तरह भरने के लिए पर्याप्त है । स्वराज्य होने के पश्चात् अन्य सब कार्यों की अपेक्षा सांस्कृतिक कार्य ही मेरे लिए सर्वोत्तम है ।

स्पष्ट है कि इन्द्रजी अपने शान्त और गम्भीर स्वभाव के कारण राजनीति में रहने के लिए उत्सुक नहीं थे। यदि उसकी मध्य धारा में थे, तो भारत की पराधीनता के कारण। जब लक्ष्यपूर्ण हो गया, तब उससे उनको अलग होने में और अपना स्थान खाली करने में कोई ऊहापोह नहीं करना पड़ा। उनकी अनासक्ति कायम रही । शिक्षा और साहित्य के निर्माण की ओर उनकी अभिरुचि प्रारम्भ से ही थी, और अब वे अपने चिरवांछित पथ पर आ रहे थे, यह उनको सन्तोष था ।

गुरुकुल-सेवा समर्पित जीवन

गुरुकुल की आर्थिक स्थिति सुधारने और गुरुकुल की हीरक-जयन्ती को सफल बनाने के लिए पण्डितजी ने १९५४ और १९५९ में पश्चिमी और दक्षिणी भारत का दौरा किया। ग्वालियर, बम्बई, हैदराबाद गये। हैदराबाद में पण्डितजी श्री विनायक राव विद्यालंकार की सहायता से १३ हजार रुपया संग्रह कर सके।

इन्द्रजी के अन्तिम वर्षों में एकमात्र चिन्ता का विषय था गुरुकुल। गुरुकुलको स्थिरता प्रदान हो, इसके लिए वह कितने अधीर थे, यह उनकी डायरी के निम्न वाक्यों से व्यक्त होता है। "मेरे सामने सबसे बड़ा काम गुरुकुल की स्थिति को यथा सम्भव स्थिर और सम्मानित कर देना है। इस कार्य के लिए दो वर्ष पर्याप्त (२३ मई १९५८ को यह लिखा गया है।) होने चाहिएँ । १९६०–६२ में गुरुकुल की हीरक-जयन्ती मनायी जाये—— ऐसा विचार है। तब तक गुरुकुल की मान्यता तथा आर्थिक स्थिति ठीक हो जायगी। मेरा गुरुकुल के मुख्याधिष्ठातृत्व का कार्यकाल भी उसी वर्ष समाप्त होगा। परमात्मा मुझे अपने लक्ष्य को पूरा करने के योग्य एकाग्रता और शक्ति प्रदान करे।"

चौथी बार गुरुकुल का मुख्याधिष्टातृत्व पण्डितजी ने क्यों स्वीकार किया, यह उपर्युक्त शब्दों से प्रकट है। वस्तुतः इन्द्रजी अपने शारीरिक स्वास्थ्य को देखते हुए पहले चौथी बार गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता होने के लिए तैयार नहीं थे। अपनी मनःस्थिति उन्होंने इन वाक्यों में व्यक्त की है :——

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"दि० ११ अक्तूबर, १९५४ को मैं गुरुकुल गया था। वहाँ से लौंटकर मैं और चन्द्र दोनों बहुत बीमार हो गये। मुझे कई वर्षों के पश्चात् कालिक के दौरे हो गये। गुरुकुल के कार्य के कारण ही मैं कई वर्षों से कहीं पर्वत पर स्वास्थ्यसुधार के लिए नहीं जा सका। आगामी वर्ष मेरे गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद पर कार्य करते हुए १५ वर्ष पूरे हो जायेंगे। स्वास्थ्य तथा अन्य सब कारणों से भी निश्चय कर लिया है कि अब गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता नहीं बनूंगा। इतनी सेवा बहुत है।"

'इतनी बहुत है' यह मानते हुए श्री पण्डितजी २६-६-६० को हुई विद्या-सभा की बैठक में पुनः मुख्याधिष्ठाता निर्वाचित किये गये। २६-६-६५ के वास्ते मुख्याधिष्ठाता बनते हुए पण्डितजी ने कुछ आनाकानी भी नहीं की और गुरुकुल की सेवा में अपना शेष जीवन अर्पित कर दिया। काल की ओर से दी जा रही चेतावनी की उन्होंने उपेक्षा कर दी। गुरुकुल के प्रति उनका अत्यधिक अनुराग ही उन्हें चौथी बार भी मुख्याधिष्ठाता बनने के लिए बाध्य कर रहा था।

इन्द्रजी ने सार्वदेशिक-सभा का प्रधान पद १९५५ में स्वीकार किया था। किन्तु १९५६ के आने से पहले ही इन्द्रजी मानने लगे थे कि "यह निश्चय-सा होता जा रहा है कि मैं आगामी वर्ष सार्वदेशिक-सभा का प्रधान नहीं बनूंगा। मेरे स्वास्थ्य के लिए यही आवश्यक है। उस समय की स्थिति का चर्चा आपने डायरी में निम्न प्रकार किया; "१९ मई १९५९ को सार्वदेशिक-सभा के नये पदाधिकारियोंका चुनाव करने के लिए वार्षिक अधिवेशन हुआ।" प्रारम्भ में प्रधान की हैसियत से मैंने सभापतित्व किया। नये चुनाव से पहले मैंने घोषणा कर दी थी कि मैं आगामी वर्ष के लिए प्रधान नहीं बनूँगा। यह निश्चय मैं ९ मास पहले कर चुका था। दो कारण थे। एक था, स्वास्थ्य ठीक करने के लिए काम की मात्रा को घटाना आवश्यक था। दूसरा कारण था, कई विषयों पर मेरा समाज के कई प्रभावशाली व्यक्तियों से मतभेद था। उनमें से मुख्य था हिन्दी-सत्याग्रह। मुझे हर्ष है कि चारों ओर से यह आग्रह होने पर भी कि मैं प्रधान पद स्वीकार कर लूँ, मैं इनकार पर अडिग रहा। स्वामी अभयानन्द प्रधान निर्वाचित हो गये।

सार्वदेशिक-सभा का प्रधान पद छोड़ने का निश्चय भी बना रहा, टूटा नहीं। पर गुरुकुल का मुख्याधिष्ठातृत्व ग्रहण करने का पूर्व निश्चय शिथिल हो गया। और स्वास्थ्य की उपेक्षा करके भी इस बोझिल भार को पण्डितजी ने सहर्ष ग्रहण किया।

हिन्दी सत्याग्रह से असहमति

इससे पहले २९-४-५६ को सार्वदेशिक-सभा की स्वर्ण-जयन्ती मनाने का निश्चय किया जा चुका था। १८५६ में इन्द्रजी ही सभा के प्रधान थे, जब पंजाब में भाषा के प्रश्न को लेकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने हिन्दी-सत्याग्रह प्रारम्भ किया था। यह विशुद्ध रूप से हिन्दी-रक्षा के लिए सत्याग्रह नहीं था, यह राजनीतिक भी था, और राजनीतिक पृथक् अस्तित्व मनवाने के लिए भी था। इन्द्रजी स्वतन्त्र भारत में किसी कार्य-सिद्धि के लिए सत्याग्रह के तरीके के अब तक सिद्धान्त विरोधी थे। लोकतन्त्र राज्य में, उनकी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राय में, सत्याग्रह के लिए कोई स्थान न था। इस कारण से आर्य-समाज के नेताओं से भी उनका मतभेद हो जाना स्वाभाविक था। विदेशी शासन को नष्ट करने के लिए बरते गये साधनों का उपयोग स्वतन्त्र देशकी सरकार से अपनी बात मनवाने के लिए करना इन्द्रजी उचित नहीं मानते थे। भाषा सत्याग्रह के दिनों में जब प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने एक वक्तव्य निकाला था, तो उसको पण्डितजी ने और महात्मा आनन्द स्वामी ने सन्तोष-जनक बताया था, और सत्याग्रह को समाप्त करने का परामर्श आप दोनों महानुभावों ने दिया था। इस परामर्श का उस समय के सत्याग्रही नेताओं ने समर्थन नहीं किया, बल्कि विरोध ही किया। अतः टकराव को बचाने के लिए पण्डितजी ने १९५७ में सार्वदेशिक-सभा का पुनः प्रधान पद ग्रहण नहीं किया।

सार्वदेशिक-सभा का प्रधान पद न ग्रहण करने का मुख्य कारण स्वास्थ्य ही था। १९५७ में गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव ११ से १५ अप्रैल तक धूम-धाम से हुआ। इसका प्रभाव इन्द्रजी के निर्बल स्वास्थ्य पर अच्छा नहीं पड़ा। इन्द्रजी ने ही माना—"मेरा स्वास्थ्य इन सर्दियों में अच्छा नहीं रहा। उत्सव के कारण थकान बहुत बढ़ गयी। वहाँ से दिल्ली आकर तबीयत बहुत खराब हो गयी, ज्वर भी रहने लगा, चिकित्सक की राय है मुझे पूर्ण विश्राम करना चाहिए।"

पूर्ण विश्राम लेने की डाक्टरी सलाह का आदर केवल सार्वदेशिक सभा का प्रधान पद छोड़ने के समय किया गया। परन्तु गुरुकुल कांगड़ी के साथ उनका लगाव बरवस बढ़ता गया। वह इस बात को कभी नहीं भूले कि वह गुरुकुल के प्रथम स्नातक हैं, अतः गुरुकुल को स्थिरता देना उनका प्रथम कर्तव्य है।

गुरुकुल हीरक-जयन्ती की तैयारी

इन्द्रजी का गुरुकुल के प्रति वर्धमान उत्कट अनुराग का ही यह फल था कि उन्होंने गुरुकुल के पास लगभग ९ बीघे की बाटिका का एक टुकड़ा खरीदा। धीरे-धीरे उसे 'श्रद्धा बाटिका' या ('निकुंज') का रूप दे दिया गया। नवम्बर १९५७ में श्रद्धानिकुंज की कल्पना पूर्ण रूप में आयी और फरवरी १९६० में गुरुकुल के समीप श्रद्धानिकुंज में कुटीर बनाना आरम्भ किया।

गुरुकुल के लिए धन-संग्रह करने के वास्ते १९५८ में पण्डितजी ने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके दक्षिण भारत की यात्रा की। दिल्ली से हैदराबाद गये। यहाँ से बैंगलोर और पूना पहुँचे, और वहाँ से बम्बई गये। बम्बई से दिल्ली वापस आये। यात्रा जल्दी समाप्त करनी पड़ी। क्योंकि भारत के प्रधान मन्त्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू विज्ञान भवन का उद्घाटन करने के लिए गुरुकुल कांगड़ी आनेवाले थे।

इन्द्रजी ने प्रधान मन्त्री का स्वागत सरसाँवाँ के हवाई अड्डे पर किया, प्रधान मन्त्री प्रातःकाल ९ बजे पहुँचे। परन्तु इन्द्रजी को उनकी अभ्यर्थना के लिए रात भी वहीं गुजारनी पड़ी। हवाई अड्डा गुरुकुल कांगड़ी से लगभग दो घण्टे की दूरी पर है। प्रधान मन्त्री ने विज्ञान भवन का उद्घाटन किया। इन्द्रजी ने प्रधान मन्त्री को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रधान मन्त्री ने इस अवसर पर भारी भीड़ के सम्मुख भाषण देते हुए भारतीय संस्कृति की उपादेयता और विज्ञान के महत्त्व को बताते हुए, इन दोनों में समन्वय करने की आवश्यकता बतायी। इस समारोह की सफलता से इन्द्रजी को सन्तोष प्राप्त हुआ। इससे पहले कृषि मन्त्री, स्व० श्री पंजाबराव देशमुख के द्वारा कृषि महाविद्यालय का उद्घाटन करवाया गया। इस प्रकार गुरुकुल विश्वविद्यालय में दो नये कालेजों की वृद्धि हुई। अब शिल्प महाविद्यालय, इंजीनियरिंग कालेज और व्यवसाय महाविद्यालय की स्थापना शेष रह गयी थी। ये गुरुकुल विश्वविद्यालय के जन्मदाता और संस्थापक अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के असिद्ध स्वप्नों में से कुछ थे। असिद्ध स्वप्न आज भी असिद्ध ही बने हुए हैं। इन्द्रजी का यत्न था कि संस्थापक के असिद्ध स्वप्न पूर्ण हों। इसके लिए निश्चिन्ततापूर्वक कार्य करने के विचार से इन्द्रजी ने अपने लिए 'सभा' द्वारा निश्चित मानदेय लेना प्रारम्भ किया।

गुरुकुल सेवा से निवृत्त

गुरुकुल विश्वविद्यालय का ६०वाँ वार्षिकोत्सव और हीरक-जयन्ती महोत्सव धूम-धाम से ९ अप्रैल से १३ अप्रैल तक मनाया गया। महोत्सवपूर्ण सफल हुआ। इन्द्रजी को सफलता पर बधाइयाँ मिलीं।

इसके लगभग ५० दिन बाद ४ जून को इन्द्रजी अपने पंचवर्षीय सेवाकाल की समाप्ति पर गुरुकुल सेवा से निवृत्त हुए। उन्होंने लिखा कि "यह निवृत्ति मेरी मानसिक और शारीरिक शान्ति के लिए आवश्यक थी।"

विद्या सभा ने उनके स्थान पर प्रो० सत्यव्रतजी को मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया।

गुरुकुल की सेवा से इन्द्रजी का मुक्त होना उनके जीवन के एक लम्बे अध्याय की समाप्ति थी। सम्भवतः यह उनके जीवनकार्य की समाप्ति की ही सूचना थी, जिसे उस समय किसी ने अनुभव नहीं किया। गुरुकुल में इन्द्रजी को भावभानी विदायी दी गयी। छात्रों, उपाध्यायों एवं कार्यकर्ताओं ने अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि अर्पित की।

आर्य-समाज ने आपकी सेवा को स्वीकार करते हुए एक मानपत्र देते हुए कहा था :

"आर्य-जगत् की सर्व शिरोमणि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा के प्रधान के रूप में जिस गम्भीरता, योग्यता एवं संलग्नता से आप उसका संचालन और आर्य-समाज का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, वह हमारे लिए सर्वाधिक हर्ष की बात है। हमारा यह परम सौभाग्य है कि आज आप जैसा कर्मठ एवं विद्वान् नेता समाज को उपलब्ध है।"

गुरुकुल के कार्यकर्ताओं ने आप पर गर्व प्रकट करते हुए कहा :

"कुल पिता स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के चरण-चिह्नों पर चलते हुए आपने गुरुकुल शिक्षा-पद्धति को विदेशी दासता से मुक्त रखने का सदा प्रयत्न किया, वहाँ स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भी उस अखण्ड ज्योति को उसी प्रकार जगाये रखने के लिए आप सतत प्रयत्नशील रहे हैं। आपके प्रयत्न तथा निर्देशन के परिणामस्वरूप विगत १२ वर्षों से इस संस्था को राजकीय संस्थाओं तथा शिक्षालयों द्वारा मान्यता प्राप्त हुई है, और यह संस्था अनेक महाविद्यालयों तथा विद्यालयों का सुचारु रूप से स्वतन्त्र संचालन करती रही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। उसके लिए सम्पूर्ण कुलवासी तथा प्राचीन सभ्यता प्रेमी आर्य पुरुष आपके चिर ऋणी रहेंगे।

"न केवल गुरुकुल, प्रत्युत आर्य-समाज तथा देश के शिक्षा एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी आपकी जो अमूल्य सेवाएँ हैं, और अपनी साहित्यिक प्रतिमा, सम्पादन पटुता आदि गुणों द्वारा जो महान् ख्याति आपने प्राप्त की है, उस पर गुरुकुल को गर्व है। मान्यवर, आपके वात्सल्य, उदारता, आशावादिता, गम्भीरता, दूरदर्शिता आदि उच्चकुल जनोचित सद्‌गुण हम सब कुल वासियों के लिए सदा अनुकरणीय रहेंगे।"

इन स्तुति, गीतों के मध्य पण्डितजी ने ससम्मान गुरुकुल से विदाई ली।

विदाई की सभा में इन्द्रजी ने जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उनकी चर्चा करते हुए गुरुकुल के आचार्य श्री प्रियव्रतजी वेद वाचस्पति ने इन्द्रजी की गुरुकुल-सेवा का जिन शब्दों में स्मरण किया; उसके कुछ अंश यहाँ उद्‌धृत करना अप्रासंगिक न होगा। श्री प्रियव्रतजी गुरुकुल के आचार्य हैं—अतः उनका मूल्यांकन प्रामाणिक माना जायेगा।

अपने संस्मरण में उन्होंने लिखा—

"२४ जुलाई सन् ६० को जब स्वर्गीय पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति को गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता एवं उपकुलपति के पद से कार्य निवृत्त हो जाने पर गुरुकुलवासियों की ओर से अभिनन्दन-पत्र दिया गया तो उसका उत्तर देते हुए उन्होंने गुरुकुल के प्रति निम्न उद्‌गार प्रकट किये थे—

"मेरी यह अन्तिम हार्दिक इच्छा है कि मेरी अर्थी गुरुकुल में ही निकले और मेरी भस्म भी गुरुकुल के खेत में ही डाल दी जाये।"

पण्डितजी के उद्‌गार उनके गुरुकुल के प्रति असीम प्रेम के द्योतक थे। गुरुकुल के प्रति पण्डितजी के इस असीम प्रेम का कारण यह था कि उनका सारा जीवन गुरुकुल के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध रहा था। वह गुरुकुल के प्रथम छात्र और प्रथम स्नातक थे। स्नातक होने के बाद ही वह गुरुकुल में उपाध्याय हो गये थे। उसके बाद उन्होंने पर्याप्त समय तक गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता पद पर भी कार्य किया। फिर आगे चलकर अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में वह गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता एवं उपकुलपति भी रहे। जिन दिनों वह गुरुकुल में नहीं भी रहे, उन दिनों भी उनको गुरुकुल का ध्यान रहता था और वह उसके संचालन में सदा सहयोग देते रहते थे।

गुरुकुल का विकास

जिस समय उन्होंने गुरुकुल विश्वविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता और उपकुलपति का पद सम्भाला, तब गुरुकुल में विद्यालय, वेद महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय आदि विभाग थे। उनके नेतृत्व में गुरुकुल ने चहुँमुखी उन्नति की। गुरुकुल में अनेक नये विभाग खुले। पण्डितजी ने शिक्षा की दृष्टि से गुरुकुल की प्रारम्भ से चली आ रही अपनी विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हुए उसे बदलते हुए समय के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की उपाधियों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सरकार से स्वीकार कराया। जिससे उसके स्नातक सरकारी सेवाओं में सरकारी विश्व-विद्यालयों के ग्रेजुएटों के समान ही जा सकें। इसी प्रकार सरकारी विश्वविद्यालयों से भी गुरुकुल की उपाधियों को ग्रेजुएट के समकक्ष स्वीकार कराया, जिससे उसके स्नातक इन विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर परीक्षा में बैठ सकें और इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में और अधिक उन्नति कर सकने का अवसर पा सकें।

देश की वर्तमान राष्ट्रीय आवश्यकताओं में कृषि के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करके गुरुकुल में कृषि-विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही पण्डितजी ने प्रयत्न करके सरकार की ग्राम विकास योजना के अधीन गुरुकुल में ग्राम प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की जिससे देश में अन्नोत्पादन और ग्रामों के विकास के कार्य में गुरुकुल भी अपना योग दे सके।

इस युग में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरूद्धारक महर्षि दयानन्द ने शिक्षण में विज्ञान के पठन-पाठन पर बहुत अधिक बल दिया है। इसीलिए गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द महाराज ने गुरुकुल के पाठ्यक्रम में विज्ञान के अध्यापन को आवश्यक विषय के रूप में सन्निविष्ट किया था। विद्यालय विभाग में तो विज्ञान एक आवश्यक विषय है ही महाविद्यालय विभाग में भी रसायन शास्त्र एक वैकल्पिक विषय के रूप में गुरुकुल में प्रारम्भ से ही पढ़ाया जाता रहा है। वर्तमान समय में देश के नेता भाँति-भाँति के विज्ञानों के अध्ययन पर बहुत अधिक बल दे रहे हैं। वर्तमान समय की देश की इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए इन्द्रजी ने गुरुकुल में नियमित रूप से विज्ञान के अध्ययन की व्यवस्था करने का निश्चय किया और तदनुसार विज्ञान महाविद्यालय की स्थापना की। इस समय विज्ञान महाविद्यालय में बी० एस० सी० स्तर तक शिक्षा दी जाती है। विज्ञान महाविद्यालय के रसायन और भौतिक विज्ञान के कक्ष के लिए उन्होंने भारत सरकार से एक लाख पैंसठ हजार रुपये की राशि प्राप्त की और उसके बायोलोजी विभाग के कक्ष के लिए यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन से २ लाख रुपये की सहायता प्रा त की। पण्डितजी की इच्छा थी कि शीघ्र ही विज्ञान महाविद्यालय में एम०एस०सी० के स्तर की पढ़ाई की भी व्यवस्था कर दी जाये। गुरुकुल के अधिकारी उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए भी प्रयत्न कर रहे हैं।

गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय में भी पण्डितजी के समय में अनेक विभाग खुले और महाविद्यालय के कार्य का बहुत अधिक विस्तार हुआ। क्लिनिकल लेबोरेटरी, एक्सरे, प्लाण्ट, द्रव्यगुण संग्रहालय, जीव विज्ञान संग्रहालय, जीव विज्ञान प्रयोगशाला, बिड़ला नेत्र रोगी गृह, पंचकर्म विभाग आदि अनेक उपयोगी विभागों की स्थापना पण्डितजी के नेतृत्व में ही हुई। इन विभागों के लिए आवश्यक उपकरण जुटाने और भवन निर्माण के लिए प्रान्तीय सरकार तथा दानियों से पुष्कल धनराशियाँ प्राप्त की गयीं।

गुरुकुल के छात्रों को सैनिक शिक्षा दिलवाने के लिए गुरुकुल में एन०सी०सी० (छात्र सेना) विभाग की स्थापना भी उन्हीं के द्वारा हुई। और इस विभाग के लिए एक सुन्दर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भवन भी बनवाया गया। गुरुकुल के ब्रह्मचारी इस विभाग के प्रशिक्षकों द्वारा भाँति-भाँति की व्यूह रचना और शस्त्र चलाने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। और आवश्यकता पड़ने पर देश की रक्षा में अपनी आहुति देने के लिए अपने आपको तैयार करते हैं।

उन्हीं के समय में गुरुकुल में वैदिक अनुसन्धान विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थों की प्रकाशन हो चुका है।

शिक्षा के क्षेत्र में अपूर्व देन

गुरुकुल के पाठचक्रम में इतिहास के अध्यापन का अपना एक विशेष स्थान है। यहाँ प्रारम्भ से ही इतिहास का विषय विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता रहा है। पण्डितजी को इस विषय में विशेष रुचि थी। इतिहास के अध्यापन को अधिक गहरा और महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए उन्होंने गुरुकुल में एक ऐतिहासिक संग्रहलाय की स्थापना की। इस संग्रहालय में प्राचीन इतिहास से सम्बद्ध बहुत अधिक उपयोगी सामग्री का संग्रह किया गया है। हरिद्वार में आनेवाले यात्रियों के लिए गुरुकुल के अन्य विभागों की भांति उसका यह संग्रहालय भी बहुत अधिक आकर्षण का विषय रहता है। इस संग्रहालय के लिए भी सरकार से समय-समय पर पुष्कल राशि सहायता में प्राप्त की जाती रही है।

पण्डितजी स्वयं एक बड़े विद्याव्यसनी पुरुष थे। इसलिए पुस्तकालय के साथ उनका विशेष स्नेह था। उनके समय में गुरुकुल के पुस्तकालय की भी बहुत अधिक उन्नति तथा विस्तार हुए। विभिन्न विषयों की हजारों नयी उपयोगी पुस्तकें पुस्तकालय के लिए मँगवाई गयीं। पुस्तकालय के पुराने भवन में पुस्तकों के लिए स्थान की कमी हो जाने पर इस भवन के विस्तार के लिए दूसरी मंजिल पर दो नये बड़े-बड़े हाल और बनवाये गये।

गुरुकुल के पाठचक्रम में प्राचीन तथा अर्वाचीन अनेक विद्या-विज्ञानों का समावेश है। गुरूकुल में पढ़ाये जानेवाले अनेक विषयों में दर्शनशास्त्र भी एक प्रमुख विषय है। प्राचीन भारतीय दर्शनों का अध्यापन होता ही है, उसके साथ ही आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का अध्यापन भी होता है। दर्शन के अध्यापन में मनोविज्ञान विषय पर अधिक बल दिया जाता है। आजकल मनोविज्ञान बड़ा व्यापक और रोचक विषय बन गया है। मनोविज्ञान का अध्ययन जीवन के सभी क्षेत्रों में सहायक होता है। इसे अनुभव करते हुए पण्डितजी की प्रेरणा से दर्शन विषय में मनोविज्ञान पर और अधिक बल दिया जाने लगा है तथा मनोविज्ञान का क्रियात्मक शिक्षण देने के लिए उसकी एक क्रियात्मक प्रयोग-शाला भी स्थापित कर दी गई है। इस प्रयोगशाला के लिए कई हजार रुपये के उपकरण और यन्त्र मँगवाए गए हैं।

गुरुकुल के इस विकास और उसमें खुलनेवाले अनेक नये विभागों के कारण गुरुकुल में कर्मचारियों और छात्रों की संख्या का बढ़ जाना स्वाभाविक था और उनके निवास के लिए नये भवनों के निर्माणों की आवश्यकता पैदा हो जाना अनिवार्य था। इस आव-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्यकता की पूर्ति के लिए पण्डितजी के समय में अनेक नये भवन और आश्रम बनाये गए। इन सब भवनों पर लाखों रुपये का व्यय हुआ जो कि जनता और सरकार की सहायता से पूरा होता रहा। गुरुकुल को पंजाब की जनता से दान स्वरूप में बहुत अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त हुआ करती थी। परन्तु देश के विभाजन के पश्चात् पंजाब के निवासियों की स्थिति इस प्रकार की नहीं रही कि वे उस सहायता को जारी रख सकते। इस समय यदि सरकार से सहायता न मिल पाती तो गुरुकुल के संचालन में बड़ी भारी कठिनाई उपस्थित हो जाती। पण्डितजी ने अपने प्रयत्नों से सरकार से पुष्कल राशि की वार्षिक सहायता प्राप्त की जिससे गुरुकुल का संचालन भली भाँति कर सकने में बड़ी मदद मिली।

अपूर्व देन

इन्द्रजी एक उद्भट विद्वान् थे, प्रभावशाली लेखक थे और उच्च कोटि के पत्रकार थे। वक्ता भी वह उत्कृष्ट श्रेणी के थे। उनके ग्रन्थों द्वारा हिन्दी और संस्कृत साहित्य की अमूल्य वृद्धि हुई है। पण्डितजी में हृदय और मस्तिष्क के अनेक बड़े-बड़े गुण थे। पण्डितजी के जीवन के इन पहलुओं पर भी बहुत लिखा और कहा जा सकता है परन्तु इन थोड़ी-सी पंक्तियों में उन सब पर लिख सकना सम्भव नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी पण्डितजी की बड़ी भारी देन। इस क्षेत्र में पण्डितजी का कार्य स्थल गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय रहा है। गुरुकुल के विकास और उन्नति के लिए तथा गुरुकुल को राष्ट्र की वर्तमान परिस्थिति में अधिक उपयोगी और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करवाने में उनकी अपूर्व देन है।"

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पारिवारिक जीवन

धर्म, देश और जाति की सेवा में पूर्णतः समर्पित जीवन बिताते हुए और अपने सार्वजनिक जीवन के सब कर्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से निभाव करते हुए भी इन्द्रजी अपने पारिवारिक दायित्व को भूले नहीं। परिवार को उनका स्नेह सदा मिलता रहा और पारिवारिक प्रेम तथा विश्वास उनके संबल बने रहे।

अपने विश्ववंद्य पिता के वे अनन्य विश्वास भाजन थे। महात्मा मुंशीरामजी (स्व० श्रद्धानन्द) का इन्द्रजी पर अपार स्नेह था। वह अपने मन की बात खोलकर इन्द्रजी से ही कहते थे। यह बात उनके कुछ ऐसे पत्रांशों से प्रकट हो जाती है जो वे समय-समय पर उन्हें लिखते रहे। (अगले -पृष्ठों में हम उनके आंशिक उद्धरण दे रहे हैं)।

अपने बड़े भाई हरिश्चन्द्र का उनसे प्रगाढ़ स्नेह था। बचपन में दोनों एक साथ गुरुकुल में पढ़े थे और प्रारम्भ में दोनों का कार्य क्षेत्र भी एक ही रहा। दुर्भाग्य से हरिश्चन्द्रजी विवाह के कुछ महीने बाद ही विदेश चले गये और फिर कभी वापस न आये। विदेश में उनकी मृत्यु बड़े रहस्यमय ढंग से हुई। हरिश्चन्द्रजी अपने छोटे भाई इन्द्र को कितना प्यार करते थे——यह भी उनके कुछ पत्रों से विदित होगा। (अग्रिम पृष्ठों में हम उनकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं)।

इन्द्रजी की प्रथम पत्नी विद्या थी, जिसे वे प्रेम से लक्ष्मी पुकारते थे। पति-पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम का कुछ आभास तब मिला जब इन्द्रजी उसके वियोग में विह्वल हो उठे। वियुक्त आत्मा की स्मृति में उनके उद्‌गारों का कुछ अंश हम अध्याय ४ में दे चुके हैं।

इन्द्रजी की द्वितीय पत्नी चन्द्रवती ने इन्द्रजी की सेवा में जिस तन्मयता से जीवन अर्पित कर दिया उसके साक्षी इन्द्रजी की डायरी और उनके पत्र हैं। इन पृष्ठों में हम उनके कुछ अंश भी उद्‌धृत करेंगे।

अपनी बड़ी बहन वेदकुमारी के प्रति उनका स्नेह सदैव व्यक्त होता रहा। उनके संस्मरणों में बहनकी स्मृति अनेक स्थलों पर अंकित है।

प्रथम पत्नी से एक पुत्र जयन्त और दो पुत्री : पद्मा एवं पुष्पा के प्रति उन्होंने अपने दायित्व की पूरी तरह रक्षा की। जयन्त ने अपने पूज्य पिता के जो संस्मरण लिखे हैं— उन्हें हम इस अध्याय में अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। पुत्री पुष्पा के संस्मरणों की कुछ पंक्तियाँ भी हम यहाँ दे रहे हैं। इन संस्मरणों से श्री इन्द्रजी के व्यक्तित्व पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

इन्द्रजी का परिवार यहीं तक सीमित नहीं था। जयन्त, पद्मा, पुष्पा के अतिरिक्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्होंने श्री महावीर त्यागी की तीन पुत्रियों उमा, उषा और सरोज का भी पालन-पोषण पिता के समान ही किया।

इन्द्रजी ने अपने संस्मरणों में लिखा है--

"ईश्वर की परम कृपा है कि मेरे अनेक दोषों के होते हुए भी उसने मुझे एक लम्बी, चौड़ी कर्तव्यों की नदी के पार पहुँचा दिया। सब बच्चों की शिक्षा पूरी हो गयी। जयन्त, पद्मा, पुष्पा, उषा, सरोज सब अपने ठिकाने लग गये। उषा नौकरी में लग जायेगी।" उषा के विवाह के बाद इन्द्रजी ने लिखा--

"गत सप्ताह मेरे जीवन का २२ वर्षों का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय (१९३७ से १९५८ तक) पूरा हो गया। श्री महावीर त्यागी और स्वर्गीय शारदा की तीनों पुत्रियों का पालन-पोषण और शिक्षण पूरा हो गया। विवाह भी हो गये।"

स्वामी श्रद्धानन्दजी (मुंशीरामजी) के पत्र इन्द्रजी के नाम

ओ३म् गुरुकुल
२१-१२-६१

मेरे प्यारे पुत्र,

तुम्हारे पत्र का उत्तर कार्य बाहुल्य के कारण नहीं लिख सका। मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, किन्तु अब अच्छा हो रहा हूँ।

तुम्हारे दूर होने से मुझे पता लगता है कि तुम्हारी मुझे कितनी आवश्यकता है। तुम जैसे बिना कहे मेरे हृदय के भाव को समझते हो और कोई नहीं समझता। हरि मुझे बहुत प्यारा है। उसके अन्दर प्रेम का समुद्र भी चलता है, किन्तु फिर भी तुम्हारा साथ रहना मेरे लिए कैसा सन्तोषजनक हो सकता है यह मैं ही जानता हूँ।

तुम्हारा पत्र आने पर फिर लिखूँगा।

--मुंशीराम

× × ×

ओ३म् गुरुकुल
२६-१२-५९

मेरे प्यारे पुत्र,

कल के पत्र में अपनी हार्दिक इच्छा का एक भाग प्रकाशित कर चुका हूँ। इस भाग पर हरिश्चन्द्र तथा डाक्टर सुखदेवजी से भी बातचीत हो चुकी है। किन्तु आज अपना सारा तात्पर्य तुम्हारे सामने रखना चाहता हूँ। इस विषय में और किसी से न बात कर सकता हूँ और न करूँगा।

मैंने देखा है कि गुरुकुल का काम जितना महान् है, उतना ही महान् बलिदान चाहता है। जिस मनुष्य को कोई भी सांसारिक वा पारमार्थिक अन्य सम्बन्ध हो, उसके लिए

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल की रक्षा करना तथा उसे उन्नत करना कठिन है । यही कारण है कि केवल विवाहित पुरुष ही यहाँ पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकते, प्रत्युत वे परिवार-हीन पुरुष भी जिनकी कोई और लगन है, यहाँ की सहायता में पूर्णतया कृतकार्य नहीं हो सकते । गुरुकुल के चलाने के लिए अन्य योग्यताएँ भी चाहिए, किन्तु सबसे बड़ी योग्यता यह होनी चाहिए कि यहाँ के ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त यहाँ के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता की दृष्टि में और कोई बड़े-से-बड़ा आत्मिक उद्देश्य भी कुछ मूल्य न रखता हो ।

अब प्रश्न यह है—क्या तुम्हारी रुचि विवाह की ओर है ? यदि है, तो मैं जानता हूँ कि जो दिल तुम्हें मिला है, उसके अनुसार तुम्हारे प्रेम का बड़ा भाग उधर चला जायेगा । गुरुकुल का गृहपति बनने के लिए आवश्यक है कि गुरुकुल को माता, पिता, भ्राता, धर्म-पत्नी ––सबके स्थान में समझा जाये । क्या इस कठिन आत्मसर्पपण का दृढ़ भाव तुम्हारे अन्दर है ? यदि है तो गुरुकुल बड़ा भाग्यशील होगा—यदि नहीं, तब भी गुरुकुल तुम्हारे सदाचार तथा उच्च भावों का अभिमान तो कर ही रहा है ।

मेरे प्यारे पुत्र ! अपने अन्दर के भाव तुम्हारे सामने रख दिये हैं । यदि तुम इस कठिन प्रश्न पर विचार करके किसी परिणाम पर शीघ्र ही न पहुँच सकते हो, तो मुझे तार दे देना कि अभी दिल्ली न आऊँ ।

तुम्हारा सदैव सन्तुष्ट पिता
मुंशीराम

× × ×

ओ३म् गुरुकुल
१३-५-१९७०

मेरे प्यारे पुत्र,

तुम्हारा पत्र अभी पहुँचा । तुम्हारा पत्र पढ़ रहा हूँ और बराबर आनन्द की अश्रुधारा वह रही है । परमात्मा ने इसी जन्म में मुझे कृतकार्य कर दिया, यह मेरा रोम-रोम इस समय अनुभव कर रहा है । मेरे प्यारे पुत्र, जिस दिन के लिए मैं रातों जागकर परमेश्वर से प्रार्थना करता रहा, जिसके लिए ही मैं संसार के अपने से निर्बल आत्मा के लिए––असह्य-से-असह्य दुःखों का सहन करता रहा, वह दिन आज मैंने देखा ।

इससे अधिक आज लिखने की कुछ शक्ति नहीं । अभी तो इस आनन्द को ही बार-बार अनुभव करके आनन्दित होने दो, कार्य के साधनों का विस्तृत विचार फिर होगा ।

जैसे कि लिख चुका हूँ ३० मई को यहाँ से चलूँगा । यदि तुम भी ३१ मई को लाहौर पहुँचोगे, तो वहाँ सभा के अधिवेशन से निवृत्त होकर दो जून को दिन का बड़ा भाग विचार में ही कटेगा ।

तुम्हारा
मुंशीराम

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म् गुरुकुल
२-९-१९७०

मेरे प्यारे इन्द्र,

तुम्हारा पत्र प्राप्त करके बड़ा सन्तोष हुआ । यदि तुम्हारा वहाँ अधिक काम न हो तो यहाँ ही चले आओ । जितना लिख लोगे उतना ही ठीक होगा ।

(२) हरिश्चन्द्र को अब कुछ नहीं कहना चाहिए । पहले ही मैंने तुमसे कहा, वह भूल हुई । खालसा ऐडवोकेट में भी रलाराम के आधार पर ऊटपटाँग लिखा हुआ है । इस विषय में जहाँ-जहाँ जो कुछ लिखा है, उसको अवश्य जमा करना चाहिए । कभी काम आवेगा ।

(३) पण्डित राजाराम के विषय में पढ़कर मुझे चिन्ता हुई । पण्डित राजाराम बड़ा चतुर है और इस मेल का कारण शायद यह हो कि तुम्हारे साझे प्रेस में से उसके वे ग्रन्थ निकलें जिनमें मांस का मण्डन है । पण्डित राजाराम के साथ साझे का सोचना ही ठीक नहीं ।

(४) यहाँ भेजने योग्य सामान भेज दोगे, तो तुम्हारा कमरा ठीक करा दूँगा ।

(५) श्री पण्डित विष्णुमित्रजी को पत्र लिख दिया है कि १५ रुपया मासिक देना स्वीकार करें तो पुत्री विद्यावती हरिश्चन्द्र के परिवार में रह सकती है । उनका पत्र सीधा हरिश्चन्द्र के पास आवेगा । दस रुपया पण्डित विष्णुमित्र ने मुझे दिये थे । वह हरिश्चन्द्र उनको मुजरा कर देवे । मेरे पास अब कुछ भी नहीं है । शीघ्र व्यय के लिए कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा ।

(६) बीबी वेदकुमारी कैसी आयी थी ? यह एक आश्चर्यजनक बात है ।

(७) दिल्ली के उत्सव पर व्याख्याताओं का प्रबन्ध मैंने कर दिया है । मैं ६ अक्तूबर को प्रातः दिल्ली पहुँचूँगा । किन्तु समाज के उत्सव में मुझसे कोई वक्तृता न दिलायी जाये, इसका निश्चित प्रबन्ध कर छोड़ना । उपाध्यायगण पहले आवेंगे ।

(८) लालाहंसराज के साथ जब तीर्थ का निश्चय हो जाये तब की बात । अभी तो उनका कोई उत्तर ही नहीं आया ।

(९) तीन दिन और तीन रातें हो गयीं, नीचे की एक दाढ़ में असह्य पीड़ा हो रही है । ज्वर साथ है । कब्ज आज कुछ दूर होने लगी है । मैं बीमारियों को तो सिर झुँकाकर स्वीकार करता हूँ, किन्तु यहाँ सहानुभूति का नाम नहीं, इसलिए मानसिक कष्ट हो जाता है । नौकर अलग सो रहते हैं । रात ही बारह बजे से दर्द बढ़ा । लैम्प जलाकर साढ़े चार बजे तक बैठा रहा । तब नौकर ने आकर पलंग अन्दर किया । ७ बजे तक डाक्टर न आया ? मुझे किसी को कष्ट देना बुरा प्रतीत होता है । पास बैठने से सब घबराते हैं । तब लिखने-पढ़ने के काम में लगकर सिर को अधिक दुखाना ही पड़ता है । नौकर सब स्वार्थी अधिक हैं । किसी में स्वामी प्रेम नहीं । यदि ढिल्लू होता तो मुझे अनुभव भी न होता कि मैं बीमार हूँ । ऐसे समय में तुम दोनों में से एक की समीपता अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती है । शरीर दिनोदिन निर्बल हो रहा है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फिर-फिर सोचता हूँ कि क्या कसी हुई कमर को इस जन्म में कभी विश्राम लेने का अवसर लेना चाहिए या नहीं।

हरिश्चन्द्र तथा सुभद्रादेवी को आशीर्वाद। यदि वेदकुमारी हो तो मेरी ओर से आशीर्वाद देना।

मुंशीराम

× × ×

ओ३म् आ० स० मन्दिर क्वेटा,
१२ श्रावण १९७१

मेरे प्यारे इन्द्र,

तुम्हारा पत्र पहुँचा। यहाँ ५ दिनों की झड़ी आज प्रातः खुली है। तुम्हारे स्वास्थ्य की मुझे चिन्ता रहती है क्योंकि मेरी आशाओं की पूर्ति के केन्द्र एकमात्र तुम्हीं हो।

मैं हरिश्चन्द्र को सीधा नहीं लिखता, क्योंकि सम्भव है उसे मेरा लिखना बहुत चुभे। परमेश्वर ने उसे वह वक्तृत्व शक्ति दी है, जो शायद किसी के भी हिस्से में न आयी हो। संस्कृत का सरल व्याख्यान देकर उसने बूढ़ों तक के हाथों में संस्कृत प्रवेशिका पकड़ा दी थी। आर्य समाज ने भी उस पर वह विश्वास किया कि अन्तरंग सभा में स्थान दिया। परन्तु उसे अब न संस्कृत में प्रेम, न अध्ययन में अनुराग और न ही जमकर काम करने में दिल लगता है। मेरी सम्मति में न मैं न तुम ऐसी सरल सुन्दर आर्य भाषा लिख सकते हैं, जैसा हरिश लिख सकता है। फिर भी सारी शक्तियाँ व्यर्थ नष्ट हो रही हैं।

यह सब विचार तुम हरिश्चन्द्र के आगे उपस्थित करके यहाँ चले आओ। फिर जब यहाँ से लौटेंगे, तो शिमले के स्थान पर एक दिन हरीश के पास चलकर ही सब तय कर लेंगे।

मुंशीराम

× × ×

ओ३म् गुरुकुल
८-६-१९७२

मेरे प्यारे पुत्र,

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा रही।

मेरी चिन्ताओं की समाप्ति नहीं होती। हरिश्चन्द्र के विषय में पत्र आया है। उसने मुझे बहुत चिन्तित कर दिया है। इस समय तुम ही मेरी आशाओं के केन्द्र हो। सब सम्मतियाँ तुमसे ही ले सकता हूँ।

तुम्हारा
मुंशीराम

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म् गुरुकुल वाटिका
३०-४-१९७३

मेरे प्यारे पुत्र,

लेख में क्या लाऊँ ? पुत्री विद्या की चिन्ता रही, परन्तु परमात्मा दृढ़ता दे रहा है। विद्या को कहना कि मुझे अपने व्रत पालन में सहायता देने के लिए आत्मबल लगाये।

कल यदि तुम लोग ताँगे पर ४ बजे ही चल दो––सुखदेव और सुभद्रा देवी साथ हों–तो यहाँ ५।। बजे पहुँच सकोगे। संस्कार आरम्भ होने से पहले आध घण्टे में सब कुछ कह सकूँगा। परमात्मा सारे परिवार की रक्षा करेंगे और सन्मार्ग पर चलायेंगे––यह मुझे विश्वास है।

तुम मेरे ज्येष्ठ शिष्य हो, क्योंकि सबसे ज्येष्ठ शिष्य इस समय प्रवासी है। वह जब आयेगा तो कुल के लिए यश दिलाता हुआ ही आयेगा। परन्तु इस समय मेरे सब शिष्यों (स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों) के ज्येष्ठ भ्राता तुम ही हो। उन सबको बल देने का भार तुम पर ही है। परमात्मा तुमको इस बोझ के उठाने के लिए बल देंगे।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
मुंशीराम

× × ×

ओ३म् लुधियाना
६-३-१९७४

मेरे प्यारे इन्द्र,

मेरे सबसे अधिक आज्ञापालक शिष्य तुम रहे हो। इसलिए तुम्हारे साथ प्रेम का अटूट सम्बन्ध है।

उर्दू में जो अपने जीवन-सम्बन्धी लेख था, उससे आगे चलकर उस समय तक उसे पहुँचाने का विचार हुआ था, जबसे मैंने 'आप बीती, जग बीती' आरम्भ की थी। परन्तु अब यह मिथ्याभिमान मात्र प्रतीत हुआ। इसलिए न केवल कुछ लिखा हुआ ही फाड़ दिया प्रत्युत उस सम्बन्ध की फाइल भी जला दी। अब व्यक्तिगत वार्ताओं को छोड़कर जन-कल्याण का कुछ कार्य करना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस कार्य से तुम सहमत होगे।

धर्मसिंह बड़े प्रेम से सेवा करता है। उपनिषदों का विचार आरम्भ कर दिया है।

सुखदेव को हार्दिक आशीर्वाद। कुल के सारे पुत्रों का स्मरण ईश्वरोपासना के पश्चात् किया करता हूँ। परमेश्वर उन सबको निजव्रत में दृढ़ रखें––यह प्रार्थना रहती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्ररमेश्वर तुम्हें तथा तुम्हारे जेष्ठ भ्राता को गृहस्थ के आदर्श पर चलने में सहायता दें—यह मेरी मंगलकामना है ।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द संन्यासी

× × ×

ओ३म्

पो० बौंड़ी
जि० गढ़वाल
३०-५-१९७५

मेरे प्यारे इन्द्र,

परसों मैं यहाँ पहुँचा हूँ । यहाँ सर्दी अच्छी है और स्थान रहने को अच्छा मिल गया है, कोई कष्ट नहीं । यहाँ का हाल तुम्हें प्रचारक द्वारा मालूम हो जायेगा ।

इस समय लिखने का विशेष प्रयोजन यह है कि तुम्हारे स्वास्थ्य के विषय में बड़ी चिन्ता है । और स्वार्थियों के लिए उस स्वास्थ्य को बिगाड़ना बुद्धिमत्ता नहीं । तुम जैसा उचित समझो करो, परन्तु जो व्यवस्था इस समय है, उसको पूर्ण रूप से लिखकर सभा में भेज देना चाहिए । तुम्हें ज्ञात है कि मुझे काम करने में कितनी कठिनाइयाँ थीं । उससे बढ़कर तुम्हें होंगी । सारे पत्र-व्यवहार की प्रति रखना और संक्षेप से मुझे लिखते जाना ।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

× × ×

बम्बई
१५-३-७६.

मेरे प्यारे इन्द्र,

आर्य समाजी घबरा रहे हैं । तुम मेरी ओर से आज्ञा समझकर 'सद्धर्भ-प्रचारक' में लिख दो कि स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी हैं । उनका किसी आर्य संस्था से विशेष सम्बन्ध नहीं । उनके सत्याग्रह में शामिल होने के यह अर्थ नहीं कि आर्य समाज संस्था रूप से इसमें शामिल है । ऐसे आर्य-समाजी भी होंगे, जो शायद सत्याग्रह को उचित न समझें । मेम्बरों में भी सब जो कुछ करते हैं, अपने व्यक्तिगत विचार से ही करते हैं । भीरु लोग तथा ईर्ष्यालु कुछ प्रकट करेंगे इसलिए तुम जो उचित समझो नोट लिख छोड़ो ।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म् सं० १७, नया बाजार
दिल्ली
४-४-१९७८

प्रिय इन्द्र,

कल पत्र लिख चुका हूँ। यहाँ पाटौदी हाउस के लिए कुछ नहीं हुआ। यहाँ बैठना समय को व्यर्थ गँवाना है।

गुरुकुल कांगड़ी में रहते हुए फिर अनुभव किया था कि तुम्हें मेरे कारण अपनी इच्छा के विरुद्ध कितना काम करना पड़ा। इस समय तो तुम्हारा वहाँ रहना ही ठीक है, परन्तु एक वर्ष पीछे जैसा उचित समझना करना। इस समय भी आत्मसम्मान गँवा के रहने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

× × ×

ओ३म् १७, नया बाजार
दिल्ली
२६-८-१९७८

मेरे प्यारे इन्द्र,

तुम्हारा पत्र पहुँचा। मैंने आज सब काम समाप्त कर लिये हैं और कल प्रातःकाल से जेल के लिए तैयार हूँ।

न जाने कब लौटना हो। अब इतिहास के कार्य से मैं निश्चिन्त हुआ। तुम वहाँ से हिलने का नाम न लो। यही मेरी तथा देश की सेवा इस समय है। यदि तुम हिले तो मेरे काम में विघ्न पड़ेगा। तुम्हारा हृदय छटपटायेगा, मैं तुम पर अत्याचार नहीं करने लगा हूँ। परन्तु गुरुकी आज्ञा मानना तुम्हारा धर्म है।

यहाँ आज ही सत्याग्रह शुरू हुआ। डिपुटी कमिश्नर को सूचना देकर पचास स्वयं-सेवक कप्तान आसिफअली के मातहत निकले। दो बजे गिरफ्तार हुए। डि० मजिस्ट्रेट मुकदमा कोतवाली में कर रहा है। आज शाम तक सजा देकर जेल में भेज देगा।

तुम शान्ति से वहाँ का कार्य करते जाओगे तो समझूंगा कि बहुत सहायता दी।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

अकोला
१४-१-७९

मेरे प्यारे इन्द्र,

इस पत्र के साथ मुसलमान नेताओं की अपील तुम्हारे पास भेजता हूँ। इसे ध्यान से पढ़ना। अहमदाबाद में सब्जेक्ट कमिटी की बैठक में प्रश्न हुआ था कि गांधीजी को मुसलमानों के मजहबी मामलों में दखल देने का अधिकार न होगा। उस समय मैंने पूछा था कि हिन्दू-सिक्खादि का कोई जिक्र क्यों नहीं ? मैं जो अपील भेजता हूँ इससे मालूम होता है कि मुसलमान भारतवर्ष और हिन्दुओं को केवल अपनी जथादारी की दृढ़ता का एकमात्र साधन बनाना चाहते हैं। उनके लिए भारतमाता पीछे और इस्लाम पहले है। क्या हिन्दुओं को अपना संगठन न करना चाहिए ? साधारण हिन्दू तो एक-से-एक जुदे हैं। इसलिए यदि कुछ संगठन हो सकता था तो वह केवल आर्य समाज की ओर से। परन्तु यहाँ भी द्वेषाग्नि ने सब कुछ भस्म कर रखा है। फिर भी आर्य समाज से जुदा यदि कोई संगठन हो तो शायद कुछ बन सके। इस पर विचार करने तथा इतिहास का कार्य आरम्भ करने की विधि विचारने के लिए मैं दिल्ली और कुरुक्षेत्र से होता हुआ १ वा २ फरवरी को कांगड़ी पहुँचूँगा। आशा है कि तुम वहाँ मिलोगे।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

× × ×

गांधीजी का पत्र स्वामीजी के नाम

मोतीहारी
चम्पारन,
चैत्र कृष्ण ११,

महात्माजी,

आपके दोनों खत मुझे इस जगह पर मिले हैं। आपकी सर्वशुभेच्छा परमात्मा पूर्ण करे ऐसी प्रार्थना करता हूँ। यहाँ के बारे में क्या लिखूँ ? मैं कल जइल (जेल) में हूँगा, कब आश्रम पर पहुँचना होगा, कह नहीं सकता हूँ। परन्तु आप आश्रम पर जाओगे, ऐसी उम्मीद रखता हूँ। आपके जाने से अक्तूबर में आश्रमवासियों को आश्वासन मिलेगा।

आपका
मोहनदास गांधी

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री स्वामीजी के बलिदान पर इन्द्रजी को राष्ट्रपिता का पत्र

चि० इन्द्र,

आज मुझको शान्ति है, क्योंकि मेरा मौन का दिन है । तुमको भी लिखने का दिल तो हमेशा होता था, परन्तु मैं शान्ति चाहता था मैंने तुमसे शोक प्रदर्शित नहीं किया है, न मैं करना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि इस मृत्यु को हम मृत्यु न समझें । धर्म को समझनेवाला तो किसी अवसर पर मृत्यु का शोक नहीं करेगा, परन्तु पिताजी की मृत्यु तो वीर पुरुष के लिए अभिनन्दनीय ही हो सकती है ।

और एक बात मैं तुम्हारे पास से चाहता हूँ । हृदय में भी अबदुलरशीद, या मुसलमानों के प्रति रोष को स्थान न देना । तुम तो पिताजी को अवश्य मेरे से ज्यादा जानते थे, परन्तु मैं जहाँ तक उनको जान सका था, उनके हृदय में किसी भी मनुष्य की घृणा न थी, वही बात मैं तुमसे चाहता हूँ ।

मैं यह भी चाहता हूँ कि जिस वीरता से पिताजी ने अपना कार्य किया, उसी वीरता के साथ तुम भी करते रहो और उनकी पवित्र स्मृति को सुशोभित रखो ।

पिताजी के अन्तिम समय का सम्पूर्ण वर्णन मैं चाहता हूँ । धर्मसिंह की तबीयत अब कैसी है, मैं भ्रमण में हूँ । इसलिए पत्र साबरमती ही भेजना ।

मोहनदास के आशीर्वाद

× × ×

चि० इन्द्र,

तुम्हारी पत्नी को क्या हुआ है ? मैं भी तुम्हारे नजदीक ज्यादा आना चाहता हूँ, पिताजी की जगह लेने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, तथापि मेरा प्रेम तो है ही, जब बन पड़े तब थोड़े दिनों के लिए आश्रम में रह जाओ ।

मोहनदास के आशीर्वाद

× × ×

बड़े भाई हरिश्चन्द्र के पत्र इन्द्रजी के नाम

ओसबोर्न हाऊस
पडीहाम
४ मई १९१४

प्यारे भाई,

बड़े दिनों की प्रतीक्षा के पीछे आज तुम्हारा पत्र मिला । पिताजी का और सुभद्रा का कोई पत्र नहीं आया । पिताजी के पत्र न आने का कारण शायद काम की अधिकता हो । सुभद्रा शायद अब पत्र लिख-लिखकर निराश हो गयी है । तुम्हारे ही पत्र को उन सबका प्रतिनिधि मानकर मैंने सन्तोष कर लिया है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उस पत्र को पढ़कर मेरे दिल में जो भाव उत्पन्न हुए, उन्हें मैं लिख नहीं सकता। प्यारे भाई, इस पत्र ने मेरे दिल पर वह चोट लगायी है, जिसकी बड़े दिनोंसे आवश्यकता थी। कहाँ मेरा स्वार्थमय जीवन, कहाँ तुम्हारा निःस्वार्थ जीवन। जहाँ मुझे उस समय अपने परिवार का पालन करते हुए पिताजी की सेवा करनी चाहिए थी, वहाँ मैं तो इधर-उधर घूम रहा हूँ और तुम्हारे कंधों पर सारा भार डाल छोड़ा है।

प्यारे इन्द्र तुमसे बढ़कर संसार में मुझे किसी से स्नेह नहीं है और तुमसे मेरी कोई बात छुपी नहीं है। आज तुम्हें एक बात लिखता हूँ। मैंने इन चार-पाँच महीनों में अपने मन की अवस्था को बार-बार समझने का यत्न किया है। मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मुझपर जो उत्तरदायित्व डाला गया था, वह इतना अधिक था कि उसके पूरे होने को असम्भव देखकर मुझमें उत्तरदायिता समझने की शक्ति ही न रही। गुरुकुल में पढ़ने और ऐसे महापुरुष के पुत्र होने के कारण जो उत्तरदायित्व आता है, उसके उठाने की मुझमें स्वाभाविक शक्ति न थी। बहुत देखभाल करने के बाद मुझे पता लगा है कि सम्भवतः मैं उस श्रेणी में से हूँ जो न तो संसार के कंधों में बिलकुल बहकर खाना-पीना और मजे से जीना ही अपना उद्देश्य समझते हैं और ना ही वे महात्माओं की तरह सब स्वार्थों को लात मारकर एक उद्देश्य के पीछे पड़ जाते हैं। परन्तु विशेष शिक्षा के कारण मुझे बलात् दूसरी श्रेणी में आना पड़ा। मैं इसे अच्छी तरह स्पष्ट नहीं कर सका। पर अब तक मेरे जीवन में जो परिवर्तन आये हैं, वे उन सबका यही कारण है।

पर इसका यह मतलब नहीं कि किसी पर दोष का भार डालना चाहता हूँ। इस संसार में किसी के मन के अनुसार कभी भी काम नहीं होता। अपना निश्चय मैं पहले ही लिख चुका हूँ। मैं शीघ्र हीं लौटकर तुम्हें इस सारे भार से मुक्त कर दूंगा।

आज मुझे रुपये मिल गये हैं। जब मुझे ध्यान आया कि ये कैसी गाढ़ी कमाई के रुपये हैं, तब मेरी आँखों में आँसू आ गये। प्यारे भाई, ये रुपये मुझे कभी न भूलेंगे।

तुम्हारा
हरीश

× × ×

प्यारे इन्द्र,

जनीवा
२–३–१५

पिछला पत्र जिस खुशी में लिखा था, उस खुशी से यह पत्र नहीं लिख सकता। आज मन बड़ा उदास है। रात मैंने स्वप्न में देखा था कि तुम बहुत बीमार हो। तुमने मुझे बुलाया है। मैं तुम्हें देखने जा रहा था कि इतने में नींद खुल गयी। यद्यपि मैं जानता हूँ कि स्वप्न मात्र है, पर बार-बार यह स्वप्न याद आता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साथ ही इस सप्ताह जो डाक मिली है, वह भी उत्साहजनक नहीं है। पिछली तीन डाकों के पत्र बराबर ऐसे ही मिले हैं। मैंने एक डाक का उत्तर भी नहीं दिया था। पर सभी पत्र ऐसे हैं। पिताजी के पत्रों से पता लगता है कि मेरे बाहर आने से प्रसन्न नहीं हैं। उधर सुभद्रा ने लिखा है कि गुरुकुल में मेरे विषय में कई बातें कही जाती हैं। जिनसे उसका मन उदास रहता है। साथ ही मैं यह भी सोचता हूँ कि तुम पर भी अधिक भार डालना अन्याय है। इन्हीं बातों को सोचकर मैंने यहाँ से शीघ्र लौट जाने का विचार कर लिया है। मेरी पहले इच्छा थी कि मैं यहाँ कुछ अधिक रहकर विद्योन्नति करूँ। पर अब मैं देखता हूँ कि मेरा समय समाप्त हो चुका। इन पन्द्रह दिनों में स्विट्जरलैण्ड देखकर मैं वापिस लौट पड़ूँगा। शायद उत्सव तक पहुँच जाऊँ।

विजय के सब रजिस्टर रखवा छोड़ना। मैं सबका एक-एक पैसा वापिस देना चाहता हूँ।

अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस पत्र के पहुँचने तक शायद मैं चल भी दूंगा।

एक बात। मेरे पत्र यदि फाड़े न हों तो, उन्हें सम्भालकर रख छोड़ना। मैंने जो बातें उनमें लिखी हैं, जिनको मैं नोट नहीं कर सका। जो पत्र मैंने पिताजी को लिखे हैं, वे भी रख छोड़ना।

तुम्हारा उदास भाई
हरीश

पुनश्च—

एक बात बिना लिखे नहीं रह सकता। आज तक जितने पत्र मिले हैं, उनमें से कोई भी पत्र प्रेम से इतना भरा नहीं है, जितना बहन वेदकुमारी का। इससे पहले मुझे मालूम नहीं था कि बहन का प्यार क्या होता है। उसे कई बार पढ़ते हुए मेरे आँसू निकल पड़े हैं।

ह० च०

× × ×

पैलेस होटल,
लन्दन,

२३–४–१५

प्यारे भाई,

कल देश के तीन-चार पत्र और अखबारों का एक बण्डल मिला। मिलने में देरी इसलिए हुई कि ये पत्र जनीवा से लौटकर यहाँ आये थे। पिताजी का, और सुभद्रा का—दोनों पत्र पढ़े। उन्हें पढ़कर मेरी क्या दशा हुई, कह नहीं सकता। तुम्हारा पत्र कोई नहीं आया, शायद तुम नाराज हो। शायद सभी मुझसे नाराज हैं। और मैं मानता हूँ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि इसमें मेरा ही दोष है । मैं पिताजी को एक लम्बा पत्र लिखना चाहता था, पर उन्हें लिखते हुए दिल धड़कता है। मैंने उनकी चिन्ता को इतना बढ़ाया है कि मैं नहीं जानता कि मैं किस मुंह से उन्हें कुछ लिखूँ। इससे यह न समझना कि मैं उस बोझ को अनुभव नहीं करता जो मैंने तुम पर डाला है और जिसके डालने का मुझे कोई अधिकार नहीं था। पर मैं यही समझता हूँ कि तुम अपने भाई को क्षमा कर दोगे। किसी-किसी क्षण मैं अनुभव करने लगता हूँ कि मैं पिताजी के और तुम्हारे योग्य बिलकुल नहीं था। पहले मैं समझा करता था कि यह संसार ही विचित्र है, जिसमें मैं अच्छी तरह काम नहीं कर सकता । पर अब मेरा अभिमान टूट गया है । अब मैं समझता हूँ कि शायद यह सब मेरा ही दोष है । मेरा मन आज इतना दुखी है कि मैं कुछ अधिक लिख नहीं सकता ।

तुम्हारा
हरीश

× × ×

नियाग्रा फाल
१७–९–१५

प्यारे भाई,

यह शायद अन्तिम पत्र है, जो मेरे देश पहुँचने से पहले तुम्हें मिलेगा । प्रचारक में भी पढ़ा और पिताजी ने भी लिखा है कि उन्होंने २ नवम्बर को संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है । ऐसी अवस्था में यहाँ नहीं रह सकता । मैं एक बार पिताजी के संन्यास लेने से पहले उनसे पुत्र के रूप में मिलना चाहता हूँ । आना निश्चित हो गया है । मैंने इंग्लैण्ड का टिकट खरीद लिया है । वहाँ पहुँचते ही देश के लिए चल दूंगा । कोई दैवी आपत्ति ही अब मुझे रोक सकती है। देश पहुँच कर जो होगा, देखा जायेगा। पर मैं एक बार पिताजी को मिलने का यत्न अवश्य करना चाहता हूँ । मैं दो सप्ताह से यत्न कर रहा था, पर अमरीकन जहाजों पर बहुत यात्री जाते हैं, दो सप्ताह तक टिकट नहीं मिला । अगले सप्ताह का टिकट मिल गया है । इस हिसाब से भी मैं दो नवम्बर तक शायद ही पहुँच सकूँ। १५ नवम्बर तक पहुँच सकूँगा। क्या दीवाली दो नवम्बर को है ? क्या लाहौर के उत्सव पर संन्यास लेना सम्भव नहीं ? यह कहने का कोई अधिकार तो नहीं है, पर यदि मैं पहले न मिल सका, तो जन्म भर यह इच्छा रह जायेगी। देखूँ, भाग्य में क्या है ।

शेष योजना वहाँ पहुँच कर बनाऊँगा । जैसी तुम्हारी सलाह होगी, वैसा करूँगा । पत्र कब निकलेगा ? जनवरी से निकालो, तो मैं अपना वृतान्त उसी में लिखाना शुरू कर दूंगा ।

भाई
हरीश

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अमरीका

प्यारे भाई,

बड़े दिनों के पीछे तुम्हारे दो पत्र मिले। वे भी फटे हुए थे। जो कुछ बचकर मिल जाता है, उसे ही अपना भाग्य समझता हूँ। यदि अधिक लिखने की आशा न हो तो छोटा-सा कार्ड ही डाल दिया करो। मैंने पत्र लिखे और कुछ लेख भी भेजे थे, वे नहीं मिले तो आश्चर्य है। यद्यपि लड़ाई के समय में यह असम्भव नहीं है। फिर कुछ लेख भेजूँगा। देखें वे मिलते हैं या नहीं ?

पिताजी के संन्यास का हाल कल 'प्रचारक' में पढ़ा। उसे पढ़कर मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरे भाग्य में उनके अन्तिम दर्शन नहीं थे। मुझे यह भी शोक सदा रहेगा कि मैं उनकी वह सेवा न कर सका, जो मुझे करनी चाहिए थी। अब यदि उनकी आन्तरिक इच्छा का कुछ भाग भी पूरा कर सकूँ तो उसे ही सेवा समझूँगा।

प्यारे भाई ! अब परिवार का बोझ तुम पर ही है। इस बोझ को उठाने में मैं अपना अहोभाग्य समझता पर परमात्मा ने वह बोझ तुम्हारे कन्धों पर रखा है। ऐसी अवस्था में मुझे सूझता नहीं कि मैं क्या लिखूँ। केवल शब्दों द्वारा सहायता देना निरर्थक ही नहीं, गुस्ताखी भी है। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जितना बोझ तुम सिर पर उठाते हो, उतना ही मेरा सिर नीचा होता है। परमात्मा ने चाहा और शक्ति दी तो इससे उऋण होने का यत्न करूँगा।

सुभद्रा के विषय में मुझे चिन्ता है। वह सदा निराशा के पत्र लिखती है और यह स्वाभाविक है। तथापि उसे समझना चाहिए कि मैं आराम के लिए यहाँ नहीं बैठा। परमात्मा ही जानता है कि मुझे कितना कष्ट और चिन्ता है। तथापि मैं उसका हाल लिखकर सबकी और चिन्ता नहीं बढ़ाना चाहता। कृपा करके ऐसा प्रबन्ध करो कि सुभद्रा गुरुकुल में ही रहे, और उसे कभी यह अनुभव न हो कि वह पराई है या वह किसी पर भार है। मैं समय-समय पर जो बन पड़ेगा कुछ सहायता भेजता रहूँगा।

हरीश

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी के पुत्र जयन्त की श्रद्धांजलि

पिताजी से मेरा रिश्ता ऐसा रहा है जैसे देव से भक्त का।

मन्दिर में जाकर पत्र-पुष्प लेकर नियम से जानेंवाले भक्तों में से मैं कभी नहीं रहा। शायद मुझे इसीलिए प्रायः लोगों ने नास्तिक कहा। लोगों ने क्या कहा उसपर मैंने कभी कान नहीं दिये और न कभी अपनी ओर से सफाई पेश की।

भगवान के प्रति मेरा दृष्टिकोण कुछ अजीब-सा रहा है। जब कभी मैं सुखी और प्रसन्न हुआ हूँ, सफलता मुझे मिली है और मेरी कोई साध पूरी हुई है, मैंने भगवान् को दिल-ही-दिल में धन्यवाद दिया है। परन्तु कष्ट में भगवान् को याद करना या अभावों में उससे माँगना रुचिकर नहीं। जो मेरा व्यवहार पिताजी के साथ रहा, वही भगवान् के प्रति भी, इसीलिए मन्दिर मुझसे सदा दूर रहा, शायद इसीलिए मैं मन्दिर का पुजारी न बन सका और इसीलिए पुजारी के सभी अधिकारों और उत्तराधिकारों से वंचित रहा। परन्तु मुझे उसका लेशमात्र भी दुःख नहीं, क्योंकि पुजारी यद्यपि मन्दिर की सम्पत्ति का अधिकारी होता है, वह प्रसाद का अधिकारी नहीं होता। प्रसाद भक्त ही पाता है, पुजारी तो उसे केवल बाँट देने का अधिकारी होता है।

देव अथवा भगवान् भक्त से क्या चाहता है ? कैसे व्यवहार एवं कर्म की आशा करता है ? किस विचार अथवा कर्म को उचित अथवा अनुचित मानता है ? उसकी परिभाषा को बनानेवाले और बतानेवाले लोगों में प्रत्येक का अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोंण होता है, जितने मुह, उतनी बातें होती हैं।

पिताजी मेरे लिए न केवल पिताजी थे, वह मेरे गुरु भी थे। या यह कहूँ कि वह मेरे गुरु पहले थे, और पिता बाद में।

पिताजी से प्रायः दूर रहने पर मैं अनेक सांसारिक उपलब्धियों से वंचित रहा, परन्तु उनसे कितना भी दूर रहने पर, वर्षों न मिलने पर भी एक भक्त की तरह मैं उन्हें भूल न सका उनके गुणों एवं शक्तियों के प्रभाव से दूर न रह सका।

जब भी लेखनी मेरे हाथ में आयी, उससे जो अक्षर निकले, उनका रूप पिताजी की लेखनी से निकले अक्षरों के रूप जैसा था। जो भाषा निकली, उसकी सरलता, उसका हिन्दुस्तानीपन पिताजी की भाषा से मिलता-जुलता था और अभिव्यक्ति में जो स्पष्टवादिता पिताजी की लेखनी में थी, मेरी लेखनी ने भी उस परम्परा को कायम रखने का प्रयत्न किया।

देश एवं राष्ट्र के प्रति जब भी मैं सक्रिय हुआ, सदा पिताजी का एक आदेश मेरा मार्ग प्रदर्शन करता रहा कि व्यक्ति को देश एवं राष्ट्र के लिए अपना हक अदा करना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देश-सेवा को व्यापार एवं व्यवसाय नहीं बनाना चाहिये और अपने से जो बन पड़े उस नेकी को कर के कुएँ में डाल देना चाहिए और भूल जाना चाहिए ।

पिताजी ने ही मुझे क्रान्तिकारी बनाया । डिकेन्ज के उपन्यास 'टेल आफ टू सिटीज' की कहानी उन्होंने हम बच्चों को शायद आठ-दस वर्ष की आयु में ही सुनायी थी, वह भी विस्तार से । इसी प्रकार रूसो, सुकरात, लैनिन आदि प्रमुख समाजशास्त्रियों एवं विचारकों के जीवन-चरित्रों से भी हमें बचपन में ही परिचित करा दिया था ।

रात को खाना खाने के बाद, नये बाजार में, वीर अर्जुन प्रेस तथा कार्यालय के ऊपर, तीसरी मंजिल की छत पर सबकी खाटें बिछ जाती थीं और तब सब अपनी-अपनी खाट पर आराम से लेट कर प्रतीक्षा करते थे, शान्त एवं मौन, एकाग्र होकर । तभी पिताजी आरम्भ करते थे "कल मैंने तुम्हें यहाँ तक सुनाया था कि डाक्टर मैनेट से मिलने जब लूसी गई तो उस समय उसने देखा—" और तब तक काव्य सुनाते रहते थे जब तक कि कहानी किसी ऐसे प्रसंग तक पहुँच जाती थी कि अगले दिन के लिये उत्सुकता बनी रहती थी ।

उन्हीं उपन्यासों की कहानियाँ जिन्हें मैंने पिताजी के मुँह से सुना था, जब पढ़ी, तो मुझे लगा कि पिताजी की सुनायी कहानी कहीं अधिक मनोरंजक थी । उनका बयान करने का अपना एक लटका था । शायद इसलिए कि कहानी की मौलिकता पिताजी के मुँह से सुनने के बाद नष्ट हो गयी थी ।

कभी भी मैं कोई कहानी या उपन्यास लिखने लगता हूँ तो उसे लिखते समय मन में बोलता जाता हूँ । अपनी लिखी कहानी को भी मैं जब तक एक बार बोलकर न सुन लूँ या किसी को सुना न लूँ, मुझे सन्तोष नहीं होता । कहानी कानों में घुलती चली जानी चाहिए ।

मेरे साहित्यिक जीवन की नींव पिताजी ने बहुत ही बचपन में डालनी आरम्भ कर दी थी ।

पिछली रात एक कहानी पूरी हो चुकी थी । उस रात हम एक नयी कहानी आरम्भ होने की प्रतिक्षा कर रहे थे कि पिताजी ने कहा—"तुम लोगों को मैं बहुत-सी कहानियाँ सुना चुका हूँ और अनेक प्रसिद्ध लेखकों के नाम भी तुम जान गये हो । आज मैं तुम्हें प्रसिद्ध लेखकों एवं साहित्यिकारों के बारे में बताता हूँ । अनेक विश्वविख्यात साहित्यकारों के सम्बन्ध में उन्होंने बताया । उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का भी जिक्र किया और इस बीच उन्होंने बताया कि जितने भी प्रमुख साहित्यकार हुए हैं, उनके जीवन में एक बात समान थी कि वह दुनिया में बहुत घूमे थे । जो साहित्यिक अपनी नजर से दुनिया को जितना अधिक देखता है, वह जितने तरह के लोगों से मिलता है, जितने देशों-प्रदेशों में घूमता है, उतना ही उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता है । क्योंकि साहित्यकार के जीवन में स्थायित्व नहीं होता, वह सदा चहकने का आदी होता है, इसलिए प्रायः साहित्यकार अभावों में ग्रस्त रहते हैं । उन्हीं दिनों पिताजी के मुँह से 'लिटरेरी वैगाबौंड" मैंने सुना था । मुझे याद है कि मैंने उनसे इसके अर्थ पूछे थे और उन्होंने कहा था "क्योंकि साहित्य-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार एक जगह नहीं टिकता, इसलिए उसे आवारा कहते हैं और उसकी आवारगर्दी से साहित्य का सृजन होता है, इसलिए वह साहित्यिक आवारा कहलाता है।"

उसके एक युग बाद, शायद १९४६ में मैं चार वर्ष के बाद पिताजी से मिला था। सन् ४२ की क्रान्ति में कूदकर एक वर्ष से अधिक भगोड़ा बना घूमता रहा था, फिर सवा तीन महीने लाहौर की हवा खायी और शाही किलों में रखे जाने के बाद फिरोजपुर जिलेमें करीब ढाई साल नजरबन्द रहा था। जेल से छूटने के बाद तीन महीने पूर्वजों के ग्राम तलवन में नज़रबन्द रहा। मुझ पर जब पाबन्दी हटाई गयी, तो मैं दिल्ली न जाकर हरिद्वार चला गया था। शायद ६ महीने मैं हरिद्वार में रहा और मैंने किसी को अपना पता भी नहीं दिया। मेरा प्रोग्राम था कहीं एकान्त स्थान में रहकर जेल में लिखी रचनाओं को एक बार दुहराना और लिखना।

लगभग ४ वर्ष बाद मैं एक दिन पिताजी से मिलने दिल्ली पहुँच गया।

उस समय तक 'वीर अर्जुन' तथा प्रेस एक लिमिटेड कम्पनी के आधीन किया जा चुका था। पिताजी उसके मैनेजिग डायरेक्टर थे।

पिताजी ने जब मुझसे पूछा—"क्या करना चाहते हो?" तो मैंने कहा, "साप्ताहिक वीर अर्जुन का सम्पादन।" उन्होंने कुछ सोचा और कहा कि मुझे पत्र के तात्कालिक सम्पादक श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालंकार के साथ संयुक्त सम्पादक के रूप में नियुक्त कर देंगे, जिसे मैंने स्वीकार नहीं किया। इसलिए स्वीकार नहीं किया कि दो संयुक्त-सम्पादकों का दृष्टिकोण यदि एक-सा न हो अथवा दोनों में एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और बीच का कोई रास्ता निकालने की क्षमता न हो तो परिणाम संघर्ष होता है।

तब पिताजी ने दैनिक के साथ रविवारीय संस्करण की योजना बनायी और मुझे उसका स्वतन्त्र सम्पादक बना दिया। एक महीने बाद रविवारीय की योजना को बन्द करने का निश्चय किया गया। शायद उसका कारण था कि दैनिक के साथ रविवारीय संस्करण छपने के बाद पाठकों की साप्ताहिक की आवश्यकता नहीं रहती थी और साप्ताहिक की बिक्री पर असर पड़ने लगा था। किसी भी लिमिटेड कम्पनी में डायरेक्टरों में दलबन्दी होती है। जल्दी ही मैंने समझ लिया कि सम्पादकीय-विभाग में भी दलबन्दी चल रही थी। मैनेजिग बोर्ड के कुछ सदस्यों ने रविवारीय की योजना का विरोध किया और पिताजी ने लोकतन्त्रीय नीति के अनुकूल उसे बन्द कर दिया। मेरे सामने फिर साप्ताहिक में संयुक्त सम्पादन का प्रस्ताव रखा गया। परन्तु मैंने स्तीफा दे दिया और साथ ही निश्चय कर लिया कि पत्रकारिता मुझे सदा के लिए छोड़ देनी होगी।

स्वतन्त्रता से पूर्व पत्रकारिता एक मिशन थी। प्रत्येक पत्रकार अपने आपको देश का सिपाही समझता था। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस प्रकार राजनीति एक पेशा बन गयी थी, उसी प्रकार पत्रकारिता भी। स्वतन्त्रता के पश्चात् समाचार पत्रों पर उन लोगों ने अधिकार करना आरम्भ कर दिया, जिनके पास पूँजी थी या सत्ता थी। स्वतन्त्र-पत्र नाम की चीज रह ही नहीं गयी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कोई भी पत्रकार जो परतन्त्रता के जमाने में सत्यवादिता को एक गुण मानता था, स्वतन्त्रता के पश्चात् देशद्रोही कहा जाने लगा था। पत्रकारों का नैतिक स्तर गिरने लगा था। और प्रचलित पत्रों को साधन-सम्पन्न व्यक्तियों एवं संगठनों ने खरीद लिया था और पत्रकार केवल किसी-न-किसी का ढोल पीटने के अतिरिक्त कुछ करने का साहस नहीं कर सकते थे।

उस परिवर्तन को 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यम् न पलायनम्' को माननेवाले पिताजी ने भी अनुभव किया। 'वीर अर्जुन' बिक गया। शायद पिताजी ने अनुभव किया पत्रकार को उसके व्यवसाय से अलग रहना चाहिए। फिर उन्होंने 'जनसत्ता' दैनिक के सम्पादक के रूप में कुछ समय काम करने के बाद अनुभव किया कि स्वतन्त्र पत्रकारिता का युग समाप्त हो गया।

जब मैंने सुना कि पिताजी भी उसी निर्णय पर पहुँचे थे, जिस पर मैं पहुँच चुका था, तो मुझे सन्तोष हुआ। गुरु और शिष्य एक ही निर्णय पर पहुँचे तो प्रश्न के हल पर शंका नहीं की जा सकती।

पिताजी के पत्रकार जीवन के निकटतम सहकारी पं० रामगोपाल विद्यालंकार भी लगभग उसी निर्णय पर पहुँचे। उन्होंने भी समाचार पत्रकारिता को छोड़ दिया और कुछ समय अमेरिकन सूचना पत्रिका के सम्पादक विभाग में नौकरी करने के बाद अनुभव किया कि उनकी कलम की नोंक खुंडी हो गयी थी।"

मृत्यु से कुछ महीने पूर्व एक दिन पण्डित रामगोपालजी मुझे कैनाट पैलेस में मिल गये थे। पत्रकार जीवन के सम्बन्ध में बात चल गयी थी, तब उन्होंने एक बात कही थी, जो मुझे कभी नहीं भूलती, "महाभारत का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् जब पाण्डव हिमालय में जाकर गल गये थे, उसके पश्चात् न अर्जुन रहा था और न उसकी दो प्रतिज्ञाओं का अर्थ रह गया था। अब जमाना अर्जुन के नोकीले तीरों का नहीं, डाल्डा और पोल्सन के टीनों का है।

× × ×

एक लम्बे अर्से तक दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य और दिल्ली के सबसे उग्र एवं गम्भीर पत्रकार एवं वक्ता रहने के बाद भी जब दिल्ली में विधान सभा बनी और पिताजी को उसके लिए निमन्त्रित नहीं किया गया, तो कुछ लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु मुझे नहीं हुआ। पिताजीने कभी भी देश-सेवा को अपना पेशा नहीं बनाया था और न ही कभी उससे व्यक्तिगत लाभ के लिए इच्छा की थी, इसलिए उन्हें दिल्ली का मुख्य मन्त्री नहीं बनाया गया, न उन्हें केन्द्रीय मन्त्री मण्डल में लिया गया, इसमें आश्चर्य की क्या बात थी ?

राजनीतिक सत्ता न योग्यता पर मिलती है और न बलिदान के आधार पर। सत्ता उनको मिलती है, जो सत्ता पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, अपने ऊपर की कुर्सी पर बैठे सत्ता-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धिकारी-की-खुशामद भी करते हैं और साथ ही इस घात में भी लगे रहते हैं कि कब मौका मिले और उसकी टाँग घसीट लें ।

पिताजी को न खुशामद करनी आती थी, न दलबन्दी करके और फूट डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के हथकंडे आते थे और न वह अवसरवादी थे, इसलिए राजनीति के क्षेत्र में उन्हें कोई पद नहीं मिला । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

एक बार, मेरे बचपन की बात है, पिताजी दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी की सीट के लिए चुनाव लड़ रहे थे । उनके प्रतिद्वन्दी को जीतने की बिलकुल आशा नहीं थी, एक ओर दिल्ली की जनता थी और दूसरी ओर सारी अंग्रेजी नौकरशाही । मतदान के पहले दिन के परिणामों का अनुमान लगाने के पश्चात् राष्ट्रीय कार्यकर्ता पूरी तरह आश्वस्त हो गये थे कि जीत पिताजी की होगी । अगले दिन फिर मतदान होनेवाला था । सारी तैयारी थी, परन्तु सुबह समाचार आ गया था कि वीर क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह को पिछली रात फाँसी दे दी गयी थी । पिताजी ने यह समाचार सुना तो मतदान बन्द करने की घोषणा कर दी । बहुत से साथियों ने उनसे कहा कि मतदान में भाग न लेने से सरकारी पिट्ठू जीत जायेगा, परन्तु पिताजी ने कहा था, "नहीं, मतदान नहीं होगा ।"

यदि पिताजी के स्थान पर कोई अधिक स्वार्थी एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति होता तो मतदान बन्द न करता ।

सन् ५६ या ५७ में एक बार पिताजी ने मुझसे कहा था—"यदि तुम स्वतन्त्रता के बाद दिल्ली में जम गये होते तो तुम्हें आसानी से दिल्ली विधान-सभा की सीट मिल गयी होती ।" जब मैंने कुछ नहीं कहा, केवल मुस्करा दिया था तो वह बोले थे—"तुम पुत्र किसके हो ।" जैसे कि उन्होंने स्वीकार कर लिया था कि उनका पुत्र यदि किसी सरकारी कुर्सी का अधिकारी नहीं, तो इसमें गलत क्या था ।

× × ×

पिताजी के स्वर्गवास के कुछ दिन बाद एक रिश्तेदार मुझे मिले और उन्होंने मुझे सलाह दी कि पिताजी के उत्तराधिकार के लिए मुझे प्रयत्नशील होना चाहिए । इस बात पर मुझे गुस्सा भी आया था और उस व्यक्ति पर दया भी । उन्हें मैंने कह दिया था कि मुझे पिताजी ने वह सब पहले ही दे दिया है, जो मुझे चाहिए, इसलिए वे चिन्ता न करें ।

जाते समय वे बोले थे,—"अच्छा ? पण्डितजी तो बहुत गहरे निकले ।"

शायद वह समझते थे कि पिताजी गुप्त रूप से कुछ धन दे गये थे । मैंने उन महाशय की गलतफहमी दूर नहीं की, उसकी आवश्यकता ही नहीं थी ।

मैं जानता हूँ, पिताजी से मुझे उत्तराधिकार में वह सब मिल गया है, जो कि उन्हें अपने पिताजी से मिला था ।

वह उत्तराधिकार है नि:स्वार्थ देश-सेवा का अधिकार और लेखनी द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार । यह दोनों ऐसे अधिकार हैं, जिनके कारण न किसी को स्पर्धा हो सकती है और जिन्हें कोई छीन नहीं सकता ।

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरा पत्रकार जीवन एक अजीब तरीके से शुरू हुआ। वैसे तो मेरी आँख ही प्रेस और पत्र के वातावरण में खुली थी, खिलाड़ी होने के कारण मेरा ध्यान पढ़ाई-लिखायी की ओर कम रहा। क्रिकेट, हाँकी, बैडमिंटन, टैनिस, वालीबाल आदि सभी टीमों में मेरा नाम रहा, इसके अतिरिक्त व्यायाम और तैरने का भी शौक लग गया था। फिर भी उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने का अवसर और समय मैं निकाल ही लिया करता था।

फर्स्ट इयर में मैं फेल हुआ था और वह भी हिन्दी में। पिताजी की चिन्ता और निराशा स्वाभाविक थी। इतने शिक्षित परिवार का लड़का अपनी क्लास में पहला-दूसरा न रहे, कम-से-कम सामान्य अच्छे नम्बरों से तो पास होना ही चाहिए था।

किसी प्रकार इण्टर पास करने के बाद जब मैं थर्ड इयर में था, उन दिनों पिताजी बम्बई में एक पत्र प्रकाशन की योजना बना रहे थे। एक महीने मेरी फीस मुझे कार्यालय से समय पर नहीं मिली और खजाँची के पास जाने पर कई दिन तक आजकल, आजकल सुनने को मिला। कालिज के रजिस्टर में मेरा नाम काट दिया गया।

तभी मैंने निश्चय किया कि मुझे आगे नहीं पढ़ना है।

उन्हीं दिनों पिताजी बम्बई से दिल्ली आये, तो उनको मेरे कालेज छोड़ देने का समाचार मिला। पिताजी ने मुझसे पूछा तो मैंने अपना निश्चय दोहरा दिया।

"तो क्या करोगे?" उन्होंने पूछा।

"काम करूँगा।"

"क्या काम करोगे?"

"मुझे सम्पादकीय विभाग में लगा दीजिये।"

"सम्पादकीय विभाग में?" उन्होंने आश्चर्य से पूछा।

"जी।"

बड़े धैर्य से, शान्त स्वर में पिताजी ने कहा,—"सम्पादकीय विभाग में तुम क्या करोगे? मैं स्वयं चाहता था कि तुम अपनी शिक्षा पूरी कर लेते और तुम्हें पत्रकारिता में लगा देता, परन्तु तुम्हारे स्कूल और कालेज के रेकार्ड को देखकर मुझे निराशा ही हुई है।"

"मुझे आप अवसर दीजिये। यदि साप्ताहिक में मुझे लेखराम के साथ लगा दें तो. ."

उन्होंने कुछ रुककर सोचा, बोले,—'अच्छा, लेखराम से बात करूँगा।"

लेखराम बी० ए० साप्ताहिक अर्जुन के सम्पादक मुझ से आयु में बड़े हैं, परन्तु उनसे मेरी मैत्री उस समय से थी, जबकि उन्होंने और श्री गौतम त्रिवेदी ने 'रंगभूमि' नामक प्रथम सिनेमा-पत्रिका निकाली थी।

पिताजी ने लेखराम और पण्डित रामगोपालजी से बात की और शायद मुझे किसी भी उपयोगी कार्य में लगाने के विचार से साप्ताहिक में एपरेंटिस के रूप में रु० ३५.०० मासिक पर लगा दिया।

यह बात शायद १९३७ की है।

सम्पादकीय कार्यालय में जितनी डाक आती थी, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ एवं समालोचनार्थ पुस्तकें आदि, उस सब सामग्री को मैं आद्योपांत पढ़ जाता था। कहानियों, लेखों,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कविताओं एवं उद्धरण के योग्य काटी कतरनों को अलग-अलग छाँटकर लिफाफों में भर देता था और उन पर अपनी टिप्पणी देकर लेखराम के सामने रख देता था ।

पहली तनख्वाह मिलते ही मैंने ८ रुपये महीने पर एक मकान ले लिया और ८ रुपये महीने पर एक होटल में खाने की व्यवस्था कर ली । मकान की व्यवस्था करने के बाद मैं पिताजी से मिला और बताया कि मैंने अपने रहने-खाने की स्वतन्त्र व्यवस्था कर ली है ।

"भली प्रकार सोच लिया है ?"

"जी ।"

"तो ठीक है ।" पिताजी ने कहा ।

यही तीन संवाद पिताजी और मेरे बीच दोहराये गये । जबकि मैंने १९४२ में पिताजी को सूचित किया कि मैं अगस्त क्रान्ति के कार्य में लग चुका था और अर्जुन से अलग होना चाहता था । और फिर जब मैंने जेल से आने के बाद अंतिम बार अर्जुन से सम्बन्ध तोड़ा था ।

मुझे याद नहीं कि पिताजी ने कभी भी अपना दृष्टिकोण मुझ पर अथवा मेरे सामने किसी अन्य पर थोपने का प्रयत्न किया हो । वह कभी लम्बी बहस नहीं किया करते थे । जिस प्रकार वह कोई भी निर्णय करते थे, बाद में उस पर दोबारा नहीं सोचा करते थे । उसके विपरीत परिणामों पर पश्चात्ताप नहीं करते थे, उसी प्रकार वह चाहते थे कि दूसरे भी भली प्रकार सोच-समझकर अपना मार्ग चुन लें और फिर उस पर चलते जायें ।

१९५४ में जब मैं फिर कई साल बाद पिताजी से मिला तो मेरे रूप को देखकर वह मुस्कराये थे । मैंने खादी का कुर्ता और पाजामा पहना हुआ था, गले में झोला था और शायद साल भर से न कटे रूखे बेतरतीब बिखरे बाल थे ।

"पिछली बार जब तुम मुझे मिले थे, उस समय भी तुम्हारी ऐसी ही रूप-रेखा थी ।" उन्होंने पूछा ।

"परिवर्तन होना चाहिए था क्या ?" मैंने पूछा था ।

"नहीं, यह तो नहीं कहना चाहता, लेकिन अब तो तुम्हें यह खानाबदोशी छोड़कर जीवन में स्थायित्व ले आना चाहिए ।"

"मुझे तो ऐसे ही अच्छा लगता है ।" मैंने कहा तो उन्होंने मेरी पीठ पर हल्की-सी थपकी दी थी, "मैं जानता हूँ ।" उनकी इस छोटी-सी बात "मैं जानता हूँ" में शायद व्यक्तिगत, पिता के रूप में निराशा भी थी; परन्तु साथ ही एक गुरु के रूप में आत्म-गौरव भी, कि मैंने जीवन की जो दिशा चुनी थी, उस पर बिना किसी पछतावे के चला जा रहा था, मस्ती से, बिना मुड़कर देखे ।

उसी बार उन्होंने मुझसे पूछा—"अच्छा जयन्त तुमसे यदि कोई पूछे कि तुम्हारा पेशा क्या है, तो तुम क्या कहोगे ?"

"नुक्सान उठाना ।" मैंने उत्तर दिया ।

उन्होंने सुना, एक बार उन्होंने एक घूंट-सा घुटका, फिर मेरी ओर आँख उठाकर मुस्कराये ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"जान-बूझकर नुक्सान का सौदा किया करता हूँ ।" मैंने कहा ।

"जानबूझकर ?"

"जी, अनुभव कमाने के लिए नुक्सान उठाया करता हूँ ।"

"कुछ लिख रहे हो ?"

"जी । लिखे जा रहा हूँ ।"

"कुछ छपा ।"

"जी नहीं ।"

"प्रयत्न किया ?"

"जी नहीं ।"

"क्या लिखते हो ?"

"उपन्यास, कहानियाँ ।"

"एक उपन्यास मुझे देना, मैं देखूँगा ।" उन्होंने कहा तो मैंने झोले में से निकाल कर क्रान्तिकारी उपन्यास की पाण्डुलिपि उनके सामने रख दी ।

"थैली में और क्या-क्या है ?" उन्होंने पूछा, "कई बार उत्सुकता हुई है देखने की कि इतना बोझ सदा कन्धे पर लिये रहते हो, यह क्या है ।"

झोले में कैमरा, पेन, एक पाकेट डायरी, चाबी के गुच्छे के साथ एक चाकू, एक पैकेट बिस्कुट, एक क्लीप, फाइल में कुछ कोरे कागज, अन्तर्देशीय पत्र आदि के अतिरिक्त हेयर ब्रश और रंग की ट्यूबें थीं ।

वह हँसे—"मेरा अनुमान ठीक ही निकला । केवल एक ही चीज नहीं है, पढ़ने के लिए कोई पुस्तक । एक दिन तुम्हारे थैले का जिक्र आया तो मैंने अनुमान लगाया था कि क्या-क्या हो सकता है । वे सब चीजें तो जो तुमने निकाली हैं, मैंने गिनाई थीं ।"

मेरे पास जो खाली कुर्सी थी, उस पर मैंने अप्टन शिक्लीयर का उपन्यास "आयल" रख दिया था । उसे मैं मलकागंज रोड आते समय बस में पढ़ रहा था, हाथ में ही था, बैठते समय पास की कुर्सी पर रख दिया था, वह उठाकर मैंने दिखाया—"अब तो आपकी अनुमानित सूची पूरी हो गयी ।"

पिताजी ने किताब ली, उसके कुछ पन्ने पलटे, एक पृष्ठ पर उनकी नजर अटक गयी । उसके किनारे पर मैंने कुछ पंक्तियों को एक कोष्ठक में बाँध दिया था । अन्य दो-तीन पृष्ठों पर भी वैसे ही निशान थे और एक पृष्ठ पर मैंने लिखा था, "यदि जीवन में एक भी उपन्यास मैं इस स्तर पर लिख पाऊँ, तो समझूंगा मेरी साधना सफल हो गयी ।" पिताजी ने बोलकर इन शब्दों को पढ़ा था और पुस्तक बन्द करते हुए कहा था, "लिख लोगे ?"

अपने पिता, गुरु और देव से इन दो शब्दों को सुनकर मेरी आँखों में आँसू आ गये थे, जिन्हें मैं छिपा गया था ।

पिताजी ने वह मेरा लिखा 'क्रान्तिकारी" उपन्यास हिन्द पाकेटबुक्स के व्यवस्थापक श्रीदीनानाथजी को देखने को दिया था । देते समय पुस्तक पर अपनी क्या सम्मति व्यक्त की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थी, मुझे नहीं पता। परन्तु 'क्रान्तिकारी' मेरा पहला उपन्यास था, जो छपा और बिका। जब वह छपा, पिताजी नहीं रहे थे।

आज मेरे छः उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। काश! पिताजी के सामने उनका प्रकाशन हो सका होता।

जब भी मेरा कोई उपन्यास पूरा होता है, मुझे पिताजी का आशीर्वाद याद आता है और मुझे अगला उपन्यास आरम्भ करने की प्रेरणा मिलती है। साथ ही मुझे पिताजी की एक और बात भी नहीं भूलती।

शायद मैं १२-१३ वर्ष का था। एक सुबह पिताजी के साथ में शाहदरे जा रहा था। यमुना के पुल से गुजरते हुए पिताजी ने कहा—"जब मैं तुम्हारी आयु का था तो तैर कर गंगा पार कर लिया करता था।" मुझसे पूछा, "तुम यमुना पार कर सकते हो?" उन्हें पता था कि मैं प्रायः तैरने के लिए कुदसिया घाट जाया करता था।

"कर सकता हूँ।" मैंने कहा।

"पुल पर से छलाँग लगा लोगे?"

"जी लगा लूँगा।"

"लगाओ।" पिताजी ने इस प्रकार कहा कि जो साथ थे, सबको आश्चर्य हुआ। मुझे भी।"

"क्यों डरते हो?"

"जी नहीं।"

"तो लगाओ छलाँग।" उन्होंने कहा।

मैं जूते, मोजे और कमीज उतार कर पुल के किनारे की ओर के एक गार्डर की ओर बढ़ा। फूफा डाक्टर सुखदेवजी साथ में थे। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और पिताजी से कहा—"आप क्या करते हैं, इन्द्रजी।"

"नहीं डाक्टर साहब, यदि इसे विश्वास है कि यह छलाँग लगा लेगा, तो लगाने दीजिये। इसके पीछे मैं भी जाऊँगा। आप चिन्ता न कीजिये।

डाक्टर साहब ने पिताजी को भी मना किया, परन्तु पिताजी ने जब आश्वासन दिया कि वह मेरे पीछे-पीछे जायेंगे तो विरोध बन्द हो गया।

मैंने छलाँग लगा दी थी, मेरे पीछे पिताजी ने भी। पहली डुबकी में मैं नीचे की रेत छू आया था। कुदसिया घाट के पायों से कूदने का मुझे अभ्यास था, इसलिए मैंने दो हाथ मारे और ऊपर आ गया। परन्तु ऊपर आते-आते मेरी साँस फूल गयी थी और मैंने कई घूंट पानी पी लिया था। मेरे पास आकर पिताजी ने कुछ क्षण के लिए बाँयें हाथ से पीठ के पास से मेरी नेकर की पेटी को पकड़ लिया। परन्तु जब मैंने सामान्य हाथ-पाँव चलाने आरम्भ कर दिये, तो उन्होंने छोड़ दिया और कहा—"शाबाश, चलो।"

किनारे के पास एक भँवर से उन्होंने मुझे एक जोर का धक्का देकर निकाल दिया था और मैं विजयी-सा किनारे जा लगा था।

इस घटना से पानी का डर सदा के लिए मेरे मन से निकल गया था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जब भी मेरे सामने कोई सकट आता है, मैं यमुना के पुल की उस छलाँग को याद करता हूँ और जूझ पड़ता हूँ।

एक और घटना मुझे याद आती है।

उन दिनों हम बैला रोड पर रहते थे। प्रति रविवार को पिताजी सारे परिवार को साथ लेकर कहीं-न-कहीं पिकनिक का प्रोग्राम बनाया करते थे। एक बार हम लोग यमुना के किनारे घूमने गये थे। एक कँटीली झाड़ी में मेरी कमीज की बाँह अटक गयी थी, मैंने जल्दी में झटका देकर बाँह छुड़ाई थी, जिससे एक लम्बा खोंचा लग गया था। पिताजी पीछे आ रहे थे।

"जयन्त।" उन्होंने पुकारा।

मैं रुका। सोचा, शायद डाँटेंगे। परन्तु मेरे पास आकर वह बोले—"चलो, एक बात याद आयी। ऐसे ही एक बार नेपोलियन अपने बेटे के साथ बगीचे में घूम रहा था और राजकुमार का कपड़ा, काँटों में उलझ गया था। लड़के ने झटका दिया था, जिससे उसका कपड़ा तो फटा ही, उसके खरोंच लगी और लहू भी निकल आया था। इस पर पता है नैपोलियन ने क्या कहा था ?"

मैं प्रतीक्षा कर रहा था।

"नेपोलियन ने एक ठण्डी साँस लिया था, सम्राट् नेपोलियन के साम्राज्य को उसका वंशज चला पायेगा कि नहीं, इसमें शक है।" कहकर पिताजी मुझसे आगे बढ़ गये थे।

उसके कुछ दिन बाद की एक और घटना है ? मैं चौथी मंजिल की छत पर पतंग उड़ा रहा था। पिताजी ऊपर आकर पेच देखने लगे थे। वह पेच मैं जीत गया था, परन्तु तभी दूसरी एक और पतंग मेरी पतंग की ओर वढ़ी चली आ रही थी।

उस दो आनेवाली चारखाना पतंग ने कुछ ही देर में चार पेच काटे थे। एक मैं भी काट चुका था, जब मैं अपनी पतंग को ऊपर ले जाकर झोंक देकर दूसरी पर डालने लगा तो पिताजी ने कहा—"ढील दो।"

मुझे कितना आश्चर्य हुआ था। पिताजी ने शायद कभी भी पतंग नहीं उड़ायी थी, कभी बहुत ध्यान से पेच लड़ते भी शायद नहीं देखा था। मैं सोच ही रहा था कि अगली पेच मैं 'हिच्चम' अर्थात् खींच से लड़ूँ या ढील से कि पिताजी का संकेत पाते ही मैंने एकदम डोर को ढीला छोड़ दिया। पतंग जो पूरी ताकत और चाल से नीचे की ओर झुकी खिंच रही थी, एक बार हवा में तैर गयी। परन्तु उसकी दिशा अब भी नीचे को ही थी। शायद उसी समय प्रतिद्वन्दी की पतंग की ओर से मेरी डोर छुई होगी। एक ही झटके में चारखाना कट गया।

उस दिन पतंग लड़ाने का एक और हथकंडा मेरी समझ में आया। क्या प्रायः जीवन में भी ऐसा ही नहीं होता कि जब संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। और मानसिक तनाव सबसे अधिक होता है, उस समय ढील दे देने से दूसरा पक्ष ढील का झटका बरदाश्त नहीं कर पाता।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बात यहाँ समाप्त नहीं हुई। तीसरे पेच में मेरी पतंग कट गई थी और करीब डेढ़ रील को मुझे खींचकर लाना था। कई जगह डोर रास्ते में पकड़ी और तोड़ी गयी, फिर भी पौन रील मैं ले आया था। अब छत पर डोर का एक अजीब जाल फैला हुआ था। मैं जब डोर को लपेटने लगा तो पिताजी ने पास आकर पूछा।

"क्या कर रहे हो ?"

"डोर लपेट रहा हूँ।"

"नीचे से खिचने पर वह उलझ नहीं जायेगी ?"

"जी, कुछ तो उलझ जायेगी।"

"तो इसे नीचे से नहीं ऊपर से लपेटो।"

'ऊपर से, कैसे ? ऊपर तो माँझा है।"

"माँझा अलग अण्टी कर लो। फिर सादी डोर को लपेट लेना।" कहकर वह चले गये थे। वह पहली ही बार थी कि सारी डोर बिना उलझे, बिना एक भी गाँठ लगे, चरखी पर लौट सकी थी।

सन् ४२ की क्रान्ति के दिनों में लाहौर की बात है। करीब तीन घण्टे से मैं घूम रहा था और जानता था कि एक सी० आई० डी० वाला मेरे पीछे लगा था। मुँह में पाइप लगाये, गैवरडीन का नेवी ब्लू सूट पहने, सिर पर इटालियन फेल्ट पहने मैं बड़ी मस्ती से चला जा रहा था। परन्तु पीछे, कभी पास, कभी दूर सी० आई० डी० वाले के पी० टी० शू की चाप निरन्तर सुन रहा था। चलते-चलते न जाने कैसे मुझे पतंग की डोर को दूसरे सिरे से लपेटनेवाली बात याद आयी और मैं दिल-ही-दिल में हँसा। मैं मुड़ा। अचानक मेरे मुड़ने से पिछलग्गू के पाँव उखड़ गये और वह हड़बड़ाकर एक गली में घुस गया। जब उसने मुझे गली के भीड़ से अपनी ओर आता देखा तो वह एक मकान में घुस गया। उसकी गुड्डी कट गयी थी और मैं कुछ दूर पर खड़ी टैक्सी लेकर सैर के लिए चल दिया था।

ऐसे ही छोटी-छोटी बातों से पिताजी इतनी बड़ी बात कह जाया करते थे कि उनको गाँठ बाँध लेने से बहुत-सी समस्याओं का सरल समाधान निकाला जा सकता है।

पिताजी के निकट मैं बहुत ही कम आया और रहा, विशेष रूप से जबसे अपने को बालिग समझने लगा था (हालाँकि अब भी बालिग हूँ, इसमें मुझे शक है)। फिर भी जितना, जब भी उनके निकट रहा, एकाध गुरु गाँठ मैं बाँध कर ही आया।

पिताजी ने जीवन की तो जो राह चुनी थी, मैं उस पर नहीं चल पाया। क्योंकि मुझे राह नहीं, दिशा मात्र चुननी थी। राह पर चलनेवाला भीड़ तो चुन सकता है, परन्तु वह सदा राह पर चलता है। परन्तु केवल दिशा की ओर चलनेवाला कभी राजमार्ग पर चलता है, तो कभी पगडण्डी पर। कभी उसे नदी-नाले तैरने होते हैं, तो कभी पहाड़ उतरने-चढ़ने होते हैं।

पिताजी चाहते थे मैं राह चुनूँ, परन्तु मुझे राह छोड़कर चलने में जो आनन्द आता है, उसे छोड़ नहीं पाया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुझे विश्वास है पिताजी ने जीवन की आँख से मेरी जिस अनुभव-यात्राओं को नहीं देखा, इन्हें अब अपनी सूक्ष्म आत्मा से अवश्य देखते होंगे और वह सन्तुष्ट होंगे।

मैं हूँ, परन्तु मेरा रक्त कैसे भुला देगा कि मेरा बीज ऐसे वृक्ष का है कि जिसने कितने भटके, हारे, थके यात्रियों को धूप में छाँह और वर्षा में सहारा दिया था, कि जिसके बौर पर भौंरों के झुंड मडराये थे और फलों ने कितनों की भूख मिटायी थी।

इन्द्रजी की पुत्री पुष्पा की पुष्पाञ्जलि

वे वात्सल्य की मूर्ति थे

"गर्मियों की छुट्टियों में हम लोग गुरुकुल कांगड़ी गये। मेरे पूज्य पिताजी स्व० (पं० इन्द्रजी) उन दिनों वहाँ के कुलपति थे। बच्चों की छुट्टियाँ होने पर अक्सर हम उनके पास चले आते थे।

रात का समय था। सब भोजनादि से निवृत्त होकर आँगन में बिस्तरों पर आ बैठे। पिताजी अपना सायंकाल का संक्षिप्त भोजन करके थोड़ा-सा टहलते थे। ज्यों ही वे कमरे से बाहर आये, मेरी बड़ी लड़की ने कहा—"नानाजी आज हमें कोई कहानी सुनाइयेगा।" उसके भाइयों ने भी एक स्वर में उसका समर्थन किया।

उनके नानाजी मुस्कराये—"बच्चो, तुम्हें कहानी सुनने का बहुत शौक है और मुझे सुनाने का।" पिताजी ने चारपाइयों की दो कतारों के बीच में चहलकदमी शुरू करते हुए कहा—"बच्चो, सबसे पहले तुम्हें रामायण की कहानी सुनाऊँगा, यह हमारी प्राचीनतम कथा है। आज से हजारों वर्ष पहले की बात है।...."

बच्चों को उनके नानाजी सुना रहे थे और मैं अपने बचपन की स्मृतियों को दोहरा रही थी, जब इसी प्रकार हम भाई-बहन बिस्तरों पर लेटते थे और इन्हीं धीर-गम्भीर कदमों से इसी प्रकार चहलकदमी करते हुए, पिताजी ने हमें कितनी ही कहानियाँ सुनायी थीं। उनके सुनाने का ढंग इतना रोचक होता था कि श्रोता उसी में बह जाता था। उनके मुँह से एक घटना बार-बार सुनकर भी जी अघाता नहीं था। घटनाओं के रोचक विवरण के साथ-साथ तारीख, समय को याद रखने में उनकी अनुपम प्रतिभा थी। किसी घटना को सुनाते समय वे जब सन् या तारीख का जिक्र करते तो आश्चर्य होता था। इसी से उनका संस्मरणात्मक साहित्य इतना रोचक और ज्ञानवर्धक है कि वह कहानी और इतिहास दोनों का काम देता है।

बच्चों के प्रति उनका प्रेम और ममता असीम थी। सबसे छोटी होने के कारण उनके प्यार का बड़ा हिस्सा मैं ही पाती थी। बहनजी या भैया से खूब लड़कर, पिताजी की गोद में बैठकर मैं उनकी शिकायत करती। क्योंकि मैं जानती थी कि वे मेरा ही पक्ष लेंगे। मैं सबसे छोटी जो थी। और मुझे सबसे अधिक उनके संरक्षण की आवश्यकता थी। मैं उसका कई बार दुरुपयोग भी करती थी, ऐसा भी मुझे याद है। वे कितना ही गुस्सा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्यों न हों, उन्होंने कभी किसी बच्चे को नहीं मारा। सदा ही प्यार से पास बैठाकर समझाया। उनके स्वभाव की मिठास, वाणी में अपनत्व, गम्भीरता और दूसरे के दु:ख को समझ सकने की शक्ति, उनके चरित्र के मुख्य पहलू थे। किसी के भी कष्ट की बात को वे बड़ी सहानुभूति से सुनते और यथासाध्य सहायता देते। हम लोग अपनी छोटी-छोटी समस्याएँ उनके सामने ले जाते और वे बड़ी सहानुभूति से सुनते और सलाह देते। हर कठिनाई में वे हमें उस पर विजय पाने का उत्साह देते और हिम्मत बँधाते। मुझे याद है जब कुछ ही वर्ष पहले बैंक की अच्छी-भली नौकरी छोड़कर हमने खेती का पेशा अपनाने का निश्चय किया तो अधिकांश सम्बन्धियों के विरोध के बावजूद उनका आशीर्वाद हमें मिला। उन्होंने हमें हिम्मत बँधाई और बताया कि स्वतन्त्र पेशा, वह भी खेती, नौकरी से बहुत श्रेष्ठ है। उनका आशीर्वाद पाने पर हमें अन्य किसी के मतामत की चिन्ता न रही। उसके बाद वे जब भी मिलते फार्म के बारे में विस्तार से पूछते।

विरोधियों की धमकियों से वे कभी नहीं डरे। पता नहीं उनकी क्षीण देह में इतना प्रबल आत्मविश्वास और बल कैसे एकत्र था। उनकी मानसिक संकल्पशक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार एक जादूगर ने पूरे पाँच मिनट तक उनको सम्मोहित करने की कोशिश के बाद यह घोषणा की थी, उनकी मानसिक शक्ति उसके सम्मोहन के मुकाबले में अधिक शक्तिशाली है।

स्वल्पाहार और नियमित जीवन

मैंने जब से होश सम्भाला, उन्हें सदा परहेज का ही भोजन लेते देखा। वे अपने को बचपन का बीमार कहते थे। फिर भी पहले उनकी सेहत इतनी खराब नहीं थी, मुझे याद है अपने बचपन की, जब वे गर्मियों में बनियान उतारकर चारपाई पर लेटते तो उनके गोल-गोल पेट पर बाजा बजाने में मुझे बड़ा आनन्द आता। पर फिर निरन्तर जेल-यात्राओं और जेल के कुपथ्य से उनकी सेहत खराब होती चली गयी। केवल उनकी इच्छा-शक्ति और संयम ने ही, उनको इतना कार्य करने योग्य बनाये रखा। उनकी अति संक्षिप्त भोजन-व्यवस्था देखकर डाक्टर लोग यही कहते थे कि आप भोजन द्वारा जीवित नहीं हैं, बल्कि आपकी इच्छा-शक्ति ही आपको जीवित रखे है। इतने अल्प भोजन द्वारा इतना गतिशील जीवन बिताना असम्भव-सा ही लगता है। कितना ही स्वादिष्ट और विविध प्रकार का भोजन घर में बने, वे अपनी मूँग की दाल और छोटा-सा एक फुल्का ही लेकर परम सन्तुष्ट रहते। किसी विशेष त्यौहार पर रसोई में विशेष आयोजन न देखकर वे दु:खी होते—"तुम लोगों को अच्छा भोजन करते देखकर ही मुझे परम तृप्ति मिलती है।" वे कहा करते थे।

"आप नहीं लेते, तो हमें भी अच्छा नहीं लगता।" माताजी कहतीं।

"अच्छा, अच्छा जरूर लूंगा। बनाओ तो सही" और फिर मेज पर रखे खीर के कटोरे में से एक चम्मच, एक प्लेट में रखकर अपनी मूँग की दाल की कटोरी के पास रख लेते। यही उनका अपथ्य था (कुछ अधिक अन्न उनके शरीर में चला जाये, इसलिए कभी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फुल्का भारी कर दें तो वे उतने ही अनुपात से रोटी छोड़ देते, कहते मेरा पेट ही तुला है, अपना प्राप्य लेने के बाद उसमें जगह ही नहीं रहती। इतना संयमित जीवन था उनका। और यही उनकी कार्यक्षमता और अद्‌भुत विचार शक्ति का मूलभूत कारण था।

पाँच बेटियों के पिता

कन्या गुरुकुल में शिक्षा लेने के कारण बचपन का बहुत समय मुझे उनसे अलग ही काटना पड़ा। घर में बड़े भैया और बहनजी थीं। पीछे से आदरणीया मौसीजी श्रीमती शर्मदा त्यागी के देहावसान के बाद उनकी तीनों पुत्रियाँ भी यहाँ आ गयीं। हम दो से पाँच बहनें हो गयीं। पिताजी की पाँच बेटियाँ। उन्होंने हममें कभी भी कोई अन्तर नहीं रखा। जितनी सावधानी और सचेष्ट होकर हमारी पढ़ाई या जीवन निर्माण में उन्होंने ध्यान दिया, उतना ही उनकी। उनका स्नेह और ममता-भरा हाथ, सदा सबके सिरों पर एक-सा ही फिरता था। उनकी मीठी स्मृतियों के आँसू, जितने मेरी आँखों ने गिराये हैं, उससे अधिक ही उनकी आँखों ने पानी गिराया होगा; इसमें मुझे जरा भी शक नहीं। अपने स्नेह और ममता का भण्डार, बिना कृपणता के वे सब पर लुटाते थे। उनके जीवन-काल में उनके आकर्षण से खिंचे, सब उनके चारों ओर घिरे रहते थे---आकर्षण बिन्दु के बिलीन होते ही सब बिखर गये।

गृहस्थी से निर्लिप्त

सबके प्रति इतना प्रेम रखते हुए भी वे गृहस्थी के झंझटों से निर्लिप्त थे। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था माताजी (चन्द्रवतीजी) के आधीन थी। माताजी की व्यवस्था बुद्धि और सचेष्टता के कारण उन्हें कभी भी कोई असुविधा नहीं हुई। और उन्होंने कभी भी उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं किया। माताजी ही जीवनपर्यन्त उनके स्वास्थ्य की जागरूक प्रहरी की तरह उनकी व्यवस्था करती रहीं। कहीं भी जायें, माताजी और उनका कुकर साथ ही जाता था। उनके अपूर्व संयम और आत्म-शक्ति के साथ माताजी की अपूर्व सेवा और व्यवस्था ने ही उन्हें इतनी कठिन बीमारियाँ लाँघने की क्षमता दी। घर के मामले में वे निपट अनाड़ी थे। एक कप चाय भी वे बनाकर नहीं पी सकते थे। एक बार लाहौर जाना था, माताजी और मौसीजी वहाँ जेल में थीं। पिताजी के साथ केवल मैं जा रही थी। यहाँ से यथासाध्य व्यवस्था करके चले। लाहौर जाकर नहाने के लिए जब कपड़ों की आवश्यकता हुई तो ट्रंक से केवल मेरे ही कपड़े निकले। पिताजी का एक भी कपड़ा नहीं था। नहाकर उन्हीं मैले कपड़ों को पहनकर वे अपने अनन्य मित्र पं० भीमसेनजी विद्यालंकार के यहाँ गये और समस्या उनके सामने रखी। कैसे समाधान हुआ? याद नहीं।

अखण्ड आस्था

लिखने लगूँ तो बहुत सारी स्मृतियाँ हैं, जो मोती के एक-एक दाने के समान हृदय में टँकी हैं। बहुत-सी ऐसी स्मृतियाँ हैं, जो हृदय को सुगन्ध के समान, सुवासित करती रहती

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं। पर उन्हें लिखने में लेखनी असमर्थ है। उनका आत्मबल और जीवन के प्रति आस्था असाधारण थी। जब कभी जीवन की कठिन डगर में डगमगाती हूँ तो उन्हीं का स्मरण करती हूँ। उनके भगवान् के प्रति आस्था और असीम विश्वास को अपने में लाने की कोशिश करती हूँ—इसी प्रभु के प्रति अतुल विश्वास ने ही उन्हें कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में डगमगाने से बचाया। वे कहा करते थे कि प्रभु अपने भक्त की पुकार सुनकर अवश्य द्रवित होते हैं। अनेक कष्टों में "साँवल शाह की हुण्डी" समय पर पहुँचकर उनकी रक्षा करती थी। इसी प्रकार से कठिन शारीरिक कष्ट में भी वे विचलित नहीं होते थे। बीमारी आने से पहले पूरे संयम से उसे रोकते थे। पर अगर वह आ ही जाये तो उतनी ही दृढ़ता के साथ मुकाबला करते थे। डेढ़ फेफड़ा बेकाम होने के कारण बीमारी तो द्वार पर ही खड़ी रहती थी। अन्तिम जानलेवा बीमारी से करीब एक वर्ष पहले गर्मियों की छुट्टियों में हम सब उनके पास ही थे। उस समय उनकी क्षीण देह को एक जबरदस्त धक्का लगा। डाक्टरों की चिकित्सा तो हो ही रही थी, पर उनका मनोबल भी बीमारी का जी-जान से मुकाबला कर रहा था। उसी समय की एक घटना मुझे याद है। 'चन्द्रलोक' की निचली मंजिल में, अपने आफिसवाले कमरे में वे लेटे थे। घर के सारे सदस्य उनके चारों ओर एकत्रित थे, एकाएक उनकी तबीयत बहुत खराब हो गयी थी। सब ही छिपकर आँसू पोंछ रहे थे। साँस लेने में अत्यन्त कठिनाई हो रही थी। डाक्टर को फोन करके टैक्सी भी भेजी जा चुकी थी। पिताजी ने स्वयं ही इशारे से और कुछ मुँह से समझाया कि ऊपर दवाई की अलमारी से द्राक्षासव लाकर, उनके मुँह में थोड़ा-थोड़ा डाला जाये। माताजी चम्मच से दवाई डाल रही थीं और रो रही थीं। तभी नौकर ऊपर से मेरी छोटी लड़की, जो उस समय सात-आठ महीने की रही होगी, को लेकर आ गया। वह पिताजी से बहुत हिली थी। उन्हें देखते ही उसने जोर से किलकारी मारी और नीचे उतरने को हाथ-पैर पटकने लगी। मैंने नौकर को इशारा किया कि वह उसे ऊपर ले जाये—पर तभी पिताजी ने अपनी भारी पलकें उठाईं, होठों पर हल्की-सी मुस्कान आई—छाती पर रखे हाथ में हरकत हुई। धीरे से कहा—"ले आओ।" मंजु को माताजी ने लेकर उनके पास किया। वह उनका हाथ पकड़कर किलकारी मारने लगी। वातावरण कुछ हलका हुआ। तभी डाक्टर आया, एम्बुलैन्स आयी, और नर्सिंग होम पहुँचने से पहले ही पिताजी बेहोश हो गये। दो दिन आक्सीजन देने के बाद उन्होंने आँखें खोलीं। बेहोशी में वे बराबर यही कहते रहे "अभी नहीं, अभी नहीं" उनका काम अभी पूरा नहीं हुआ था। छोटी बहन उषा का विवाह और गुरुकुल कांगड़ी की हीरक-जयन्ती, ये दो कार्य अभी शेष थे। ये कार्य पूर्ण कर, गुरुकुल से भी बिदाई ले वे अगले वर्ष निश्चिन्त होकर जा सकें। यह आखिरी अस्वस्थता इतनी अक्समात् थी कि उनकी बीमारी और मृत्यु का तार एक ही समय पाया। नैनीताल की तराइयों से भागते-भागते जब पहुँची तो अन्त्येष्टि संस्कार हो चुका था। मैं अभागी अन्तिम दर्शन भी न कर सकी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी की वहन वेदकुमारी : कुछ संस्मरण

१. जब इन्द्रजी १० वर्ष के थे

हम चार बहन-भाई थे। हमारी माताजी हमें छोड़कर स्वर्ग-सिधार गयी थीं, इसलिए आपस में हम लोगों का बहुत प्यार था। यह बात उस समय की है, जब मेरा विवाह हुआ। विदाई के समय प्रायः घर में सब लोग उदास हो जाते हैं। उस समय भी मेरी बहन और भाई हरिश्चन्द्र रोने लग गये, परन्तु भाई इन्द्र चुपचाप खड़ा रहा--तो दोनों ने कहा कि बस बहन से तुम्हारा यही प्यार है, वह जा रही है और तुम्हें रोना भी नहीं आता। तब भाई इन्द्र ने कहा कि तुम तो आँसू बहाकर दिखा रहे हो, मेरा तो मन ही रो रहा है, यह सुनकर सब लोग अवाक् रह गये कि इस लड़के ने कितनी बड़ी बात कही है। उस समय उनकी उमर दस वर्ष की थी। ऐसे ही सदा विपत्ति के समय उनमें बहुत धैर्य होता था, कभी घबराते नहीं थे। पूज्य पिताजी भी सब कामों में उनकी सम्मति लेते थे।

२. बड़े बनकर क्या करोगे ?

जालन्धर में हमारी कोठी बहुत बड़ी थी और उसका अन्दर का सहन भी बहुत बड़ा था। उसमें एक तरफ बड़ा-सा तख्त पड़ा रहता था। गर्मियों के दिनों में सायंकाल का भोजन पूज्य पिताजी उसी पर बैठकर करते थे--साथ में दोनों भाई भी उसी समय पिताजी के साथ ही खाना खाते थे, भोजन साढ़े पाँच बजे होता था। साथ में कुछ हँसी-मजाक भी चलता था। हम दोनों बहनें खाना खिलाती थीं, भोजन नौकर बनाता था। हमारी ताईजी जो कि माताजी की मृत्यु के बाद हमारे ही पास रहती थीं, सहन में बैठी रहती थीं।

एक दिन इसी प्रकार भोजन करते-करते पूज्य पिताजी ने कहा कि बताओ तुम बड़े होकर क्या करोगे ? उस समय भाई इन्द्र की आयु आठ वर्ष और हरिश्चन्द्र की दस वर्ष थी। बड़े भाई ने कहा कि मैं वकील बनूंगा, और बहुत बड़ी कोठी बनाऊँगा--उसमें एक सुन्दर-सा कमरा बनाकर पिताजी को रखूंगा। तब इन्द्र ने कहा--नहीं मैं तो बड़ा होकर बड़ी सारी कोठी बनाकर पिताजी को ही उसका मालिक बनाऊँगा और उनके लिए एक घोड़ागाड़ी सैर करने के लिए रखूँगा। उस समय उसके चेहरे के भाव पिताजी के प्रति आदर और श्रद्धा से भरे हुए थे। वह स्मरण करके अब भी मेरा मन कितना हर्षित हो जाता है, सदा दोनों भाई साथ-साथ ही रहे हैं।

३. जब कोठी का दान किया

जिस वर्ष हरिश्चन्द्र और इन्द्र गुरुकुल से स्नातक बननेवाले थे उस वर्ष में १ मास पहले ही गुरुकुल भूमि में आ गयी थी और एक कमरा लेकर रहने लगी थी। मैं बहुत प्रसन्न थी, क्योंकि पिताजी ने मुझे कहा कि, जब इन्द्र और हरिश्चन्द्र स्नातक बनकर गुरु-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कुल से जायेंगे, तब तुम उनको साथ लेकर जालन्धर की कोठी में कुछ महीने रहना । ताकि उनका स्वास्थ्य ठीक हो जाये। अपने आप तो पिताजी गुरुकुल छोड़कर जा नहीं सकते थे।

मैं बहुत प्रसन्न थी कि इतने वर्षों के बाद हम बहन-भाई इकट्ठे रहेंगे । परन्तु क्या पता था कि कुछ और ही होनेवाला है ।

उत्सव के अन्तिम दिन जब पिताजी अपील के लिए खड़े हुए, तो अपनी कोठी की चर्चा शुरू की, और उसके बारे में कुछ बातें सुनाते रहे। सुन-सुनकर मेरे मन में उथल-पुथल मच रही थी । मैं आश्चर्य में थी कि इस समय कोठी के बारे में पिताजी क्यों कह रहे हैं ? अन्त में जब उन्होंने कहा कि "मैं कोठी गुरुकुल को दान में दे रहा हूँ", तब मैं तो रोने लगी । एक यही वस्तु लड़कों के लिए रह गयी थी, वह भी दान कर दी । मन बहुत उदास हो गया । उठकर अपने कमरे में आ गयी ।

थोड़ी देर के बाद देखा दोनों भाई हँसते-हँसते चले आ रहे थे। बैठ गये तो मैंने पूछा "एक दम सलाह कैसे बदल गयी ?" उन्होंने कहा--"आज प्रातः समय पिताजी ने हमें बुलाया, और सम्मति पूछी कि कोठी दान करने के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमने कहा कि आप चाहते हैं तो दान करो हमें बड़ी प्रसन्नता है और हम दोनों ने दानपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये !"

मेरा मन बहुत दु:खी था। मैंने कहा--"तुमने हस्ताक्षर क्यों किये ? दोनों हँसने लगे इन्द्र ने कहा कि क्या हम ऐसे कुपुत्र हैं कि उनकी अपनी कमाई की वस्तु को दान करने में रोड़ा अटकाते ? हमें पिताजी ने इस योग्य बना दिया है कि हम अपनी रोटी कमा सकें । हम उनके संकल्प में बाधक नहीं बनेंगे ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जीवन सन्ध्या

१ नवम्बर १९५९ को नयी डायरी का प्रारम्भ करते हुए इन्द्रजी ने लिखा है :—

"मन आशापूर्ण है—यद्यपि शरीर अस्वस्थ है । प्रातः तापमान ९९ था, दोपहर को ९९.७ । मन पर किसी प्रकार का बोझ नहीं था । परमात्मा की कृपा है ।"

इन पंक्तियों की व्याख्या उपेक्षित है । यह एक लम्बी बीमारी की सूचना थी । इसका प्रारम्भ और विकास इन्द्रजी के ही शब्दों में देना अधिक उचित होगा :—

"आज (७ जुलाई १९५९) में लम्बी बीमारी के बाद मैं निचली मंजिल के कमरे से ऊपर की मंजिल में आया । आज ही अवसर मिला है कि इस भयंकर रोग कांड का संक्षिप्त विवरण लिखूँ ।"

"लगभग ढाई वर्ष से मुझे बारबार बुखार आता था । पहले पन्द्रवें दिन आता था, फिर दसवें-ग्यारहवें दिन आने लगा । गत दो मास में उसने उग्र रूप धारण किया ।

"१८ अप्रैल को पेचिश हुई । १९ को कमर दर्द प्रारम्भ हो गया । २३ तक कमर दर्द और पेचिश चलते रहे । २४ को ज्वर हो गया, फिर ३० अप्रैल, ८ मई और ९ मई को तथा ११ को ज्वर हुआ । ११ की रात को निमोनियाँ का पहला आक्रमण हुआ । छाती के दाँयें भाग में वहुत जोर का दर्द था और ज्वर था । इन्जेक्शन लगने पर ज्वर उतरा । परन्तु १९ मई को पुनः ज्वर हो गया । वह २० को भी रहा । रात को ज्वर जोर का चढ़ा और फिर उतर गया ।

"दिन की गाड़ी से दिल्ली आया । २३ को निमोनियाँ का दूसरा आक्रमण हुआ । २५ मई को शाम ५ बजे हालत बहुत बिगड़ गयी । साँस उखड़ रहा था, तब डा० बोस के परामर्श से चन्द्र तथा उषा मुझे डा० सेन के नर्सिंग होम ले गये ।"

'चन्द्रलोक' से नर्सिंग होम जाते हुए राह भर में इन्द्रजी चैतन्य थे । मार्ग में आनेवाली ऐतिहासिक इमारतों का इतिहास पत्नी और पुत्री को बताते जाते थे । वृक्षों के शिखर देखते थे, नीचे नहीं । परन्तु जब मोटर नर्सिंग होम के अहाते में पहुँची, तो सेन का नर्सिंग होम आ गया, पण्डितजी की चेतना शान्ति मुक्त रह गयी । रास्ते भर मना करने पर भी इन्द्रजी इतिवृत्त बताते रहे, जिससे पत्नी को ढाँढ़स बँधे और उसका हौसला न टूटे । लेकिन नर्सिंग होम पहुँचकर सम्भवतः थकान से वह बेहोश हो गये । इन्द्रजी वृक्षों की चोटियों और भवनों के कलशों को प्रयत्न करके देखते थे । डूबता व्यक्ति जिस प्रकार तैरने की कोशिश करता है, उसी प्रकार इन्द्रजी मृत्यु से प्रतिक्षण लड़ रहे थे । वे अनुभव करते थे कि उनका दिल डूब रहा है । उसको तैरता रखने के लिए यह उपाय उन्होंने किया ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लगभग १२ घण्टे अचत रहे । चेतना आने पर पहला प्रश्न था 'मुझे कहाँ ले आये हो ?' यह जानने पर कि वह नर्सिंग होम में हैं, आश्वस्त हुए । यहाँ इन्द्रजी १० दिन रहे ।

मृत्युद्वार के दर्शन

इस बीमारी में इन्द्रजी ने मृत्युद्वार के जो दर्शन किये—उसका यथार्थ वर्णन करते हुए आपने जो पक्तियाँ लेखबद्ध की थीं, उन्हें यहाँ देते हैं । ये पंक्तियाँ उनके 'नवनीत' में प्रकाशित लेख से ली जा रही हैं :—

"गत वर्ष गर्मियों में मुझे एक दुर्लभ अनुभव प्राप्त हुआ । मैंने यह देख लिया कि, मृत्यु का द्वार कैसा है और यह भी अनुभव कर लिया कि, वहाँ तक की यात्रा कैसे की जाती है । यदि एक कदम आगे बढ़ जाता, तो अनन्त में विलीन हो जाता । हुआ यह कि, ठीक द्वार पर पहुँचने पर मुझे पीछे खींच लिया गया और मैं गहरे अन्धकार से फिर प्रकाश में आ गया ।

पूरी कहानी इस प्रकार है । गत वर्ष मई मास में मुझ पर निमोनिया का आक्रमण हुआ । उस समय मैं गुरुकुल कांगड़ी में था । आक्रमण के कुछ हल्का होने पर मैं इलाज के लिए दिल्ली आ गया । दिल्ली आकर निमोनिया का दूसरी बार आक्रमण हो गया, जो पहले आक्रमण से बहुत कठोर था । पुराना रोगी शरीर, मित भोजन पर पलनेवाला शरीर एक के बाद दूसरे आक्रमण को कैसे सहता ? प्रातःकाल से छाती में दर्द और ज्वर बढ़ रहे थे । शाम के ५ बजे के लगभग दशा बहुत बिगड़ गयी । उसे अधिक बिगड़ती देखकर पहले होम्योपैथिक डॉक्टर ने और फिर एलोपैथिक डॉक्टर ने भी हथियार फेंकते हुए यह कह दिया कि, अब सिवाय इसके कोई उपाय नहीं रहा कि, रोगी को किसी नर्सिंग होम में ले जाया जाये ।

उस समय मेरी दशा यह थी कि, ज्वर निरंतर बढ़ रहा था और मुझे सांस लेने में कठिनाई अनुभव हो रही थी, ऐसा लगता था कि, श्वास रास्ते से ही लौट जाता है । मैं सदा रोगी होकर अस्पताल या नर्सिंग होम जाने का विरोधी ही रहा था । मेरे मन पर यह बात जम-सी गयी थी कि, यदि घर में ठीक इलाज और ठीक परिचर्या हो सके, तो चिकित्सालय में जा पड़ना अनावश्यक है । परन्तु जब मेरी पत्नी ने आँखों में आँसू भरकर कहा कि, "आप मेरी खातिर नर्सिंग होम में जाना स्वीकार कर लीजिये" तो मैंने स्वीकृति दे दी । उसके बाद एकदम तैयारी आरम्भ हो गयी । दिल्ली में एम्बुलेंस कार का समय पर मिलना असम्भव-सा समझा जाता है । मित्रों के प्रयत्न और ईश्वर की कृपा से आधे घण्टे में ही रेडक्रास की कार आ गयी और जल्दी-जल्दी में जैसी भी हो सकी, तैयारी करके और मुझे स्ट्रेचर पर डालकर कार में लिटा दिया गया ।

उस समय मेरी दशा यह थी कि, साँस रुक-रुककर हिचकी के साथ आ रही थी । डॉक्टर की सलाह से पाँच-पाँच मिनिट बाद एक चम्मच पानी में मिली हुई ब्रांडी की खूराक दी जा रही थी, जिससे चेतना कायम थी । जिस समय एम्बुलैंस कार डॉ॰ सेन के नर्सिंग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होम के लिए चली, तो मैं समझ रहा था कि, मेरी शक्ति क्षीण हो रही है, मानो मैं धीरे-धीरे पानी में डूब रहा हूँ । मैं यह भी अनुभव कर रहा था कि, यदि मैंने स्वयं पानी के ऊपर रहने की चेष्टा न की, तो शायद नर्सिंग होम तक भी न पहुँच सकूँ । मैंने अपनी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति को समेटकर ऊपर उठना जारी रखा । मैं लेटा हुआ केवल सड़क के किनारे के वृक्षों की चोटियों को देख सकता था । अपने मन को, और अपनी पत्नी तथा अन्य मित्रों को दिलासा देने के लिए कि, मैं अभी तक सचेत हूँ, मैं थोड़ी-थोड़ी देर में कहता जा रहा था— "अब हम पहाड़ी पर से जा रहे हैं, अब कश्मीरी दरवाजा आ गया । यह दरियागंज का मोड़ है और अब हम नर्सिंग होम की ओर को मुड़ रहे हैं ।" मोड़ तक मेरी यह जीवन-चेष्टा जारी रही । ज्यों ही नर्सिंग होम के द्वार पर पहुँचे, आधी चेतना लुप्त होने लगी । मानो बहुत दूर से आवाजें आ रही हों । ऐसा सुनाई दिया कि, नर्सिंग होमवाले कुछ अगाऊ रुपया माँगते हैं, मेरी पत्नी कुछ कह रही है और बेटी उषा व्यवस्था करने के लिए भागी फिर रही है । उस समय यह मेरी चेतना का अन्तिम उन्मेष था । उसके पश्चात् मुझे दीखना बन्द हो गया, फिर कानों ने काम करना छोड़ दिया और मैं पूर्ण अन्धकार में डूब गया । कहते हैं, थोड़ी-थोड़ी साँस बहुत देर के बाद आती थी । उस समय शाम के छः बजे होंगे, उसके पश्चात् लगभग सात घण्टों तक मैं अचेत रहा । मेरी शूश्रूषा करनेवाले कहते हैं कि, कुछ समय तक मेरी साँस भी बन्द रही और शरीर पर से चेतना का काबू बिल्कुल उठ गया था । ज्वर १०६ से ऊपर पहुँच चुका था । उसी दशा में मुझे और भी कई विकास हुए, जिन्हें निमोनिया के मरीज के लिए मर्ज का आखिरी पड़ाव समझा जाता है । मेरी पत्नी, लड़की और अन्य उपस्थित बन्धु, नब्ज देखनेवाले डॉक्टर और इंजेक्शन लगानेवाली नर्स के मुँह की ओर देखकर अनुमान लगाने की चेष्टा कर रहे थे कि, रोगी में प्राण बाकी हैं या नहीं । मेरी नाक में आक्सीजन की नली नर्सिंग होम की चारपाई पर लिटाते ही लगा दी गयी थी ।

रात के १२ बजे तक मैं इसी दशा में रहा । मैं उन बेहोशी के घण्टों को ही मृत्यु की ओर यात्रा के घण्टे समझ सकता हूँ । उस दशा तक पहुँचने में मुझे जिस मार्ग से जाना पड़ा, निश्चय ही वह मृत्यु का मार्ग था । मैं द्वार तक पहुँच गया कि, मेरे स्वजनों की प्रबल इच्छा तथा डॉक्टरों और नर्सों के अनथक परिश्रम ने मुझे मानो पल्ले से पकड़कर पीछे को खींच लिया ।

इस घटना ने मुझे तीन तथ्यों का अनुभव कराया । पहला, मनुष्य की जीवनेच्छा अति प्रबल है, स्वभावतः वह मरने की अपेक्षा अत्यन्त रोगी और निर्बल जीवन व्यतीत करना भी पसन्द करता है । दूसरे, मरने से पूर्व की जीवन-चेष्टा वस्तुतः बहुत दुःखदायी होती है, उसे केवल अत्यन्त धैर्य से ही सहा जा सकता है । तीसरे, जब मनुष्य की चेतना जाती रहे, तब तक वह जिस अन्धकार के प्रदेश में प्रवेश करता है, उससे वह सुख और दुःख दोनों से मुक्त हो जाता है । उस समय वह यह भी अनुभव करता है कि, उसका अस्तित्व है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कृत की अभिवृद्धि

रुग्णावस्था में भी इन्द्रजी बराबर आशावादी थे । संस्कृत की अभिवृद्धि की चिन्ता इन दिनों भी उन्हें सताती थी । शिक्षा मन्त्रालय द्वारा संगठित शिक्षा पटल से इन्द्रजी को बहुत आशाएँ थीं । यह मानते हुए भी कि उसका मैं भी सदस्य हूँ । अभी तो इस बोर्ड का उद्देश्य केवल सलाह देना है, परन्तु धीरे-धीरे वह शक्तिशाली बनकर संस्कृत की अभिवृद्धि का सफल साधन बन सकता है । पण्डितजी ने गिरते स्वास्थ्य में भी संस्कृत शिक्षा पटल का भी काम किया । यह उनके संस्कृत के प्रति अतिशय अनुराग का सूचक है ।

जन-सेवा की उत्कट इच्छा

७० वाँ वर्ष प्रारम्भ होने के समय इन्द्रजी ने प्रेमी और भक्तों द्वारा यह प्रार्थना करने पर कि आप हजारों साल जियें और हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें, आपने निम्न श्लोक द्वारा उत्तर दिया ।

यावन्मे जीवितं लोके
परार्थं तद्भवेत् प्रभो
तावत् जीवितुमिच्छमि
यावच्छक्नोमि सेवितुम् ॥

इन्द्रजी जन सेवा की शक्ति रहने तक ही जीवित रहने के अभिलाषी थे । यह इच्छा पण्डितजी अनेक बार पहले भी प्रकट कर चुके थे । परन्तु जब ७१ वाँ जन्म दिन ९ नवम्बर १९५९ को मनाया गया, तब आप अनुभव करने लगे कि यह जरा जीर्ण व्याधि-ग्रस्त शरीर काम का नहीं रहा । एक फेफड़े के साथ इस संसार में आकर निरन्तर ३१ साल तक रोगों से संघर्ष करते हुए थक गये थे और विश्रान्ति चाहते थे । १९२७ में जेल जाने के समय इन्द्रजी का आमाशय मिट्टी मिले आटे की रोटी खाने से जो खराब हुआ, वह फिर कभी नहीं सुधरा । इस समय कौलिक दर्द शुरू हुआ और उसने ही उन्हें अन्त में पछाड़ दिया । अत्यन्त कठोर आतम-संयम भी उस पर विजय न पा सका ।

इस रुग्णावस्था में भी पण्डितजी का साहित्यिक कार्य बराबर चलता रहा ।

"भारतैतिह्यम्" महाकाव्य आपने महाभारत के ढंग पर लिखना प्रारम्भ किया था । इसका ३० वाँ अध्याय इन दिनों इन्द्रजी ने समाप्त किया । इन्द्रजी भारत का सम्पूर्ण इतिहास काव्य के रूप में लिखना चाहते थे । उनकी यह इच्छा अधूरी ही रही ।

इन्द्रजी का यह जीवन कार्य गुरुकुल सेवा के समान अत्यन्त मूल्यवान है । यह संस्कृति और साहित्य की धारा को आगे बढ़ानेवाला है ।

जीवन के अन्तिम दो सालों में ही इन्द्रजी को अपने छोटे बहनोई और सामाजिक कार्यों के सदा सहायक डा० सुखदेवजी और गुरुकुल के गणित अध्यापक और मित्र पं० मुखरामजी के निधन के समाचार मिले । इसके साथ ही पण्डितजी को लखनऊ से अपनी दो पुस्तकों 'मैं इनका ऋणी हूँ' और 'मेरी पत्रकारिता के अनुभव' के पुरस्कृत होने का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाचार मिला। पण्डितजी ने अपने कांग्रेस मित्रों की सहमति और सहयोग से डा० सुखदेवजी की स्मृति की रक्षा के लिए एक स्मारक कमेटी भी स्थापित की थी। बदरपुर के अस्पताल को डाक्टरजी की स्मृति के रूप में जारी रखने और चलाने का भी विचार था। सम्भवतः इन्द्रजी का यह आखिरी सार्वजनिक काम था। ७१ वें वर्ष के आरम्भ में भी इन्द्रजी में साहस था। मृत्यु मुख में से निकल आने के बाद भी पण्डितजी विश्राम लेने की या पाने की इच्छा नहीं करते थे। उनकी इच्छा यही थी :

"ईश्वर की कृपा से दूसरा जीवन मिले, तो यही संकल्प है कि वह सत्कार्य और परार्थ में लगे।"

गुरुकुल हीरक जयन्ती

इसके बाद गुरुकुल हीरक जयन्ती के वास्ते धन-संग्रह में इन्द्रजी प्रवृत्त रहे। सुबह-शाम दोनों समय दिल्ली में धन-संग्रह करते रहे। 'भारतैतिह्यम्' का लेखन कार्य भी चलता रहा। ७ दिसम्बर १९५९ की डायरी में लिखा :—"'भारतैतिह्यम्' में महाभारत युद्ध के अन्त तक का अध्याय समाप्त कर दिया। अब इसकी पुनरावृत्ति आरम्भ करूँगा।" युद्ध के बाद का शेष इतिहास आपने गुरुकुल के लिए धन-संग्रह करते हुए और सर्दी, गर्मी सहते हुए लिखे। उसका पाण्डवों के महाप्रस्थान के साथ समाप्त होना और उनके अन्त-काल का लगभग एक ही समय होना, देवीय इच्छा या दैवीय प्रेरणा ही मानना चाहिए। १ जनवरी १९६० का प्रारम्भ करते हुए इन्द्रजी ने अपनी पुरानी इच्छा को पुनः दोहराया :

"सन का नया वर्ष है।"

"यावन्मे जीवितं लोके परमार्थाय भवेत्प्रभो
तावज्जीवितुमिच्छामि यावच्छक्नोमि सेवितुम् ॥"

इस अपने बनाये श्लोक को दोहराने के साथ आपने लिखा :—

"प्रातः गुरुकुल के निर्माण-कार्य का निरीक्षण किया। दोपहर बाद जमालपुर गाँव की खेती देखी। कुछ थकान हो गयी।"

उस समय शरीर विश्रान्ति की माँग कर रहा था। परन्तु उसको पर्याप्त अवकाश नहीं मिला। दिल्ली लौटने पर १२ जनवरी १९६० को पण्डितजी को वर्षा, धुंध और सर्दी का सामना करना पड़ा। सर्दी की शिकायत उन्हें बनी रही। इसी बीच गुरुकुल में विद्या-सभा और अन्तरंग सभा की बैठक हुई। इन्द्रजी को सन्तोष था कि विद्या सभा ने आपके सभी प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये। इस सभा में बहुत अधिक सदस्यों की उपस्थिति थी।

३ फरवरी १९६० को डायरी में इन्द्रजी ने पुनः सर्दी की शिकायत की है। इससे अगले दिन उनको 'कमर में हल्का-सा दर्द हो गया।' कारण यह बताया गया '२-३ दिन शीत वायु में जाता रहा और कल दही भोजन में ले लिया—शायद ये दोनों कारण थे।' इस अवस्था में भी पण्डितजी ने विश्राम लेने की आवश्यकता नहीं समझी। रात की गाड़ी से लखनऊ चले गये। मन्त्रियों से गुरुकुल की हीरक-जयन्ती के विषय में बातचीत की।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

७ मार्च को भारी आँधी आयी, वर्षा पड़ी और ओले भी पड़े ।

मौसम की प्रतिकूलता का सामना करते हुए पुनः गुरुकुल पहुँचने पर पण्डितजी ने देखा—"अभी सभी काम बहुत पिछड़े हुए हैं । उन्हें पूरा करने के लिए बहुत यत्न करना पड़ेगा ।" इस चिन्ता के बीच विचारते हुए सर्वप्रथम वायलोजी तथा संग्रहालय के भवनों के लिये स्थान का निर्माण किया, परन्तु इतने कार्य व्यस्त होते हुए भी श्रद्धा-निकुंज की कुटिया में सफेदी कराना नहीं भूले । यही क्यों ? देहरादून गये । पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा तथा औरों से चन्दा लाये । गुरुकुल की हीरक-जयन्ती का कार्य करते हुए पण्डितजी काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा और सत्यज्ञान निकेतन के बीच चल रहे झगड़े का निपटारा भी करते रहे ।

गुरुकुल हीरक-जयन्ती महोत्सव के सिलसिले में पूना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप-कुलपति और पंजाब के भूतपूर्व राज्यपाल स्व० श्री वी० एन० गाडगिल का दीक्षान्त आर्य-भाषण हुआ । वायोलाजी-भवन का डा० भटनागर ने शिलान्यास किया । उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द ने संग्रहालय का शिलान्यास किया । इन सब कार्य-व्यस्तताओं का फल यह हुआ कि १३ अप्रैल को 'उत्सव की थकान के कारण और दोपहर में आराम न करने से ज्वर और पेचिश हो गयी । ज्वर १०१ रहा ।' इसी हालत में दिल्ली वापस आये । यहाँ बादल और बूँदाबाँदी ने पुनः परेशान किया ।

२८ अप्रैल १९६० को "जुकाम-सा प्रतीत हुआ । अगले दिन प्रातः ९९ ज्वर हुआ । शाम तक ज्वर १००.६ हो गया । अतः शाम को डा० शर्मा को दिखलाया ।" इन्जेक्शन देने से ज्वर ४ मई को उतर गया । पण्डितजी ने अनुभव किया । "होनहार लड़ रहा है ।" ज्वर उतरने पर भी "अभी निर्बलता है । गत वर्ष से वह दोष प्रकट हो गया है ।" इन्हीं दिनों पण्डितजी को 'भारतीय संस्कृति के प्रवाह' पर पाँच सौ रुपये का पुरस्कार आया । वे १८ मई को गुरुकुल पहुँचे । देव प्रयाग जाने का विचार स्थगित कर दिया । इन्हीं दिनों श्रद्धानन्द वाटिका और कुटिया का काम पूरा हो गया । दिल्ली में जून तप रहा था । ११ जून को उग्र गर्मी का अनुभव हुआ । २६ जून को सार्वदेशिक सभा का ३ वर्ष बाद वार्षिक अधिवेशन हुआ ।

नया निश्चय

संसार-यात्रा को समाप्त करने के लगभग सवा मास पहले इन्द्रजी ने एक नया निश्चय किया । यह था : 'संस्कृति वाङ्मय का इतिहास' लिखने का निश्चय । इस निश्चय के साथ गुरुकुल की अन्तिम यात्रा की और २५ जुलाई को पण्डितजी दिल्ली वापस आये, फिर कभी गुरुकुल न जाने के लिए । इसी दिन 'दोपहर बाद' केन्द्रीय संस्कृति बोर्ड की बैठक में सम्मिलित हुए । फलतः २६ जुलाई को शिकायत प्रारम्भ हुई :

अगले दिन (३ अगस्त) को सार्वदेशिक सभा की एक बैठक में सम्मिलित हुए । इन सब व्यस्तताओं के होते हुए भी "भारतैतिह्यम्" का ३१ वाँ अध्याय आपने ६ अगस्त १९६० को समाप्त किया ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बीमारी का आक्रमण

१७ अगस्त को बीमारी का फिर आक्रमण हुआ। रात भर सिर और छाती में दर्द रहा।

अपनी डायरी में २० अगस्त को इन्द्रजी ने यह श्लोक लिखा। इसी दिन उन्हें अनुभव हो गया था कि अब संसार-यात्रा का अन्तिम पड़ाव आ गया है।

"स्व कर्ममिः शोषित काययष्टि
महालये मृत्यु मुखे प्रविष्टम्।
तव प्रसादात्पुन राप्त शक्तिः
त्वमव सत्कर्मणि मां निपुंक्ष्व।।"

संस्कृति के महानुरागी सरस्वती के सतत उपासक की लेखनी से लिखा यह निराशापूर्ण पद बताता है कि दूसरी बार एक साल के ही अन्दर मृत्यु मुख में प्रवेश होते हुए उस महाप्राण व्यक्ति ने अनुभव किया कि जीवन अब निःशेष होनेवाला है।

अन्तिम दिन

२२ अगस्त को कफ का अटकना प्रतीत हुआ। कब्ज की शिकायत थी ही। जुबान जब लड़खड़ाती मालूम दी, तो पण्डितजी को डाक्टरों ने पुनः सेन के नर्सिंग होम ले जाने की सलाह दी। सेन नर्सिंग होम पहुँचने पर परिवार ने आग्रह करके पुनः वहीं १० नं० का कमरा लिया, जहाँ एक साल पहले आप रहे थे और स्वस्थ होकर लौटे थे। नर्सिग होम के अधिकारियों ने भावना का आदर किया। लेकिन काल का बढ़ता पंजा इससे रुका नहीं। परिजनों की प्रसन्नता अधिक समय तक नहीं टिकी। २३ अगस्त का दिन वस्तुतः काल-रात्रि सिद्ध हुआ। नर्स फ्रूटजूस देने आयी। पण्डितजी ने सिरहाने खड़ी सेवापरायण पत्नी की ओर देखा। आँखें मिलीं। वह समझ गयी थी कि पण्डितजी ठण्डा रस नहीं चाहते थे, गरम चाहते थे। पत्नी ने नर्स से कहा—"यदि आपको आपत्ति न हो, तो मुझे यह दे दीजिये, मैं इसे गरम करके ले आती हूँ।" नर्स ने फ्रूट-जूस का ग्लास श्रीमती चन्द्रवती को दे दिया। पण्डितजी इस समय सजग और चैतन्य थे। वह पत्नी से बोले—"देखा तुमने; तुम कैसे समझ गयीं, मुझे क्या चाहिए? इन लोगों पर मेरा भोजन मत छोड़ो।" पत्नी ने आज्ञा शिरोधार्य की। कुछ समय बाद कमरा नं० १० में डाक्टर एकत्र होने लगे। नर्स भी आयी। पण्डितजी ने इस समय शौच जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर परिवार के लोगों ने कमरा खाली कर दिया। कमरे से बाहर जाते हुए, पत्नी का विश्वास बलवान था कि पण्डितजी अब मृत्यु को परास्त करके बाहर आ गये हैं। साध्वी पत्नी का सरल विश्वास ही धोखा देनेवाला सिद्ध हुआ। विश्वास जमने पर भी मन निःशंक नहीं हुआ। सब लोग प्रतीक्षालय में जाकर बैठ गये, पर सतीसाध्वी पत्नी का सरल विश्वास कमरे के दरवाजे के साथ टिका रहा। वह खड़ी रही। आँखें पथरा गयीं। अन्दर से कोई आवाज नहीं आ रही थी। दरवाजा खुला। डाक्टर एक-एक करके कमरे से निकलकर जाते हुए दिखाई दिये। सबके पीछे नर्स आयी। दरवाजे के साथ सटकर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खड़ी सती ने जिज्ञासा भाव से पूछा,—"क्या मैं अब अन्दर जा सकती हूँ ?" हाँ में जवाब मिलने पर जीवन-संगिनी कमरे के अन्दर दाखिल हुई। पलंग सफेद चादर से ढका था। पत्नी ने सन्तोष अनुभव किया कि कई रात बाद पण्डितजी अभी सोये हैं। सरल विश्वासी साध्वी इस बार पुनः ठगी गयी। काल ने पुनः उसको धोखा दिया। जिसको वह साधारण नींद मान रही थी, वह अनन्त निद्रा थी। चादर उठायी, मुँह शान्त था। वही सौम्य भाव था। चेहरे पर मृदुता थी। आँखें बन्द थीं। साहस करके नाक के पास हाथ ले गयी। श्वास-प्रश्वास आता-जाता कुछ भी नहीं मालूम दिया। अब भारी आशंका ने हृदय को घेर लिया। वह दौड़ी-दौड़ी नर्स के पास गयी। बोली—"चलिये, जरा देखिये मुझे तो साँस आती-जाती प्रतीत नहीं होती।" अब कठोर सत्य प्रकट हुआ, जब नर्स ने स्नेहसिक्त और वेदना-भरे स्वर में कहा—"बहन, साँस तो वहाँ चली गयी, जहाँ से लौटकर कभी नहीं आयेगी।" सती यह सुनकर स्तब्ध हो गयी। उसकी सब आशाओं का ही अन्त हो गया। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के निधन का समाचार राष्ट्रपति को दिया गया। पहले उनको विश्वास नहीं हुआ। दुबारा पूछा, दुःखद समाचार की पुष्टि होने पर राष्ट्रपति ने आकाशवाणी को यह समाचार प्रसारण करने का निर्देश दिया। रेडियो ने यह दुःखद समाचार सर्वत्र प्रसारित कर दिया। जिसने सुना, वह स्तब्ध हो गया। पण्डितजी का स्वर्गवास ७१ साल की आयु में हुआ। परन्तु उनको धीर भाव से एक-एक कदम उठाकर चलते हुए देखनेवाले का विश्वास था कि इन्द्रजी अभी कुछ साल और जीवित रहेंगे। उनके सिर के बाल भी सफेद नहीं हुए थे। कान के आस-पास के थोड़े से सफेद बाल ही सूचना देते थे कि बुढ़ापा आ गया है, अन्यथा उनके चेहरे पर एक भी शिकन नहीं थी। सलवट नहीं आयी थी, जो बताते कि वे बूढ़े हो गये हैं। गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता बने रहने का आग्रह करनेवाले यही विश्वास करते थे कि इन्द्रजी अवश्य शतायु होंगे। परन्तु २२ अगस्त को सायंकाल ६—७ बजे के मध्य वह स्वर्गवासी हो गये। परिजनों, मित्रों और अपनी सतीसाध्वी जीवन-संगिनी से अनुमति लिये बगैर वहाँ चले गये, जहाँ से कोई लौटकर आज तक नहीं आया। दिल्ली शोकसागर में डूब गयी। विजय का निनाद गुँजानेवाली लेखनी ने चिरविश्राम लिया। महारथी विदा हो गया।

२४ अगस्त को राष्ट्रपति भवन से सम्मान में पुष्पमाला आयी। प्रधान मन्त्री का फोन आया, अर्थी का जुलूस कुछ समय रुक सके, तो वह आना चाहते हैं। परन्तु उस समय फूलों से सजी अर्थी कन्धों पर थी। चाँदनी चौक होती हुई निगम बोध घाट पहुँची। 'भस्मान्तं शरीरं, क्लीवो स्मर कृत के स्वर' के साथ चन्दन की चिता में पार्थिव शरीर भी भस्म हो गया और स्मृति मात्र शेष रह गयी।

यदि मुझे पुनः जीने का अवसर मिले

इन्द्रजी की जीवन यात्रा पूरी हो गयी। यह यात्रा अत्यन्त सुनियोजित थी। यात्रा का लक्ष्य भी पूरा हो गया। इन्द्रजी अपनी यात्रा से पूर्ण सन्तुष्ट थे; फिर भी, उनसे 'नवनीत'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादक श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने जब यह प्रश्न किया कि यदि उन्हें पुनः जीवन प्रारम्भ करने का अवसर दिया जाये तो वे अपनी यात्रा का लक्ष्य क्या रखेंगे और किस मार्ग से यात्रा सम्पन्न करेंगे तो उन्होंने लिखा था :—

"यदि मुझे पुनः जीने का अवसर मिले, तो मैं भारतभूमि में ही उत्पन्न होना पसन्द करूँगा। इसे चाहे मेरी कूप-मण्डूकता समझें, अथवा देश का मोह। मेरी मनोवांछा यही है।

मैं यह भी चाहूँगा कि, मुझे जैसे माता-पिता इस जीवन में मिले हैं, वैसे ही दूसरे जीवन में भी मिलें। इस जीवन में मुझे जो माता-पिता मिले हैं, उन्हें मैं अपने पूर्वजन्म के संचित शुभ कर्मों का फल मानता हूँ। अन्य सब सम्बन्धी भी मुझे अच्छे ही प्राप्त हुए हैं। यह भी जन्मान्तर के सत्कर्मों का ही फल है।

मेरी कामना है कि, मेरी शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही किसी संस्था में हो, जैसी इस जीवन में हुई है। शिक्षा और चारित्र्य की सम्मिलित शिक्षा का इससे अच्छा अन्य उपाय नहीं है।

इन विचारों से आप समझ गये होंगे कि, मैं अत्यन्त सन्तोषी जीव हूँ। जो अच्छी वस्तुएँ मुझे प्राप्त हुई हैं, उनके लिए मैं प्रभु का कृतज्ञ हूँ। वैसी वस्तुएँ फिर प्राप्त हो जायें, तो उससे मेरा सन्तोष हो जायेगा। नीतिकार ने कहा है—**"असन्तोषः श्रियो मूलम्"** अर्थात् लक्ष्मी असन्तोषी को मिलती है। दूसरा नीतिवाक्य है—**"सन्तोष : परमसुखम्"** सन्तोषी को परम सुख प्राप्त होता है। दोनों नीतिवाक्यों को सत्य मानें, तो यह परिणाम निकलेगा कि, सुख और श्री का परस्पर विरोध है। यह ठीक है।

मुझे सन्तोषी होने का यह फल मिला है कि, मैं हर दशा में सुखी रहा हूँ। श्री का कृपा-पात्र न होने पर भी गृहस्थ के सब आवश्यक कर्तव्यों का पालन भली प्रकार कर सका हूँ। इन सब कार्यों को सफलतापूर्वक करने के लिए सामर्थ्य कहाँ से आया? इस प्रश्न की हुँडियाँ सांवलशाह ने ही सकारी हैं।

परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि, मुझे अपने वर्तमान जीवन में कोई न्यूनता प्रतीत ही नहीं होती, जिसे मैं दूसरे जीवन में पूर्ण करना चाहूँ।

यदि मुझे पुनः जीने का अवसर मिले, तो मैं चाहूँगा कि, स्वदेश में शिक्षा प्राप्त करके, विदेश-भ्रमण द्वारा उसे पुष्ट तथा परिपूर्ण कर लूँ, तब कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करूँ। उससे मेरा दृष्टिकोण अधिक विस्तृत हो जायेगा।

मेरी दूसरी इच्छा यह है कि, दूसरे जीवन को मैं मुख्य रूप से ज्ञान-विज्ञान की सेवा में व्यतीत करूँ। इस जीवन में मेरे लिए राजनीति तब तक आकर्षण की वस्तु थी, जब तक उसमें तप और त्याग की प्रधानता थी। अब परिस्थिति बदल गयी है। राजनीति का रूप अधिकार-प्रधान हो गया है।

मेरी यह भी इच्छा है कि, अगले जीवन में प्रभु मुझे स्वस्थ शरीर दें। इस जीवन में तो मैंने रोगी शरीर के साथ ही प्रवेश किया था। यह पूर्वजों के पुण्य का प्रताप है कि, यह शरीर अभी तक सेवा करने के योग्य बना हुआ है। यदि अगले जीवन में मुझे नीरोग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर मिलेगा, तो इस जीवन की अपेक्षा राष्ट्र की अधिक सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगा ।

न अन्तरिक्ष की इच्छा है, और न पाताल की । मेरी इच्छा इस भूलोक तक ही परिमित है ।''

इन थोड़े से शब्दों में इन्द्रजी के सेवा, तप और त्यागमय जीवन का पूरा चित्र सामने आ जाता है । भगवान् ऐसी पुनीत कामना को अवश्य स्वीकार करेगा । गीता के भगवान् का वचन है :—''मृत्यु के समय तुम जो कामना करोगे वह पूर्ण होगी ?''

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी
लेखक, विचारक, पत्रकार और मार्गदर्शक भी

इन्द्रजी केवल विचारक ही नहीं, पथ-प्रदर्शक भी थे। उनकी लेखनी घटनाओं का विश्लेषण ही नहीं करती थी, चेतावनी भी देती थी। विपक्षी के हृदय पर उनके वाक्य विष बुझे वाणों की तरह चुभते थे और मित्र को सीधी राह पर चलने को सावधान भी करते थे।

अगले कुछ पृष्ठों में हम उनकी ओज भरी लेखनी के कुछ अंश दे रहे हैं। ये सभी लेखांश १९४६ से १९५६ तक विविध अवसरों पर अर्जुन के सम्पादकीय रूप में लिखे गये लेखों के भाग हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१९४६ में भारतीय सेना के एक विभाग ने क्रान्ति की सूचना दे दी थी । अंग्रेज सरकार उसे तव बगावत कहकर दबा देना चाहती थी । तभी अंग्रेज शासकों को चेतावनी देते हुए श्री इन्द्रजी ने लिखा था——

"हुजूर यह बगावत नहीं, राज्य क्रान्ति है"

"मैं वायस एडमिरल गोडफ्रे और उस देश के लोगों से कहना चाहता हूँ कि 'हुजूर यह बगावत नहीं, राज्य क्रान्ति है ।' आपकी नींद में खलल पड़ रहा है, परन्तु सच्चाई को न देखकर प्रेम में पड़े रहने से काम नहीं चलेगा । गत ४ वर्षों से भारत में कई स्थानों पर और कई बार जो विस्फोट हुए हैं, उन्हें बगावत समझना भयंकर भ्रान्ति है । वाइस एडमिरल गोडफ्रे और उनके हमजोलियों से इतना ही निवेदन है कि आँखें बन्द कर लेने से साँप की रस्सी न बन जायेगी । साँप साँप ही रहेगा । और पाँव की चोट खाकर उसे डँसने से नहीं चूकेगा । जिसे तुम बगावत और विग्रह समझ रहे हो, वह अग्नि की कुछेक चिनगारियाँ हैं, जो अन्दर-ही-अन्दर धधक रही हैं । इसलिए भलाई इसी में है कि शाब्दिक धमकी देने से पहले परिस्थिति की स्पष्ट आवाज को कान खोलकर सुन लो । समय तुम्हें कई वर्षों से चेतावनी दे रहा है, किन्तु उसे न समझकर अपनी शक्ति के भरोसे चलने का परिणाम अच्छा नहीं होगा । यह पृथ्वी ब्रिटिश साम्राज्य से अधिक बड़े साम्राज्य के खण्डरातों से भरी पड़ी है । भलाई इसी में है कि तुम समय की चेतावनी को सुनो और दुर्दैव से खेलने की चेष्टा छोड़ दो । सच्चाई इतनी ही है कि भारतवासी अब गुलाम बनकर रहना नहीं चाहते । वह स्वाधीन होना चाहते हैं । जिन्हें तुम बगावत पुकारते हो, वह इस स्वाधीनता-रूपी प्रबल आग की चिनगारियाँ मात्र हैं ।"

अर्जुन २३ फरवरी १९४६

उन्हीं दिनों नेताजी सुभाष की आइ० एन० ए० फौज के देश-भक्तों पर लाल किले में मुकद्दमा चला था । अभियोग से मुक्त होकर जब वे बाहर आये तो जनता उनके दर्शनों को टूट पड़ी थी । उस भीड़ को देखकर इन्द्रजी ने अंग्रेज हाकिमों को कहा था——

×

तूफान का पूर्व रूप

"मैदान में हजारों की लगभग तीस-पैंतीस हजार की भीड़ एकत्र थी और बराबर बढ़ रही थी, सभी रास्तों से मनुष्यों की बाढ़-सी उमड़ी चली आ रही थी । उस भीड़ में पुरुष थे, स्त्रियाँ थीं और बच्चे भी थे । उस भीड़ में व्यापारी भी थे, मजदूर थे और सरकारी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नौकर भी। उस भीड़ में हिन्दू थे, मुसलमान भी थे और सिक्ख भी थे। और शायद इस हिसाब में कोई भूल नहीं कर रहा कि उस भीड़ में कई हजार हिन्दुस्तानी सिपाही भी थे, जिनमें से कुछ वर्दी में और शेष सादे कपड़ों में। यह भीड़ कैप्टन लक्ष्मी को देखने और उनके भाषण सुनने को एकत्र हुई थी। कैप्टन लक्ष्मी कोई बड़ी व्याख्यान कुशल नेत्री नहीं हैं। यदि होतीं तो भी शायद इतनी जनता इतने उत्साह से इकट्ठी न होती। यह तो निश्चित ही बात है कि केवल व्याख्यान ही सुनने के लिए इतने मनुष्य सु-सरकारी कर्मचारी और सिपाही इकट्ठे नहीं होते।

कैप्टन लक्ष्मी को देखकर मुझे गुरुगोविन्दसिंहजी का वह पद याद आ गया कि—

चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ।
तो गोविन्दसिंह नाम धराऊँ॥

श्री गुरु गोविन्दसिंह का यह दावा था कि वह दुश्मन के बाज से अपनी चिड़िया को लड़ा सकते थे। यह उनके नेतृत्व का रहस्य था और यही उनके व्यक्तित्व का जादू था। और इस हल्के से शरीर की भारत-पुत्री को वीरांगना के रूप में मंच पर खड़ा देखकर मैंने अनुभव किया कि यह नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व का जादू था, जिसने इस चिड़िया को अंग्रेज सेना के बाज से भिड़ा दिया, उस जोश भरी भीड़ पर और उस बहादुर लड़की के तेवर पर नेताजी का जादू भरा व्यक्तित्व छाया हुआ दीखता था। उस समय मैं सोच रहा था कि जो देश सुभाषचन्द्र बोस जैसे नेता और कैप्टन लक्ष्मी जैसी अनुयायी उत्पन्न कर सकता है, उसे कोई शक्ति चिरकाल तक दासता की बेड़ियों में बाँधकर नहीं रख सकती। मैं भीड़ में खड़ा हुआ सरकारी नौकरों और सिपाहियों की बातें सुन रहा था। उन बातों में साधारण जनता की अपेक्षा भी अधिक तीव्र क्रान्ति की ध्वनि सुनायी दे रही थी। वहाँ की प्रत्येक वस्तु देश के बेचैन वातावरण और स्वाधीनता की न दबनेवाली अभिलाषा की सूचना दे रही थी। आँखोंवाले यदि देखना चाहें तो वह उसी मैदान में पूर्व से उठते हुए तूफान का पूर्व रूप देख सकते थे।"

अर्जुन : ९ मार्च १९४६

×

कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मिली-जुली अन्तरिम सरकार बनने के बाद देश में साम्प्रदायिक उपद्रवों की ज्वाला फूट पड़ी थी। उसे देखकर बड़े-बड़े नेता भी काँप उठे थे। उन्हें धैर्य की शिक्षा देते हुए और राष्ट्रीय ध्येय का स्मरण दिलाते हुए इन्द्रजी ने लिखा था :—

क्रान्ति की चिनगारियाँ

"अन्तरिम सरकार और विधान परिषद् क्रान्तिरूपी अग्नि की छोटी-छोटी चिनगारियाँ हैं। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो हम कह सकते हैं कि मुस्लिम लीग का आन्दोलन,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कलकत्ता और नोआखाली के हत्याकाण्ड और बिहार तथा गढ़मुक्तेश्वर की प्रतिक्रियायें भी उसी देश व्यापक क्रान्ति की ज्वालाएँ ही हैं । जब सदियों से इकट्ठे हुए दासता के कूड़े-करकट का जलना आरम्भ होता है तब यह आशा रखना कि आग न जलेगी, तपिश न होगी और वायुमण्डल में बेचैनी न होगी, केवल इस बात का सूचक है कि हम क्रान्ति को नहीं समझते । मृत्यु के दूतों से बचने के लिए जो उग्र चेष्टा की जाती है, उसका नाम क्रान्ति है । उसमें शान्त कैसे रहा जा सकता है । संसार की क्रान्तियों का इतिहास पढ़कर देखो, वह रक्त से सना पड़ा है । अभी हमारे देश में हुआ ही क्या है । यदि इस अशान्ति से डर लगता था तो राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना को उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिए था ।

हमारे राष्ट्रीय संग्राम के इस अन्तिम पड़ाव में साहस, धैर्य और बल की आवश्यकता है । जो जाति अन्दर के या बाहर के शत्रुओं के आक्रमणों से घबरा जाती है, वह जीवित रहने का अधिकार खो देती है । अब तो ऐसा समय आ गया है कि हम खतरों का स्वागत करें और केवल अपने अन्तिम राष्ट्रीय ध्येय की प्राप्ति को ही व्यक्तिगत सामाजिक जीवन का लक्ष्य समझें ।"

अर्जुन : ७ दिसम्बर १९४६

×

इन उपद्रवों का दमन करने में अन्तरिम सरकार जब असफल होती दिखायी दी तो स्पष्टवादी इन्द्रजी ने निर्भीक स्वर में जवाहरलाल नेहरू को कहा :—

"राष्ट्रीय नेताओं से निवेदन : शासन करो या गद्दी छोड़ दो"

"राष्ट्र के नेताओं के सिर पर बहुत भारी उत्तरदायित्व है ? शासन का काम अप्रिय हो तो भी उसे करना ही पड़ता है । यदि अप्रिय करने से डर लगता हो तो शासक की गद्दी का परित्याग कर देना चाहिए । अस्थायी सरकार का सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि वह बिना विलम्ब गुंडों और उनके नेताओं का दमन करके देश के निहत्थे-निरीह निवासियों के जानमाल की रक्षा करे ।

अपने माननीय नेता पं० जवाहरलाल नेहरू से मेरा निवेदन है कि भारत के सीमा-प्रान्त और सीमाप्रान्त के आगे समुद्र पार दृष्टि दौड़ाने से पहले देश की सीमाओं के अन्दर दृष्टिपात करें । वह ध्यान में रखें कि देश में निरपराध पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों पर प्रहार या जो भी अत्याचार होगा, उनके लिए अस्थायी सरकार जिम्मेदार समझी जायेगी । यदि गुनाहों का बोझ बहुत अधिक बढ़ गया तो हमारे सम्मानित नेताओं के कन्धे भी उसे न उठा सकेंगे । मैं यह निवेदन देश की साधारण प्रजा का प्रतिनिधि बनकर अपने राष्ट्रीय नेताओं से कर रहा हूँ । संक्षेप में निवेदन यह है कि या तो दृढ़ता से देश का शासन करो अथवा यह घोषणा करके कि वर्तमान शासन विधान के रहते देश का प्रबन्ध

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करना सम्भव नहीं । सरकार की बागडोर वायसराय के हाथ में वापिस दे दो । देश-वासियों की हत्या में हिस्सेदार बनने से राष्ट्रीय नेताओं को कोई लाभ नहीं होगा ।"

अर्जुन : २९ अक्तूबर १९४६

×

सरकार उपद्रवी तत्वों का दमन करने में असमर्थ दिखलायी दी, और देश में रक्त की नदियाँ बह गयीं तब भी आपने स्वतन्त्रता के मार्ग से विमुख न होने का संकेत देते हुए लिखा था :—

"रक्त की नदी"

"देशवासियों को वर्तमान अशान्ति से घबराना नहीं चाहिए । संसार में जितनी राज्यक्रान्तियाँ हुई हैं, उनमें जातियों को रक्त-स्नान करना पड़ा है । यदि हमने समझ लिया था कि केवल हम ही ऐसे भाग्यशाली हैं कि एक दिन सुबह उठेंगे और अपने आपको स्वतन्त्र पायेंगे, तो यह हमारी भूल थी । न इतिहास में ऐसा कभी हुआ ही है और नहीं आगे होगा । यह ठीक है कि हम स्वतन्त्रता के मन्दिर के समीप पहुँच गये हैं । हमारे नेता यह शुभ समाचार कई बार सुना चुके हैं कि हम स्वतन्त्रता के मन्दिर की दहलीज पर खड़े हैं, परन्तु वह यह कहना भूल गये थे कि दहलीज और मन्दिर के बीच रक्त की एक नदी बह रही है, उसमें से भी गुजरना पड़ेगा ।"

अर्जुन : १९ मई १९४७

×

देश की भूमि हिन्दू-मुसलमानों के खून से लाल हो गयी थी और जिन्ना ने खून का हवाला देकर भारत के विभाजन का नारा बुलन्द कर दिया था । कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता जिन्ना के जाल में फँसने लगे । देश के विभाजन का प्रश्न राष्ट्र के जन्म-मरण का प्रश्न बन गया । उन दिनों इन्द्रजी ने जो लेख अर्जुन में लिखे थे, उनका ऐतिहासिक महत्त्व है । यहाँ उनमें से कुछ लेखांश दे रहे हैं । उनके शीर्षक थे :—

(१) पाकिस्तान पर कोई समझौता नहीं ।

(२) राष्ट्र क्या चाहता है ? स्वतन्त्र और अखण्ड भारत ।

(३) विभाजन का पागलपन ।

पाकिस्तान पर कोई समझौता नहीं

"सिन्ध में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का सम्मिलित मन्त्रि-मण्डल बनाने का विचार हो रहा है । यदि यह समझना निर्मूल है तो कोई बात नहीं । परन्तु यदि इसमें सच्चाई का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थोड़ा-सा भी अंश है तो एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि कांग्रेस पार्टी मुस्लिम-लीग से व्यावहारिक रूप से जो भी समझौता करे, पाकिस्तान की किसी रूप में भी स्वीकृति उसका हिस्सा नहीं होनी चाहिए । स्पष्ट शब्दों में कांग्रेस के कर्णधारों के सम्मुख इस बात को रख देना अत्यन्त आवश्यक है । ब्रिटिश डेलिगेशन के एक सदस्य ने समाचार पत्रों को बतलाया कि महात्मा गांधी मिस्टर जिन्ना को अपने विचारों में ईमानदार समझते हैं । विरोधी को भी ईमानदार समझना महापुरुषों की शोभा है । किन्तु व्यवहार में किसी ईमानदार अपराधी को क्षमा नहीं किया जाता । जर्मनी के सब युद्ध अपराधी अपने विचारों में ईमानदार हो सकते हैं; परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कचहरी से उनके मुक्त होने की कोई आशा नहीं । हमारे राष्ट्र की स्वाधीनता में विघ्नकारी मिस्टर जिन्ना की भी राष्ट्र के अपराधियों में गिनती होगी । पाकिस्तान की कल्पना राष्ट्रीयता के नितान्त विरुद्ध है । भारतीय राष्ट्र और पाकिस्तान एक नहीं रह सकते । इस कारण यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जानी चाहिए कि किसी भी राजनैतिक सहूलियत के लिए कांग्रेस पाकिस्तान की स्पष्ट या अस्पष्ट स्वीकृति के आधार पर मुस्लिम लीग के साथ समझौता नहीं कर सकती । यदि करेगी तो वह भारतीय राष्ट्र के साथ घोर विश्वासघात करेगी । विश्वासघात शब्द का प्रयोग मैंने जानबूझकर किया है । यह संदिग्ध है कि वर्तमान चुनाव आन्दोलन में कांग्रेस की ओर से राष्ट्र के साथ यह वायदा स्पष्ट शब्दों में किया गया है कि पाकिस्तान का विचार राष्ट्र विद्रोही है । जबतक मुस्लिम लीग पाकिस्तान को अपना मुख्य ध्येय समझती है, तबतक कांग्रेस का मुस्लिम लीग से कोई समझौता नहीं हो सकता । सरदार बल्लभ भाई पटेल, पं० जवाहरलाल नेहरू और डा० राजेन्द्रप्रसाद जैसे जिम्मेदार व्यक्तियों ने राष्ट्र को विश्वास दिलाया है कि कांग्रेस पाकिस्तान के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकती।

'दूध का जला छाछ को फूँक-फूँक कर पीता है' इस लोकोक्ति के अनुसार दिल में जो खटका पैदा होता है, उसे स्पष्ट रूप से राष्ट्र के कर्णधारों के सामने रखकर निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि राष्ट्र किसी भी नैतिक सफलता के लिए राष्ट्र की एकता और पूर्ण स्वाधीनता रूपी दो मूल सिद्धान्तों की बलि देने को उद्यत नहीं होगा ।"

अर्जुन : ३० जनवरी १९४६

×

राष्ट्र क्या चाहता है : स्वतन्त्र और अखण्ड भारत

"यह स्थापना निःशंक भाव से की जा सकती है कि आज राष्ट्र की केवल एक यह अभिलाषा है कि भारत राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा स्वतन्त्र और अखण्ड इकाई के रूप में संसार के अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़ा हो । भारतवासी अब देश को स्वतन्त्र देखना चाहते हैं । न वह उसके टुकड़े होने देंगे, और न उस पर दासता का कलंक रहने देंगे । स्वाधीनता और एकता भारतीय भावना का सार है । विलायत से भारत को स्वाधीनता देने के लिए मंत्रियों का जो मिशन आया है, उसे हम स्पष्ट रूप में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बतला देना चाहते हैं कि राष्ट्रीय भारत क्या चाहता है । मिशन के सदस्यों का कहना है कि उनके हृदय के कपाट खुले हैं, परन्तु उन्हें स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि राष्ट्रीय भारत के हृदय के कपाट बातचीत के लिए खुले होने पर भी इतने खुले नहीं हैं कि वह अपने हृदय के किसी भी मार्ग से देश के विभाजन अथवा दासता के भाव घुसने का मार्ग दे सके । हमारे नेताओं को यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि बातचीत और सुलहनामों का काम जारी होने पर वह राष्ट्र की अभिलाषा के किसी भी अंश को दृष्टि से ओझल न होने दें ।

इंग्लैण्ड से आये महानुभाव, भारतवर्ष के नेता और सभ्य राष्ट्रों के कर्णधार सुन लें कि भारतीय राष्ट्र की सर्वसम्मत माँग है, स्वाधीन और अखण्ड भारत । उससे कम में राष्ट्र को सन्तोष नहीं हो सकता, यह न मिले तो राष्ट्र को इस समय कुछ नहीं चाहिए, जब लेने की शक्ति बढ़ जायेगी, तब खुद ही ले लेंगे, पर पूरा माल लेने के बजाय अधूरा माल लेकर अपने हाथों को कलंकित न होने देंगे ।"

अर्जुन : १७ मार्च १९४७

×

"विभाजन का पागलपन"

"कांग्रेस ने अब मुस्लिम लीग का दिमाग सीधा करने के लिए सीधा रास्ता छोड़कर टेढ़े रास्ते की शरण ली । परिणाम वही हुआ जो मार्ग-भ्रष्ट हो जाने पर हुआ करता है । इसका सबसे पहला और सबसे अधिक विषैला फल तो यह हुआ कि कांग्रेस ने देश के विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, और एक तरह से उसने लीग के दावे को मंजूर कर लिया। अब उसका कथन केवल इतना ही रह गया है कि पाकिस्तान ले लो, किन्तु पंजाब और बंगाल के कुछ हिस्से अलग छोड़ दो । वस्तुत: यदि आज अपने सिद्धान्त की सफलता पर मिस्टर जिन्ना और लीग सन्तोष प्रकट करें तो आश्चर्य नहीं, पंजाब का विभाजन हो या न हो। कांग्रेस ने विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार करके राष्ट्रीय पक्ष को बहुत निर्बल कर दिया है ।

मेरी सम्मति में कांग्रेस को और सब राष्ट्रवादियों को अपने इस सिद्धान्त पर ही दृढ़ रहना चाहिए कि भारत एक और अखण्ड है । विभाजन के प्रस्ताव के साथ किसी प्रकार का समझौता करने से भविष्य में अनगिनत समस्याओं के उत्पन्न हो जाने की सम्भावना है ।"

अर्जुन : १५ अप्रैल, १९४७

×

विभाजन हो ही गया । देश के दो खण्ड करके कांग्रेस ने जिन्ना को पाकिस्तान सौंप दिया । आशा थी कि तब सर्वत्र शान्ति हो जायेगी । मगर इन्द्रजी इस झूठे आशावाद में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं फँसे थे। उनकी प्रखर प्रतिभा ने कांग्रेस की भूलों का विवेचन और भविष्य के दर्शन करते हुए जो लेख लिखे थे। उनके शीर्षक थे--

(१) कांग्रेस की मौलिक भूल
(२) कांग्रेस की दूसरी भूल
(३) राष्ट्र के नेताओं की दूसरी परीक्षा : कश्मीर पर संकट।
(४) पाकिस्तान भारत पर आक्रमण कर सकता है ?

कांग्रेस की मौलिक भूल

"कांग्रेस का कहना है कि उसने मुस्लिम लीग द्वारा प्रतिपादित दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया। यदि यह ठीक है तो समझ में नहीं आता कि कांग्रेस ने देश के विभाजन को क्यों मान लिया, विभाजन के पक्ष में तो युक्ति ही एक थी कि देश में एक नहीं, दो राष्ट्र हैं--जब उस युक्ति को कांग्रेस ने कभी स्वीकार नहीं किया था, तो उसने उस युक्ति पर आश्रित बटवारे को क्यों स्वीकार कर लिया। यह युक्ति विरुद्ध और बुद्धि विरुद्ध कार्य करने का अधिकार कांग्रेस को किसने दिया था ? भारत की जनता ने तो नहीं दिया। क्योंकि देश-वासियों का बहुत भारी लोकमत विभाजन के विरुद्ध था और अब भी है।

कांग्रेस के हाई कमान ने लोकमत के विरुद्ध देश के बटवारे को स्वीकार कर लिया है। यह बहुत बड़ी भूल हुई। कांग्रेस के नेताओं ने शायद यह समझा कि विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से मुस्लिम लीग सन्तुष्ट हो जायेगी, और पाकिस्तान के अतिरिक्त सारे भारत को सुख की नींद सोने देगी।

प्रस्ताव के इसी भाग में कहा गया कि "भारत का बँटवारा हो जाने के बावजूद भी" दोनों उपनिवेशों के विस्तृत इलाकों में लूटपाट जारी है। इसमें मुझे एक शब्द पर आपत्ति है, वह है बावजूद। जहाँ बावजूद शब्द है वहाँ 'के कारण' यह शब्द होना चाहिए। आज जो हत्याकाण्ड हो रहे हैं वे बटवारे के बावजूद नहीं, अपितु उसके कारण हो रहे हैं। यह थी कांग्रेस के नेताओं की भूल कि उन्होंने क्षणभर के लिए भी विभाजन से किसी भले परिणाम की आशा रखी थी। बहुत-से देशवासी बराबर चेतावनी देते रहे हैं कि बटवारा एक विष है, वह अमृत नहीं बन सकेगा। परन्तु नेताओं ने उनकी चेतावनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया, और अपनी लोकप्रियता के भरोसे पर देश के विभाजन रूपी पाप के भागीदार बन गये। आज देश की जो दशा है, वह विभाजन का फल है।"

अर्जुन : २६ सितम्बर, १९४७

×

कांग्रेस की दूसरी भूल

"विभाजन से पूर्व कांग्रेस का दावा था कि हिन्द में एक राष्ट्र है--और एक ही रहना चाहिए। मुस्लिम लीग इस दावे को स्वीकार नहीं करती थी। वह कहती थी कि हिन्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में एक नहीं दो राष्ट्रों का निवास है। यह विवाद कई वर्षों से चल रहा था। जब भारत के स्वतन्त्र होने का समय आया, तब व्यवहार रूप से मुस्लिम लीग के दावे को स्वीकार किया गया और कांग्रेस के दावे को अस्वीकार। इस अस्वीकृति से कांग्रेस स्वयं भी रजामन्द हो गयी। देश दो राष्ट्रों में बाँट दिया गया। पाकिस्तान मुसलमानों को दिया गया और हिन्दुस्तान हिन्दुओं को। वास्तविक स्थिति तो यही है। बाकी रही मन समझाने की बात। उसे आप चाहें तो सहस्रों रूप दे सकते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बटवारे में हिन्दुस्तान हिन्दुओं के हिस्से में आया। इस स्थापना का क्या अभिप्राय है? इसका यह अभिप्राय नहीं कि हिन्द देश में केवल हिन्दू ही रहें। सब लोग रहेंगे, परन्तु देश मुख्य रूप से हिन्दुओं का रहेगा। हिन्दू घर के व्यक्ति की हैसियत से रहेंगे और अन्य लोग उनके साथी बनकर। देश की नागरिकता खुली रहेगी। जो भारत के लिए वफादार होकर भारत में रहना चाहे, वह भारतवासी बन सकेगा, परन्तु इससे यह सचाई नहीं दब सकेगी कि हिन्द देश हिन्दुओं का है। बँटवारे का यही अभिप्राय है। महात्मा गांधी अपने भाषण में बार-बार दुहराते हैं कि हिन्दुस्तान हिन्दू का भी है और मुसलमान का भी है तथा और सभी का है। यदि इनका यह अभिप्राय है कि इस देश में अनेक सम्प्रदाय निवास करते हैं, तब तो यह सर्वथा सत्य है, परन्तु यदि इसका यह अभिप्राय है कि सम्प्रदायों के लोग हिन्द के लिए समान रूप से वफादार रहेंगे तो यह कथन सर्वथा निराधार है। महात्माजी को भी मानना पड़ा है कि भारतवर्ष को जो स्वाधीनता मिली है, वह मुख्य रूप से हिन्दुओं के परिश्रम और बलिदान का फल है।"

अर्जुन : २७ सितम्बर १९४७

×

राष्ट्र के नेताओं की दूसरी परीक्षा—काश्मीर पर संकट

"काश्मीर पर जो संकट आया है––उसका केवल काश्मीर सरकार से ही सम्बन्ध नहीं है। काश्मीर पर पाकिस्तानी सेनाओं का आक्रमण भारत पर पाकिस्तानी सेना के आक्रमण की भूमिका है। वे लोग काश्मीर को टटोल कर देखना चाहते हैं कि भारत सरकार में कितनी जान है। काश्मीर पर हो रहे पाकिस्तानी आक्रमण की सफलता का जो अवश्यम्भावी और तुरन्त परिणाम होगा, उस पर विचार करें तो हृदय काँप उठता है। भारत का सुन्दरतम प्रदेश नष्ट हो जायेगा। हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ, भारत से सैकड़ों मील दूर जा पड़ेगा। काश्मीर के लाखों हिन्दू शरणार्थी बनकर पूर्वी पंजाब में पहुँचने लगेंगे, जिससे पहले ही बोझ से दबी हुई सरकार की पीठ टूट जाये तो कोई आश्चर्य न होगा।"

२९ अक्तूबर, ४७

×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"क्या पाकिस्तान भारत पर आक्रमण कर सकता है ?"

"आक्रमण की सम्भावना का तीसरा कारण काश्मीर का प्रश्न है, यदि काश्मीरका प्रश्न भारत और पाकिस्तान के परस्पर समझौते से हल हो जाये, तो बहुत ही उत्तम हो। परन्तु ऐसी बड़ी सम्भावना प्रतीत नहीं होती है। पाकिस्तान के शासक चाहते हैं कि काश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा बने, परन्तु काश्मीर के निवासी ऐसा नहीं चाहते। वे भारतीय संघ में रहना पसन्द करते हैं। वे पाकिस्तान के आदर्शों और कार्यों से असहमत हैं। इधर भारतीय संघ काश्मीर निवासियों की इच्छानुसार उनकी रक्षा के लिए वचनबद्ध हैं। यदि सुरक्षा कौंसिल कोई ऐसा बीच का कदम निकाल सके, जिसे दोनों पक्ष मान लें, अन्यथा काश्मीर का प्रश्न उग्र रूप धारण कर ले तो कोई आश्चर्य नहीं। उस दशा में सम्भव है पाकिस्तानी सेनाओं का जो आक्रमण काश्मीर पर चल रहा है, वह सारे भारतवर्ष पर होने लगे।

चौथा कारण जो पाकिस्तान को भारत पर आक्रमण करने को प्रेरित कर सकता है। यह है कि विभाजन से पूर्व और उसके पश्चात् मुस्लिम लीग और लीगी सरकार ने अशान्ति और हिंसा के जो भूत खड़े किये थे, उन्हें कोई-न-कोई भोजन तो चाहिए ही। काश्मीर और पंजाब के अन्तःसीमा प्रान्त पर जो आतताईपन हुआ है, या हो रहा है, उसके लिए कबाय-लियों या पठानों को तो व्यर्थ ही बदनाम किया जा रहा है, गुजरे हुए एक वर्ष में पाकिस्तान के निवासियों ने मुस्लिम लीग का नारा लगाते हुए ऐसे अत्याचार किये हैं, कि कबायली और पठान उससे मात खा गये। आतताईपन की यह बाढ़ इतना जोर पकड़ गयी है कि पाकिस्तान का शासक वर्ग आसानी से उसे नहीं रोक सकता। इस डर से कि कहीं वह बाढ़ पाकिस्तान को ही जलमग्न न कर दे। सम्भव है पाकिस्तान का भाग्य विधाता इस बाढ़ का मुँह भारत की ओर ही मोड़ दे।

पाँचवाँ और अन्तिम कारण यह है कि इंग्लैण्ड भौगोलिक दृष्टि से तो भारत से अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर उठा ले गया है। परन्तु लक्षणों से प्रतीत होता है कि उसकी अन्त-रात्मा अभी बहुत समय तक भारत के अन्तरिक्ष पर मँडराती रहेगी। इधर अमेरिका भी दूसरे विश्वव्यापी युद्ध के पश्चात् शतरंज के खेल में पूरी तरह शामिल हो गया है, उसे भी एशिया प्रदेश में चलने के लिए कोई-न-कोई मोहरा चाहिए। लक्षणों से प्रतीत होता है कि भारतीय संघ अभी किसी अन्य देश का मोहरा बनने को तैयार नहीं है। ऐसी दशा में यूरोप के पश्चिमी संघ की दया दृष्टि पाकिस्तान पर पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं। लक्षणों से प्रतीत होता है कि पाकिस्तान उन देशों का मोहरा बनने को तैयार है।

मैं यह नहीं कहता कि पाकिस्तान कल ही भारत पर आक्रमण करनेवाला है, मेरा केवल इतना ही कहना है कि भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण की सम्भावना ऐसी वस्तु नहीं कि उस पर शीघ्र और गम्भीरता से विचार ही न किया जाये, व्यावहारिक राजनीति में सम्भावनाओं का महत्त्व वास्तविकताओं से कुछ कम नहीं होता। कभी-कभी वह अधिक होता है। क्योंकि वास्तविक संकट की मात्रा को आसानी से जाना जा सकता है, इस कारण मुकाबिला करने के लिए तैयारी बहुत ही अधिक चाहिए, दूरदर्शिता इसी में है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देशवासियों, देश के नेताओं और देश के कर्णधारों से मेरा निवेदन है कि केवल भावुकता में आकर सम्भावित कष्ट की अपेक्षा न करें। याद रखें कि आजकल के युद्ध घोषणाओं से आरम्भ नहीं होते, अपितु शत्रु की राजधानी पर बम वर्षाओं से होता है। आक्रमण पहले होता है और घोषणा पीछे। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि पाकिस्तान की सीमा से दिल्ली की दूरी ३०० मील से भी कम है। लड़ाकू हवाई जहाज इस दूरी को दो घण्टे में पार कर सकता है। पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब की सीमा को प्रकट करने के लिए न कोई ऊँचा पहाड़ है और नहीं कोई गहरी नदी। इन परिस्थितियों को सामने रखकर देश की रक्षा के प्रति देशवासियों और भारतीय संघ के संचालकों का जो कर्तव्य है, उसकी ओर ध्यान खींचना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।"

इन्द्रजी की भविष्यवाणी सच निकली। पाकिस्तान की सेना ने सरहदी गुंडों के साथ मिलकर भारत के ही एक प्रदेश––काश्मीर पर आक्रमण कर दिया। उस समय इन्द्रजी ने जो लेख लिखे, वे जनमत के सच्चे प्रतिनिधि ही नहीं, जनमत के पथ-प्रदर्शक भी थे। आपके कुछ लेखों के शीर्षक थे।

(१) भारतवासियों को सशस्त्र बनाओ।
(२) राजदण्ड हाथ में लो।
(३) काश्मीर की रक्षा : भारतवासियों का कर्तव्य।
(४) काश्मीर का विभाजन।

×

"भारतवासियों को सशस्त्र बनाओ"

"भारत को जिन देशों से विरोध की आशंका रहती थी, उनमें १५ अगस्त से एक की और वृद्धि हो जायेगी। देश में से काटकर जो पाकिस्तान का नया राज्य बनाया जा रहा है, वह प्रारम्भ में भारत का नैसर्गिक विरोधी रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। यह तो स्पष्ट है कि कोई भारतवासी नहीं चाहेगा कि उसका पड़ोसी उसका शत्रु होकर रहे, हम चाहते तो यही हैं कि पाकिस्तान भारत का मित्र हो, परन्तु पुरानी राजनीति में बताया गया है कि राज्य का पड़ोसी उसका नैसर्गिक शत्रु होता है, तिस पर यह तो पड़ोसी भी ऐसा होगा कि जिसके साथ भारत के सीमा-सम्बन्धी झगड़े बहुधा विरोध के कारण बना करते हैं। इच्छा न रहते हुए भी यह सम्भावना बनी रहेगी कि भारत और पाकिस्तान का संघर्ष ठन जाये।

राष्ट्रीय सरकार को इन सब सच्चाइयों पर विचार करके पहले ही दिन से यह मनसूबा बाँध लेना चाहिए कि वह सम्पूर्ण राष्ट्र को देश की रक्षा में अपना सहयोगी बनायेगी। जब तक प्रत्येक भारतवासी यह अनुभव नहीं करेगा कि देश की रक्षा करना उसका कर्तव्य है, उसका परम धर्म है, तब तक देश की रक्षा की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। प्रत्येक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतवासी को ऐसा अनुभव कराना राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कर्तव्य है, उसे सारे देश को सशस्त्र बनाने का उद्योग शीघ्र ही आरम्भ कर देना चाहिए, आर्मज एक्ट को रद्द कर देना चाहिए। सैनिक-शिक्षा प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष के लिए आवश्यक हो, स्कूलों और कालिजों में विशेष रूप से ऊँचे दर्जे की युद्ध-विद्या सिखायी जाये। ये सब उपाय हैं, जिनका एकदम काम में लाना आवश्यक है। राष्ट्रीय सरकार को केवल सेनाओं के भरोसे पर सन्तोष से न बैठ जाना चाहिए, सारे राष्ट्र को सशस्त्र बनाने का कार्य तुरन्त आरम्भ कर देना चाहिए, अन्यथा यह सम्भव है कि हम सन्तोष के सुख-स्वप्न ले रहे हों और तूफान सिर पर आ जाये।"

अर्जुन : २ अगस्त १९४७

×

"राजदण्ड हाथ में लो"

"डेढ़ सौ गाँवों पर विदेशी आक्रमण का सफल हो जाना न केवल चिन्ता की, अपितु लज्जा की बात है। यदि आक्रमण के इस छोटे से प्रवाह को बलपूर्वक पीछे नहीं हटाया जायेगा तो यह शीघ्र ही बाढ़ के रूप में परिणत हो सकता है, डेढ़ सौ गाँव जिले के रूप में और जिला प्रान्त के रूप में परिणत हो सकता है, राजनीति का यह मूलमन्त्र है कि "देश की सीमाओं को पवित्र समझा जाये।" उसकी चप्पा-भर भूमि पर भी विदेशी आक्रमण को सारे देश पर आक्रमण समझा जाये। यदि ऐसी भावना न रखी जाये तो कुछ समय तक व्याधि बढ़ जाने पर बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

इससे कोई लाभ नहीं होगा कि हमारा विदेश-विभाग पाकिस्तान सरकार की सेवा में एक शिकायती चिट्ठा पेश करे, या भारतीय सेना के अंग्रेज सेनापति एक लम्बा वक्तव्य निकालकर उपद्रवी कार्यों को चेतावनी दें। कानून का घर पूरा करने के लिए यह सब कुछ होता रहे, इसमें कोई हर्ज नहीं। परन्तु रोग का असली इलाज यह है कि उसे मिटाने के लिए कड़वी दवा का प्रयोग एकदम किया जाय। एक भारतीय सेनापति की कमान में भारतीय सेना उस स्थान पर पहुँचकर आक्रमण कार्यों को भारतीय संघ की सीमा के पार हो जाने का एक घण्टे का नोटिस दे, यदि इतने समय में वे लोग सीमा से पार न हो जायें तो उन्हें गोली से उड़ा दिया जाये, ऐसा करने से जहाँ देश की सीमाओं की रक्षा हो जायेगी, वहाँ आगे के लिए देश के शत्रुओं को चेतावनी भी मिल जायेगी, याद भी रहे कि देश की हुकूमत राजदण्ड से नहीं, अपितु राजदण्ड के दबदबे से होती है, और वह दबदबा राजदण्ड के तुरन्त और जोरदार प्रयोग से बिठाया जाता है।"

अर्जुन : ३ सितम्बर १९४७

×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"काश्मीर की रक्षा भारतवासियों का कर्तव्य"

"अब दिशा बिलकुल ही बदल गयी है, हम स्वाधीन हैं, सरकार हमारी अपनी है। देश के प्रत्येक भाग की रक्षा करना देश के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। सरकार ने काश्मीर की रक्षा के लिए जो कदम बढ़ाया है, वह भी इसलिए कि राष्ट्र की ऐसी इच्छा है। देश की जो सेनाएँ काश्मीर में लड़ रही हैं, वे हमारी प्रतिनिधि हैं। काश्मीर की लड़ाई भारतीय राष्ट्र की लड़ाई है। राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि उस लड़ाई में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दे।"

५ नवम्बर, १९४७

×

"काश्मीर का विभाजन"

"अंग्रेज का दिमाग अब भी अपने उसी पुराने शरारत के धन्धों में लगा हुआ है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आये थे, तब हिन्दुस्तानियों की तोड़-फोड़ में लगे हुए थे। जब तक यहाँ रहे फूट ही डालते रहे। और अब जाते समय भी तोड़-फोड़ के बीज बोने में लगे हैं। भारत के बँटवारे का परिणाम तो अभी देशवासी भोग ही रहे हैं कि अंग्रेज सरकार ने अभी एक और विभाजन का प्रस्ताव पेश कर दिया। 'लन्दन टाइम्स' जैसे अखबारों ने प्रस्ताव किया है और भारत के गोरे अखबार उसका अनुमोदन कर रहे हैं कि काश्मीर को दो टुकड़ों में बाँटकर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों देशों को सन्तुष्ट कर दिया जाय। इस प्रस्ताव में उतना ही जहर भरा हुआ है, जितना भारत-विभाजन में मिला हुआ था।

डर है कि कहीं युद्ध की दिक्कतों से घबराकर अंग्रेजों की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर या किसी दैवी संदेश से प्रेरित होकर राष्ट्र के संचालक काश्मीर विभाजन के विषैले प्रस्ताव पर अनुकूलता से विचार करने न लग जाये, इसलिए यह सावधानता का सन्देश सुना देना आवश्यक है, यह स्मरण रखना चाहिए कि राज्यों के सुदीर्घ भविष्य का निश्चय छोटी-छोटी घटनाओं के परिणामों से ही हुआ करता है। भारत के प्रधान मन्त्री घोषणा कर चुके हैं कि "हम सारे काश्मीर को मुक्त कराये बिना तलवार मियान में नहीं रखेंगे।"

काश्मीर का प्रश्न जितना विकट था, उतना ही विकट था विस्थापितों का प्रश्न। पंजाब और बंगाल के शरणार्थी जब दिल्ली आये तो दिल्ली के हिन्दुओं का भी खून खौल उठा। यहाँ भी मारकाट शुरू हो गयी। उसे शान्त करने के लिए नेहरूजी और गांधीजी ने जिन नीतियों का आश्रय लिया, अथवा जो उपदेश या वक्तव्य दिये, उनसे इन्द्रजी को सन्तोष नहीं था। आपने बड़ी स्पष्टता से दोनों की आलोचना में कुछ लेख लिखे। उन लेखों के कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं। लेखों के शीर्षक थे—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१) नेहरूजी से निवेदन ।
(२) महात्माजी के दैनिक उपदेश ।
(३) यह खुशामद किसलिए ?
(४) दब्बू नीति से काम न चलेगा ।
(५) साम्प्रदायिकता का बीज नाश ।
(६) विशुद्ध राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता ।

नेहरूजी से निवेदन

"इधर पण्डितजी जो भाषण मोहल्लों में दे रहे हैं, उनमें तरह-तरह की अप्रासंगिक बातों को लाकर मामले को पेचीदा बना रहे हैं । देश में मार-काट बन्द हो, इसके समर्थन में यह कहना कि हिन्दुस्तान हिन्दू-राज नहीं हो सकता असामयिक है । शान्ति की स्थापना तो असंदिग्ध रूप से होनी ही चाहिए । उसके समर्थन में व्याख्यान देते हुए विवादग्रस्त विषयों को उठाना दूरदर्शिता का सूचक नहीं । इसी प्रकार यह युक्ति कि यदि हम छुरेबाजी को बन्द न कर सकें तो हमारे हाथ से एशिया का नेतृत्व निकल जायेगा । उन लोगों के हृदयों तक शायद ही पहुँच सके जो छुरेबाजी करते हैं या दुकानों को लूटते हैं।"

२ अक्टूबर, १९४७

×

"महात्माजी के दैनिक उपदेश"

"स्वयं महात्माजी के लिए भी इन भाषणों का प्रतिदिन अक्षरशः रेडियो पर सुनाया जाना हानिकारक है । महात्माजी सत्य के पुजारी हैं । आम लोग सत्य की जैसी व्याख्या करते हैं, उसके अनुसार जब कोई बात पूरी नहीं होती तो उनके मन में भ्रम पैदा हो जाता है । जिससे श्रद्धा का भाव शिथिल हो जाता है । इस बार दिल्ली में आने के पश्चात् कुछ दिनों तक महात्माजी यही घोषणा करते रहे कि मैं पाकिस्तान जाने के लिए आया हूँ, वहाँ अवश्य जाऊँगा और वहाँ कोई मार देगा तो हँसते-हँसते मर जाऊँगा, महात्माजी की इन घोषणाओं ने पीड़ित पंजाब को बड़ा आश्वासन दिया था । परन्तु आप अब तक पाकिस्तान नहीं गये । इसी प्रकार आपने भाषणों में यह घोषणा की थी कि मैं कुरुक्षेत्र के शिविरवासियों की दशा देखने जाऊँगा, परन्तु आप पानीपत तक ही जा सके । इन बातों में जनता परस्पर विरोध का आभास देखती है । महात्माजी सत्य और अहिंसा की अत्यन्त गहरी और पेचीदा व्याख्या करके जो समाधान करते हैं, वह साधारण लोगों की समझ में नहीं आता । उन कारणों से मेरा निवेदन है कि महात्माजी के प्रतिदिन सामयिक रूप से आनेवाले विचारों को पूर्णरूप से, बिना किसी सम्पादन के प्रचारित करते जाना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महात्माजी के गौरव के लिए हानिकारक है । मैं अपने अविनय और दुस्साहस के लिए क्षमा माँगता हुआ महात्माजी से निवेदन करता हूँ कि वह रेडियो द्वारा अपने दैनिक भाषणों के अक्षरशः प्रचार को रोकने की आज्ञा दे दें । इस देश में या और किसी में तो यह शक्ति नहीं रही कि वह कहकर उनसे कोई बात मनवा सके ।"

२४ नवम्बर, १९४७

×

"यह खुशामद किसलिए ?"

"महात्माजी लगभग दो मास से दैनिक उपदेशों तथा हरिजन के लेखों द्वारा भारत के मुसलमानों से यह विनती कर रहे हैं कि वे पाकिस्तान न जायें, इसके लिए महात्माजी मुसलमानों को तरह-तरह के आश्वासन देते हैं और हिन्दू और सिक्खों को डाँटते-डपटते हैं । यह कार्य भी उसी नीति और मनोवृत्ति के परिणाम हैं, जिसके अनुसार महात्माजी लगभग पचास वर्षों से भारत की साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का यत्न करते रहे हैं । उस नीति और मनोवृत्ति का संक्षिप्त रूप यह है कि हिन्दू-मुसलमानों की एकता भारत के स्वतन्त्र जीवन के लिए अनिवार्य है और क्योंकि हिन्दू देश की स्वतन्त्रता की अभिलाषा रखते हैं, इसलिए मुसलमानों को खुश करना यह उनका कर्तव्य है । हिन्दुओं का कर्तव्य है कि यदि मुसलमान रूठें तो उन्हें मनायें, यदि मुसलमान मारें तो हँसते-हँसते मर जायें, सारांश यह है कि सब कुछ देकर भी मुसलमानों को प्रसन्न रखना । भारत के मुसलमान राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रतिभासम्पन्न थे और अब भी वैसे ही हैं । वे अनायास ही समझ गये कि स्वराज्य के लिए हिन्दुओं को हमारी सख्त जरूरत है । उन्होंने अपनी माँगें खूब बढ़ा दीं, नौकरशाही सरकार ने राष्ट्रीय भारत को परेशान करने के लिए मुसलमानों की महत्वाकांक्षाओं को खूब भड़काया । दोनों चीजों का मिलकर परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक समस्या सुलझने की जगह अधिक-से-अधिक उलझती गयी । अन्त में जो फल निकला, उसका नाम पाकिस्तान है । महात्माजी का एकता का स्वप्न मृगमरीचिका बनकर भारत को गहरे-से-गहरे दलदल में घसीट कर ले गया । एकता हाथ में आने की जगह कोसों दूर निकल गयी ।

खुशामद करके पाकिस्तान जाने की इच्छा रखनेवाले मुसलमानों को भारत में रहने की चेष्टा उसी पुरानी मृगमरीचिका का उत्तरार्द्ध है । ऐसी खुशामदों से मुसलमानों के दिमागों में हवा भरती है । अन्य देशवासियों के दिल टूटते हैं और महात्माजी को तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं को तिरस्कार सहना पड़ता है । व्यक्ति रूप में महात्माजी इतने बड़े हैं कि वे ऐसे तिरस्कार को तिरस्कार नहीं समझते । परन्तु जाति ऐसे तिरस्कार को तिरस्कार ही समझती है । यदि महात्माजी व्यक्ति रूप में इतने बड़े न होते तो कोई झमेला ही नहीं था । उनकी मृगमरीचिकाओं का देश पर इतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ता ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अब तो डर है कि जिस नीति के पहले दौर का फल पाकिस्तान है, उसके दूसरे दौर का परिणाम क्या होगा । जिस नीति की हानियाँ पाकिस्तान की स्थापना से सिद्ध हो चुकी हैं, उसी नीति को आगे जारी रखने से भारत के नगर-नगर और गाँव-गाँव में पाकिस्तान बनने की संभावना है । यह मेरे शब्द यदि कुछ अविनीत हों तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ । परन्तु मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि यह भारत की उस जनता के भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके प्रयत्न से राष्ट्र को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है । महात्माजी और देश के अन्य नेता इन पर गम्भीरता से विचार करेंगे, ऐसी आशा है ।"

५ दिसम्बर १९४७

×

"दब्बू नीति से काम नहीं चलेगा"

"उत्कृष्ट और वीरतापूर्ण नीति का नियम यह है कि बाहर और अन्दर के शत्रुओं का डटकर मुकाबला किया जाय, ताकि वह पहले तो सिर उठा ही न सकें, और यदि सिर उठाने का साहस भी करें तो उसे कुचल दिया जाये । इस प्रकार शत्रुओं के प्रति भयंकर होने पर भी वह नीति अपने हितैषियों और आश्रितों के लिए उदार और सहिष्णु होनी चाहिए । हमारा देश सदियों की दासता के बाद अब स्वाधीन हुआ है—स्वाधीन होने के बाद इसके शासकों के साथ ऐसी बड़ी-बड़ी उलझनें पड़ती जाती हैं, मुसीबत-पर-मुसीबतें आ रही हैं, जिनसे पार होना आसान नहीं । इस परिस्थिति को सम्भालने के लिए राष्ट्र को इन मुसीबतों की महानदी से पार उतारने के लिए आवश्यक है कि हमारी सरकार वीरनीति का अवलम्बन करे । ऐसे कठिन समय में दब्बू नीति से काम नहीं चलेगा । शत्रुओं से नर्मी और हितैषियों से सख्ती का वर्ताव यह कायरता तो है ही, अदूरदर्शिता भी है, वीरता और उदारता का तकाजा यह है कि शत्रुओं के लिए धनुष पर सदा तीर चढ़ा रहे और प्रजा पर सदा पिता की-सी उदार वृत्ति रहे ।

बाहरवालों से दबना और अन्दरवालों को दबाना, दब्बू नीति के ये दो ही रूप हैं । बड़ी चिन्ता की बात होगी, यदि हमारी राष्ट्रीय सरकार दब्बू नीति का आश्रय लेकर वर्तमान संकट में से राष्ट्र को उबारना चाहेगी, संकटों पर हावी होने का केवल यही उपाय है कि राष्ट्रीय सरकार वीर नीति का आश्रय ले, शत्रुओं के लिए नंगी तलवार हाथ में ले और प्रजाजनों तथा हितैषियों से उदारता और प्रेम का व्यवहार करे । यह नीति जहाँ आदर्श की दृष्टि से उत्तम है, वहाँ दूरदर्शिता की दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ है । देश के कर्णधार मेरे इस हित, परन्तु सम्भवतः कुछ कटु निवेदन पर ध्यान देंगे ।"

१४ अप्रैल १९४८

×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"साम्प्रदायिकता का बीज नाश"

"कांग्रेस के नेताओं ने साम्प्रदायिकता से राजीनामा करके जो घातक भूल की थी उसे सारे देश भर ने अनुभव किया था, फिर भी दु:ख की बात है कि राष्ट्र के नेताओं ने देश के वर्तमान महासंकट से पूरी शिक्षा ग्रहण नहीं की। यदि की होती तो वे स्वतन्त्र भारत के प्रस्तावित शासन विधान में साम्प्रदायिकता को स्थान ही न देते, प्रस्तावित विधान में १० वर्षों के लिए साम्प्रदायिकता को अंगीकार कर लिया गया है। १० वर्षों तक मुसलमानों, सिक्खों और दलितों के लिए धारा-सभाओं की कुछ कुर्सियाँ सुरक्षित रखी जायेंगी। विष तो विष ही रहेगा, चाहे आप उसे पीने से पूर्व उसकी बुराइयों पर एक घण्टे तक एक प्रभावशाली व्याख्यान दे दीजिये। व्याख्यान देने के बाद पिया हुआ जहर शरीर पर बुरा असर तो करेगा ही। पहले भी कांग्रेस और उसके नेता साम्प्रदायिकता की बुराइयों और एकता की भलाइयों पर बहुत जोरदार व्याख्यान देते रहे, और लेख लिखते रहे, स्वयं महात्माजी ने जितना साम्प्रदायिक एकता पर लिखा है, शायद ही किसी अन्य विषय पर लिखा हो। तो भी साम्प्रदायिकता घटने की जगह बढ़ती ही गयी—"मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की" की कहावत चरितार्थ होती गयी। कारण यह था कि आप साम्प्रदायिकता को कोसते भी गये और उसे अपनी कार्य नीति का आधार भी बनाते गये, सम्प्रदाय विशेषों के विशेष अधिकार केवल अंग्रेज सरकार ने ही स्वीकार नहीं किये, महात्माजी ने और कांग्रेस ने भी स्वीकार कर लिये और आश्चर्य की बात यह है कि इतने कड़े अनुभव के पश्चात् स्वतन्त्र भारत के विधान में भी उन्हें स्वीकार किया जा रहा है।

स्वतन्त्र भारत को साम्प्रदायिकता के चंगुल से निकाले बगैर हमारे देश के कष्ट दूर नहीं होंगे, और देश साम्प्रदायिकता के चंगुल से तब तक नहीं निकल सकता, जब तक स्वतन्त्र भारत के शासन विधान में से साम्प्रदायिकता को सौ फीसदी नहीं निकाल दिया जाता। इस दृष्टि से मेरी सम्मति है कि विधान परिषद् के सामने विधान का जो मसविदा पेश होनेवाला है, उसमें से साम्प्रदायिकता को सर्वथा निकाल देना चाहिए। जो ज़हर पराधीनता के दिनों में हमारे शरीर को खाता रहा है, उसका नाममात्र भी हमारे राजनैतिक शरीर में नहीं रहना चाहिए। अन्यथा निश्चय है कि वर्तमान संकट से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता, बुराई से एक समझौता करने का परिणाम पाकिस्तान और १९४७ का महान् हत्याकाण्ड हुआ है। यदि दूसरी बार भी वही भूल दोहरायी गयी तो न जाने कौन से दण्ड भोगने पड़ेंगे।"

अर्जुन : ११ मई १९४८

×

विशुद्ध राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता"

"मेरी सम्मति है कि स्वतन्त्र भारत का प्रबन्ध करनेवाले मन्त्रिमण्डल और उसका समर्थन करनेवाले राजनैतिक दल को निम्नलिखित ठहराव व्यवहार रूप में स्वीकार करने चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१) भारतीय संघ किसी अन्य देश का उपनिवेश नहीं रहेगा, वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होगा ।

(२) भारतीय राष्ट्र का निर्माण, भारतीय परम्परा के आधार पर किया जाय ।

(३) स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीयता विशुद्ध हो, उसमें न किसी नागरिक का पक्षपात हो और न रियायत, धर्म अथवा जाति या उनके कारण बनाये कृत्रिम बहुमत या अल्पमत की पूरी तरह उपेक्षा की जाय । देश के प्रत्येक नागरिक के कर्तव्य और अधिकार समान हों ।

(४) यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप में मान लिया जाय कि अपराधियों को दण्ड देना और राष्ट्र की रक्षा के लिए शत्रुओं से लड़ना, शासकों का धर्म है । संसार भर को मालूम हो जाना चाहिए कि भारतीय संघ जहाँ किसी अन्य देश पर आक्रमण करना नहीं चाहता, वहाँ यह भी नहीं सह सकता कि उसकी सीमाओं की ओर कोई आँख उठाकर भी देखे । सारांश यह है कि "क्षात्र धर्म को राष्ट्र धर्म" का प्रधान अंग माना जाय ।

(५) देश में जिस समाजवादी जनतन्त्र शासन की बुनियाद रखी जा रही है, उसकी प्राणपण से रक्षा की जाय । मैंने अपने विचार संक्षिप्त रूप में जनता के सामने रख दिये हैं, आवश्यकता हुई तो फिर विस्तृत विचार रखूँगा ।"

१९ अक्तूबर १९४७

×

श्री इन्द्रजी विशुद्ध राष्ट्रवादी थे । वे कभी हिन्दू सम्प्रदायवादी नहीं बने । किन्तु कांग्रेस सरकार की नीतियों से उन्हें भी विश्वास हो गया कि नेहरू सरकार की नयी नीतियों के कारण हिन्दुओं पर अन्याय हो रहा है ; भारतीय संस्कृति का आधार नष्ट हो रहा है, अंग्रेजियत को बढ़ावा दिया जा रहा है । अपने इन विचारों को प्रकट करते हुए उन्होंने जो लेख लिखे थे, उनमें से कुछ के लेखांश हम यहाँ दे रहे हैं :—

"हिन्दुओं के साथ अन्याय"

"मैं पूछता हूँ, क्या हिन्दू जाति में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो स्वतन्त्र राष्ट्र का शासक बन सकता ? यदि इस प्रश्न का उत्तर नहीं हो तो मान लेना पड़ेगा कि हमारा देश स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है । परन्तु सच्ची बात इससे बिल्कुल ही उलटी है । हिन्दू जाति में भी अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त किये जा सकते थे । शायद नेता लोग भी मेरे इस कथन से असहमत नहीं होंगे । ऐसी दशा में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जब पाकिस्तान का गवर्नर जनरल मिस्टर जिन्ना को बनाया गया तो हिन्दुस्तान का सरदार पटेल या अन्य किसी हिन्दू नेता को क्यों न बनाया गया । हो सकता है, हमारे कर्णधारों ने संसार के सामने हिन्दुओं की विशाल सहृदयता का ढिढोरा पीटने के लिए ही ऐसा किया हो । परन्तु यह बिलकुल व्यर्थ था । हिन्दू जाति जो गुजरी हुई दस सदियों से अपना सब कुछ दूसरों को अर्पण करके अपने विशाल सहृदयता का सिक्का जमा चुकी है, उसे पुराने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कारनामे को फिर से दोहराने की क्या आवश्यकता थी, अब तो संसार को यह दिखाना चाहिए था कि हममें कुछ आत्मसम्मान और आत्मविश्वास भी है। बड़ी लज्जा से यह स्वीकार करना पड़ता है कि स्वतन्त्र भारत के लिये अंग्रेज गवर्नर जनरल की नियुक्ति ने राष्ट्र के आत्मसम्मान को भारी चोट पहुँचायी है। आश्चर्य की बात है कि नेता लोग अपने इस कार्य के परिणामों की पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सके। पाकिस्तान का गवर्नर जनरल एक ऐसा व्यक्ति बना जो कट्टर पाकिस्तानी है और पाकिस्तान की जान है। इससे मुसलमानों के दिल हर्ष से उछल पड़े हैं। दूसरी ओर जिन हिन्दुओं ने देश की स्वाधीनता के नाम पर अगणित बलिदान दिये हों, उनके सिर पर एक विदेशी शासक बिठाया गया है। इस तुलना ने राष्ट्र के सिर पर तुषारपात किया है। १५ अगस्त को मिलनेवाली स्वतन्त्रता उन्हें स्वतन्त्रता-सी मालूम नहीं होगी, इसका परिणाम देश की राजनीति पर बहुत बुरा पड़ेगा। अधिक सम्भावना यह है कि कांग्रेस के बड़े नेताओं की यह भूल कांग्रेस की राजनीतिक शक्ति की जड़ें हिला देगी ?

समझ में नहीं आता कि हिन्दुओं को अपने प्रयत्न का फल भोगने से वंचित क्यों रखा जाय। सदियों के बाद यह अवसर आया है कि हिन्दू अपने को संसार की अन्य उन्नत देश की तरह या जातियों की तरह अनुभव करें। और पृथ्वी पर ऊँचा सिर करके घूम सकें। ईसाई और मुसलमान इस पृथ्वी के अनेक प्रदेशों पर अपना स्वतन्त्र सिर ऊँचा करके चल सकते हैं। हिन्दुओं के लिए केवल एक यही देश है जिसमें पन्द्रह अगस्त के पश्चात् उनका सिर ऊँचा हो सकता है। यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि हमारे राष्ट्र के कई नेता भरसक यत्न कर रहे हैं कि वह सिर ऊँचा उठा न पायें।"

अर्जुन : १२ जुलाई १९४७

×

"हिन्दू-राज की विभीषिका"

"स्वतन्त्र भारत में हिन्दुओं का बहुत बड़ा बहुमत होगा और इसका कारण शासन की बागडोर उनके हाथों में रहेगी, यदि इसे हिन्दू राज कहते हैं तो वह कायम हो चुका है, उसे किसी व्याख्याता के व्याख्यान नहीं उड़ा सकते। स्वतन्त्र भारत के शासन पर हिन्दुत्व की छाप रहेगी, इसमें भी कोई संदेह नहीं। भारत का प्रधान राष्ट्रपति कहलायेगा "कायदे आजम" नहीं। भारत के मुख्यसचिव को प्रधान मन्त्री कहेंगे वजीर-ए-आजम नहीं। इसी प्रकार शासन के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में भारतीयता और हिन्दुत्व की छाप रहेगी। अब इसे कोई रोक नहीं सकता। जो लोग हिन्दू राज्य को जनता के सामने भयानक रूप में पेश कर रहे हैं, वे ऐसा असर डालना चाहते हैं कि हिन्दू राज हिरण्यकश्यपु या अलाउद्दीन खिलजी का-सा राज्य होगा, जिसमें अहिन्दू मार दिये जायेंगे, और यदि जीवित रहेंगे तो उन्हें अपने ढंग पर ईश्वर प्रार्थना करने का अधिकार नहीं होगा। ये सब फिजूल बातें हैं, भारत का विशाल लोकमत स्वाधीनता के पक्ष में है, उसने घोर परिश्रम और बलिदान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के अनन्तर स्वाधीनता प्राप्त की है । साथ ही वह विधान परिषद् द्वारा जनतन्त्र शासन को अंगीकार कर चुका है, ऐसा व्यक्ति पागल ही हो सकता है, जो यह विचार करे कि इस युग के भारतवर्ष में मजहबी हुकूमत कायम हो सकती है । सारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दूजाति ने कभी हिरण्यकश्यपु या अलाउद्दीन खिलजी के ढंग की शासन-सत्ता को अंगीकार नहीं किया, मैंने अब तक किसी समझदार हिन्दू को यह कहते नहीं सुना कि स्वतन्त्र भारत में हिन्दुओं की अत्याचारी हुकूमत बननी चाहिए । उनका तो केवल इतना ही कहना है कि स्वतन्त्र भारत में हिन्दुओं का जो बहुमत है उसके सिर पर अल्प मत की शिलाएँ रखकर कुचला न जाये । हिन्दुओं की जीवन-शक्ति को विकसित होने दिया जाये । उसे राजनैतिक अवसरवादिता के पाँव तले कुचलने की चेष्टा न की जाय । यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है कि कांग्रेस के कुछ नेता इस समय हिन्दू राज की विभीषिका दिखाकर जनता को क्यों डरा रहे हैं, सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश के मुख्य निवासी और भी सदियों की गुलामी के असर से निकले नहीं हैं । जब से भारत में विदेशी हुकूमत का प्रारम्भ हुआ, तब से दो-एक अवसरों को छोड़कर कभी सारे देश पर हिन्दुओं का शासन नहीं हो सका । आज सदियों के बलिदान के पश्चात् यह अवसर आया है । हिन्द देश के वासियों को स्वयं अपने देश का शासन करने का अवसर मिला है, दासता चली गयी परन्तु कुछ लोगों के दिमागों पर से दासता के कारण उत्पन्न मनोवृत्ति नहीं गयी ।"

१४ अक्तूबर १९४७

×

"भारतीय संस्कृति की रक्षा"

"प्रश्न यह है कि भारतीय संस्कृति क्या इतनी कमजोर है कि उसकी रक्षा की जाय ? यदि वह इतनी असमर्थ है कि उसकी रक्षा की जाय तो संसार में ऐसी कौन-सी मानवी शक्ति है, जो उसकी सुरक्षा करेगी । हरेक देश और जाति की अपनी अलग संस्कृति होती है । उसकी रक्षा वह जाति ही करती है, और उस जाति के हाथ में जो राज्य सत्ता हो वह करती है । कई संस्कृतियों को यह सौभाग्य प्राप्त है कि जिनकी रक्षा अनेक राष्ट्र करते हैं ।

उदाहरणार्थ :—बौद्ध, ईसाई या इस्लाम की संस्कृतियों को ही ले लीजिये । इन संस्कृतियों पर यदि संकट आये तो एक ही नहीं, अनेक राष्ट्रों की तलवारें म्यानों से बाहर निकल पड़ती हैं । हिन्दू संस्कृति इस दृष्टि से कुछ निर्बल है, क्योंकि उसका प्रभाव केवल एक देश तक ही सीमित है । परन्तु सन्तोष की बात यह है कि वह एक राष्ट्र के आकार और संख्या में कई राष्ट्रों के बराबर है । यदि वह एक ही राष्ट्र अपनी संस्कृति से प्यार करे और उसकी रक्षा का प्रयत्न करे तो संसार की कोई शक्ति नहीं जो उसका बालबाँका कर सके ।

मेरा राष्ट्र और राष्ट्र के नेताओं से निवेदन है कि वे समय रहते सचेत होकर भारत की उज्जवल संस्कृति को अपनायें । उसके संरक्षण के उपायों पर विचार करें और भारत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के भारी राजमहल की दीवारें उसी नींव पर स्थापित करें। ध्यान रखें कि इसका विकल्प बड़ा ही भयानक है। भारतीय संस्कृति के अभाव में शीघ्र ही वह समय आयेगा कि देश की राजनीति बोल्शेविज्म से ओत-प्रोत हो जायेगी। क्योंकि प्रत्येक देश को कोई-न-कोई नींव अवश्य चाहिए।"

१८ अप्रैल १९४८

×

"अंग्रेज चले गये परन्तु"

"आपको इस तथ्य के अनेक प्रमाण मिल जायेंगे कि अंग्रेज भारत से चले गये तो भी अंग्रेजियत हमारे सिर पर सवार है। भारत की राजधानी दिल्ली की, जिसमें नयी दिल्ली भी शामिल है, सड़कों के नाम अब तक भी उन छोटे-बड़े अंग्रेज अफसरों के नामों पर बने हुए हैं, जिनके काले कारनामों से भारत का गत दो सो वर्षों का इतिहास भरा पड़ा है। मुख्य-मुख्य चौराहों पर भी आपको इंग्लैण्ड के बादशाहों और उनके भेजे गवर्नर जनरलों की मूर्तियाँ दिखायी देंगी। यदि कुछ थोड़ी-सी भारतीय नेताओं की मूर्तियाँ भी हैं तो वे किंग्जार्ज, निकल्सन और हार्डिंग की मूर्तियों के सामने खिलौने ही प्रतीत होती हैं, दिल्ली की म्युनिसपैलिटी के दफ्तर के सामने महात्मा गांधी की जो मूर्ति लगायी है, उसे देखकर लज्जा आती है। क्या अरबों की संख्या में खेलनेवाली सरकार इससे बड़ी और शानदार मूर्ति महात्माजी की नहीं बनवा सकती? उचित तो यह था कि स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् एक वर्ष में ही सड़कों पर से अंग्रेजों के नाम के साइन बोर्ड तथा उनके बुत बड़ी सावधानता से हटाकर कलकत्ता के अजायबघर में रखवा दिये जाते। यह कितनी उपहासास्पद बात मालूम होती है कि दिल्ली के काश्मीरी दरवाजे के बाहर एक छोटे से पार्क पर तिलक पार्क का छोटा-सा साइन बोर्ड लगा हुआ है, और उसके अन्दर जनरल निकल्सन की दानवाकार मूर्ति विराजमान है। ब्रिटेन के प्रति हमारे विराट प्रेम का प्रमाण ब्रिटिश कामनवेल्थ की सदस्यता के रूप में विद्यमान है।

सामान्य रूप से भारत के नागरिकों के लिए यह समझना बहुत कठिन है कि भारत कामनवेल्थ का सदस्य क्यों बना हुआ है। हमारे संविधान का मूल सिद्धान्त इंग्लैण्ड से भिन्न है, हमारी विदेश सम्बन्धी नीति इंग्लैण्ड से मेल नहीं खाती। इंग्लैण्ड और अमरीका एक जान दो शरीर हैं और भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति अमरीका से यदि सर्वथा भिन्न नहीं तो अस्सी फीसदी भिन्न अवश्य है। और सबसे बड़ी बात यह है कि कामनवेल्थ के कई अन्य सदस्य देशों में भारतवासियों के साथ शत्रुओं का-सा व्यवहार किया जाता है। फिर भी हम ब्रिटिश कामनवेल्थ से अपना सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहते। उसके शब्दात्मक कारण कई हो सकते हैं, परन्तु वास्तविक कारण यह है कि अंग्रेज के भारत छोड़ जाने पर भी हमारे मस्तक और हृदय पर उनका अधिकार विद्यमान है। दूसरी पंचवर्षीय योजना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तैयार हो रही है । क्या उसमें अगले पाँच वर्षों में भारत पर से अंग्रेजी और अंग्रेजियत के जादू को उतार देने की कोई निश्चित व्यवस्था न रखी जायेगी ।"

अर्जुन १५ अगस्त १९५६

×

इन्द्रजी को नेहरूजी की परराष्ट्र नीति से भी असंतोष था । वे कामनवेल्थ का पुछल्ला बनना भारत जैसे महान् राष्ट्र के स्वाभिमान के लिए घातक मानते थे । उन्हें यह भी खटकता था कि नेहरूजी हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के शतरंजी खेलों में व्यस्त रहकर देश की समस्याओं को सुलझाने में असफल हो रहे हैं । उनका विश्वास था कि स्व-शासन होने पर भी प्रजा सुखी नहीं है । इन्हीं विषयों पर इन्द्रजी ने जो लेख लिखे थे, उनके कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं :—

"भारत का इंग्लैण्ड से क्या सम्बन्ध हो"

"जबसे भारत के ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ सम्बन्ध रखने की चर्चा छिड़ी है, तबसे सर्वसाधारण भारतवासी चिन्तित हैं । वह अनुभव करते हैं कि भारत की स्वतन्त्रता तभी तक सुरक्षित रह सकती है, जब तक वह राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र रहे, कम-से-कम प्रारम्भ में तो उसे राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र रहना ही चाहिए । उसे कुछ दूर तक अपनी नीति की नौका को अपनी इच्छानुसार खेना चाहिए । किसी दूसरे बड़े के साथ नत्थी होने में खतरा ही रहता है, ब्रिटिश कामनवेल्थ का बेड़ा देखने में बड़ा बेशक है, परन्तु उसके चारों ओर जो तूफानी लहरें उमड़ रही हैं, उन्हें कौन आँखोंवाला नहीं देख सकता ? यूरोप के पेट में जो ज्वालामुखी रूपी लावा खौल रहा है, उसका अनुमान कौन नहीं लगा सकता । अमरीका और यूरोप के प्रतिनिधियों का बार-बार यह चिल्लाना कि युद्ध का कोई खतरा नहीं है और साथ-साथ युद्ध की जोर-शोर से तैयारी करना स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि युद्ध अत्यन्त ही समीप है । एक ओर अमरीका और इंग्लैण्ड और दूसरी ओर रूस का दिन-रात संघर्ष के लिए उद्यत होना मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त समीप आनेवाले संकट का चिह्न है । ऐसे समय में यह विचार करना भी अपने देश के साथ द्रोह करने के समान है, कि भारत को ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ किसी रूप में नत्थी किया जाय ।

जिस कामनवेल्थ के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए भारत को निमन्त्रित किया जा रहा है, उसका हाल यह है कि दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों के साथ घोर अत्याचार हो रहे हैं । और आस्ट्रेलिया अपने यहाँ एशियाटिकों को घुसने नहीं देना चाहता । जिस गिरोह में नैतिक दृष्टि से ऐसी पतित सरकारें विद्यमान हैं, उस गिरोह में सम्मिलित होने के प्रस्ताव पर भी विचार करना देश के लिए अपमानजनक है । पण्डित नेहरू ने ब्रिटिश कामनवेल्थ के सम्मेलन में जाना स्वीकार कर लिया है । इससे भारतवासियों को कोई प्रसन्नता नहीं हुई । नेहरूजी वहाँ के निमन्त्रण को अस्वीकार कर देते तो कितना अच्छा होता । अब भी वे वहाँ जाकर घोषणा कर दें कि भारत किसी भी दल में सम्मिलित नहीं होगा । अपितु स्वतन्त्र रहेगा, तो देशवासियों को इसमें संतोष होगा । अन्यथा मुझे विश्वास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है कि देश में जो नाराजगी की लहर चलेगी, उसे कांग्रेसी हाईकमान भी नहीं रोक सकेगा ।"

अर्जुन : २५ मार्च १९४९

×

"भारत की विदेशनीति और इंग्लैण्ड"

"हम देखते हैं कि काश्मीर के तथा ऐसे ही अन्य पाकिस्तान से सम्बन्ध रखनेवाले झगड़ों में अंग्रेजों का झुकाव भारत के विरुद्ध और पाकिस्तान के पक्ष में रहा है । दुर्भाग्य की बात है कि भारत के प्रधान मन्त्री की सम्मति में भारत किसी अन्य देश के साथ नत्थी न होता हुआ भी, ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना हुआ है और उपनिवेश भी ऐसा कि इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि का हाथ प्रायः भारत के विरुद्ध ही उठता है । भारत के राजनीतिज्ञों के सामने बड़ी विकट समस्या है । देश की वास्तविक सत्ता की बागडोर उस देश के प्रतिनिधियों के हाथ में है, जिसका हृदय हमारे साथ नहीं । यही कारण है कि हमारी कोई समस्या सुलझने में नहीं आती ।"

अर्जुन : १७ अप्रैल १९४८

×

"प्रधान मन्त्री से निवेदन : अब घर की सुध लीजिये"

"अपने राष्ट्र की नौका के कर्णधारों के सामने जो विचार रखने आवश्यक प्रतीत होते हैं, उन्हें समाचार पत्र द्वारा प्रकट कर रहा हूँ । संक्षेप में नेताओं से मेरा निवेदन यह है कि अब आप कुछ समय के लिए बाहर के जगत् की चिन्ताओं से निवृत्त होकर देश की आन्तरिक दशा पर भी ध्यान दीजिये । वह दशा इतनी बिगड़ गयी है कि यदि उसका सुधार न किया गया तो सम्भव है वह बेकाबू हो जाये । जब स्वराज्य की घोषणा हुई थी, तब आप लोगों ने वादा किया था कि अब कोई भी भारतवासी कष्ट नहीं सहेगा । सबके पास खाने को अन्न होगा, पहनने को कपड़े होंगे और रहने को अपना मकान होगा । देशवासियों को यह भी आशा दिलायी गयी थी कि रिश्वतखोरी बन्द हो जायेगी, गरीबों पर अत्याचार नहीं होंगे—और जनता के जीवन का स्तर ऊँचा हो जायेगा । मैं देश के प्रधान मन्त्री और उनके सहयोगियों के सम्मुख यह वस्तुस्थिति रखना चाहता हूँ कि गत १६ महीनों में देश की साधारण और मध्यम श्रेणी की जनता की स्थिति प्रत्येक दृष्टि से बिगड़ी है, सुधरी नहीं । वे अभी स्वतन्त्रता के सुख का उपभोग सिद्धान्त रूप में नहीं कर रहे हैं, व्यावहारिक रूप में नहीं । यदि आप लोग साधारण जनता में मिल-जुलकर देखें तो आप उसमें असन्तोष और निराशा की लहर चलती हुई पायेंगे । वे एक-दूसरे से पूछते हैं—"क्यों भाई इस स्वाधीनता से हमें क्या मिला ? लीडर लोगों को ओहदे मिल गये, और सब प्रकार की सुविधाएँ मिल गयीं, हमें क्या प्राप्त हुआ, हमारी दशा तो पहले से भी बदतर हो गयी ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्भव है हमारे नेता समझते हैं कि जनता की यह भावना सर्वथा निर्मूल है, परन्तु स्मरण रहे कि असन्तोष की आग समूल हो या निर्मूल, यदि उसे बढ़ने दिया जाय तो वह बड़े-से-बड़े साम्राज्यों को जलाकर राख कर देती है। हमारी स्वाधीनता तो अभी बहुत ही कोमल कली के समान है। वह आग तो क्या गर्म हवा के झोकों को भी नहीं सह सकती।"

अर्जुन : २५ जनवरी १९४९

×

"अच्छे शासन की कसौटी प्रजा का सुख"

"सरकार के अनेक प्रयत्न करने पर भी देश में चीजें महँगी हो रही हैं। इस महँगाई का मुख्य कारण देशभर में फैला आर्थिक संकट है, अथवा चोरबाजारी है या ये दोनों ही हैं? इन प्रश्नों का उत्तर अर्थ विशेषज्ञों पर छोड़कर मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि सरकार के अनेक प्रयत्न करने पर भी दिल्ली के बाजार में महँगाई के रोग का प्रकोप बढ़ रहा है। जीवन की प्राय: सभी उपयोगी चीजें महँगी होती जा रही हैं। जिससे नागरिकों का जीवन संकटमय बन रहा है।

दूसरी निर्विवाद बात यह है कि शहर में अपराध बढ़ रहे हैं। चोरी, डाकाजनी, मार-पीट और बलात्कार के मामलों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यदि इनके कारण शहर में अधिक हलचल नहीं होती तो इसका यह निमित्त नहीं कि इनकी संख्या कम है, प्रत्युत यह निमित्त है कि लोगों को बड़े-से-बड़े जुर्मों के सुनने और सहने की आदत-सी पड़ गयी है। यह किसी जाति के लिए शुभ लक्षण नहीं कि उसमें अपराधों के प्रति उपेक्षा के भाव पैदा हो जायें, दिल्ली में यह भाव निरन्तर बढ़ रहा है। कानून का हाथ निर्बल हो गया है, जिससे अपराध करनेवालों के मन में यह बात उत्पन्न हो गयी है कि दिल्ली में रहने के लिए कानून का पालन आवश्यक नहीं।"

अर्जुन, १९ जुलाई, १९४८

×

स्वाधीन भारत के शासकों की शासन नीति से इन्द्रजी को सन्तोष नहीं था। स्वतन्त्र विचारक होने के नाते वह उसकी परख करते रहते थे और सफलता के उपायों पर भी प्रकाश डालते रहते थे। अगले कुछ लेखांशों में हम स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारत की अवस्था पर उनके विवेचन का सारांश दे रहे हैं :—

"स्वाधीनता की कसौटी"

"स्वाधीनता की घोषणा हो जाने पर भी चार चीजें ऐसी थीं, जिन्हें हम स्वाधीन भारत में पराधीनता के अवशेष कह सकते थे। वे चीजें निम्नलिखित थीं—

(१) भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश स्वीकार करना।

(२) भारत के गवर्नर पद पर एक अंग्रेज का आरूढ़ होना।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) भारत को सरकारी तौर पर 'इण्डिया'' इस अंग्रेजी शब्द से निर्दिष्ट करना और—

(४) स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी को सर्वमान्य सरकारी भाषा का पद प्राप्त होना।

इनमें से दासता के पहले अवशेष—ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्धित का निपटारा तो स्वतन्त्र भारत का नया शासन विधान बन जाने पर ही होगा। इसमें किसी व्यक्ति को सन्देह नहीं होना चाहिए कि भारत का लगभग १०० फी सदी लोकमत चाहता है कि स्वतन्त्र भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनकर न रहे। प्रत्युत उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता हो, जिससे वह ब्रिटेन या अन्य किसी भी राज्य के समकक्ष बनकर खड़ा हो सके।

आज हमारे कुछ नेता और विद्वान् अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षण-पद्धति के समर्थन में व्याख्यान देते और रिपोर्ट प्रकाशित करते दिखायी देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि केवल राजनीतिक दासता के दूर होने से मानसिक दासता नष्ट नहीं हुई। वह हमारी नस-नस में ऐसी व्याप्त हो गयी है कि, इसे निकालने के लिए शायद एक और क्रान्ति की आवश्यकता होगी। भारतीय राष्ट्र ने अपने शरीर को पा लिया है, परन्तु प्रतीत होता है कि उसने अभी अपनी आत्मा को नहीं पाया। याद रहे कि जिस राष्ट्र ने अपनी आत्मा को नहीं पाया, उसकी शारीरिक स्वाधीनता चिरकाल तक कायम नहीं रह सकती।''

अर्जुन, ७ मई १९४८

×

"अभी तो हमारा स्वराज्य कच्चे घड़े की तरह नाजुक है"

"यह प्रश्न अत्यन्त उचित और सामयिक है कि क्या जिन विशेष साधनों से हमने स्वाधीनता प्राप्त की थी, उनके निर्बल अथवा विलीन हो जाने पर भी इस संकटपूर्ण काल में हम अपने स्वतन्त्र जनतन्त्र की रक्षा कर सकेंगे ?

जिन विशेष साधनों से हमने स्वाधीनता प्राप्त की थी, उनको हम पाँच शीर्षकों के रूप में नीचे ला सकते हैं।

(१) राष्ट्रीयता की उग्र भावना।
(२) राष्ट्रीय एकता।
(३) भारतीय संस्कृति का जागरण।
(४) राष्ट्रभाषा का प्रयोग तथा
(५) विलासिता का परित्याग और सादा जीवन का ग्रहण।

भारत के युग-युगान्तरों के इतिहास के अध्ययन से हमारे मन पर यह सत्य दृढ़ता से अंकित हो जाता है कि कोई राष्ट्र अपनी नींव से अलग होकर चिरकाल तक हरा-भरा नहीं रह सकता। यवनों के (यूनानियों के) आक्रमणों का उत्तर देनेवाला तेजस्वी नेता एक सर्वत्यागी ब्राह्मण था। जो ऋषि-मुनियों की परम्पराओं को स्थापित करनेवाला था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हूणों और शकों को मार भगानेवाले वीर विक्रमादित्यों को जिस काल ने जन्म दिया था, वह प्राचीन भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान काल था ।

अमेरिका का राष्ट्रपति अपने भाषणों में ईश्वर का नाम ले ले तो कोई बात नहीं, परन्तु यदि कोई भारतीय नेता अपने भाषण में ईश्वर का नाम ले ले तो उसे भ्रान्त व्यक्ति समझा जायेगा । जिम्मेदार लोग सोचने लगेंगे कि उसे आगामी चुनाव में टिकट दिया जाय या नहीं ।

जिस सादे और तपोमय जीवन ने हमें स्वाधीनता दी, खेद की बात है कि दस वर्षों में हमने उसे अपने से दूर फेंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी । इस समय हमारी जो नाजुक आर्थिक परिस्थिति है, उसका मुख्य कारण शासन के और शासन से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों का बेतहाशा व्यय है । जो सज्जन देश की स्वाधीनता के लिए फकीर बन गये थे, वे आज स्वाधीन भारत की गाड़ी को चलाने के लिए प्रभूत वेतन और भत्ते और बेहद टीपटाप का रखना आवश्यक समझते हैं । यथा राजा तथा प्रजा—बड़े अधिकारियों की देखा-देखी छोटे अधिकारी और छोटे अधिकारियों की देखादेखी कर्मचारी और उनकी देखा-देखी सामान्य प्रजाजन धीरे-धीरे धन लिप्सा, विलासिता और आमोद-प्रमोद के जीवन की ओर अधिकाधिक झुकते जा रहे हैं ।"

अर्जुन : १ मार्च १९५९

×

"राष्ट्रीय गाना कौन-सा है"

"हमारी स्वाधीनता के संग्राम का इतिहास "वन्दे मातरम्" के जीवनदायी स्वर के साथ ओत-प्रोत है । जब तक स्वाधीनता नहीं मिली थी, हम बन्दे मातरम् का आदर करते थे, उसे राष्ट्रीय गीत मानते थे, उसके गाने के समय सभी खड़े होते थे । अब स्वाधीनता मिल जाने पर हम सन्देह में पड़ गये हैं कि "वन्दे मातरम्" गीत अच्छा भी है या नहीं । कहीं वह साम्प्रदायिक तो नहीं है । उसका स्वर विदेशियों को भाता है या नहीं ? कहीं मुसलमान उसको सुनकर नाराज तो नहीं हो जायेंगे । यह मनुष्य प्रकृति की विशेषता है कि वह उपकारों को बहुत ही शीघ्र भूल जाती है । भारत के स्वाधीनता संग्राम को वन्दे-मातरम् के गान से जो प्रेरणा मिली, उसे हम इतनी शीघ्र भूल गये और जिस गान को अंग्रेजी सरकार की गोलियाँ हमसे न छीन सकीं, उसे बहुत छोटे दर्जे के खोखले कारणों से हम स्वयं त्यागने की बात सोचने लगे । वन्दे मातरम् के स्थान पर जिस "जन गण मन अधिनायक" वाले गीत को राष्ट्रीय गीत बनाने का प्रस्ताव किया जा रहा है, उसका प्रारम्भिक इतिहास बहुत कम लोगों को मालूम है । यह गीत बना था जब इंग्लैण्ड का युव-राज भारत में आया था । उसके स्वागत के लिए ही इस गीत की रचना हुई । संस्कृत जाननेवाले व्यक्ति बहुत आसानी से समझ सकते हैं कि यह गीत न तो भारत के सम्बन्ध में है और नहीं इसमें भारत का सम्बोधन किसी अच्छे भाव से किया गया है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

असली कारण यह है कि हमारे कुछ नेता उन गिनती के विगड़े दिमागों को सन्तुष्ट करने के लिए वन्दे मातरम् को बलि करना चाहते हैं, जो भारतवर्ष की हिन्दी, देवनागरी, वन्दे मातरम् और ऐसे ही अन्य भारतीयता के चिह्नों से विरोध रखते हैं। उन नेताओं को स्मरण रखना चाहिए कि जिन्हें वे सन्तुष्ट करना चाहते हैं, वे तब तक सन्तुष्ट न होंगे जबतक कि आप देश की बागडोर उनके हाथों में न दे दें।"

अर्जुन : ६ नवम्बर १९४८

—:०:—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परिशिष्ट

संस्मरण और श्रद्धांजलि

श्री सम्पूर्णानन्दजी

दिनांक ५ मई, १९६५ ई०

स्वर्गीय श्री इन्द्र विद्यालंकार से मेरा परिचय कई सालों का रहा है और इस बीच मुझे उनसे कई बार मिलने का अवसर मिला है। कई मंचों पर, जैसे गुरुकुल के उत्सवों और कांग्रेस की बैठकों में उनकी वक्तृताओं को सुनने का भी सौभाग्य हुआ है। मेरा उनका कभी कोई बहुत अन्तरंग या निकट का सम्पर्क नहीं रहा, परन्तु मैं उनकी विद्वत्ता, देश प्रेम और व्यापक दृष्टि से सदैव प्रभावित रहा हूँ। कभी-कभी विद्वत्ता के साथ मनुष्य के स्वभाव में कुछ रुक्षता आ जाती है। मैंने इन्द्रजी को इस दोष से सर्वथा मुक्त पाया। उनके निधन से आर्य समाज और उससे सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं को तो बहुत गहरी हानि हुई ही, हमारे सार्वजनिक जीवन को भी बहुत क्षति पहुँची। उनकी स्मृति को स्थायित्व देने का प्रयास सर्वथा स्तुत्य है।

सम्पूर्णानन्द
राज्यपाल, राजस्थान।

×

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

'अर्जुन' दैनिक ने अपने ही साइज में अपना रविवारीय विशेष संस्करण प्रकाशित करना आरम्भ किया, तो उसका टाइटिल पेज पीले रंग का होता था। उस चिकने-पीले कागज पर देश-विदेश के किसी विशेष पुरुष का जीवन-परिचय रहता था। हिन्दी की संस्मरण कला तब उभर कर अपना नया रूप ले ही रही थी और मैं हिन्दी पत्रों का एक व्यापक पाठक था—साधारण-से-असाधारण तक सब पत्रों का पाठक, तो उन जीवन-परिचयों की ओर मेरा ध्यान एकदम गया। ये जीवन-परिचय प्रायः 'अर्जुन' के सम्पादक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के लिखे होते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन जीवन परिचयों में घटनाओं का क्रम-विकास ऐसा गजब का होता था कि जीवन का फूल खिलता चला जाता था। मुझ पर लेखक बनने का भूत सवार हो चुका था और मैं आश्चर्य से सोचा करता था कि इनके पास हर आदमी की इतनी अधिक और क्रमबद्ध जानकारी कहाँ से आती है ? इस जिज्ञासा और आश्चर्य के रूप में इन्द्रजी से मेरा पहला परिचय हुआ।

यह १९२६-२७ की बात है शायद, पर मैंने उन्हें पहली बार देखा पद-ग्रहण के सम्बन्ध में कांग्रेस द्वारा आयोजित दिल्ली कन्वेंशन में। इन्द्रजी उसके स्वागताध्यक्ष थे। लम्बा कद, भरी छरहरी देह, कुरता-धोती का वेश, नंगे सिर और गले में साफा-सात्विक और प्रभावशाली व्यक्तित्व। यह १९३६ की बात है।

१९२६ और १९३६ के बीच की एक और बात हुई। १९३२ के सत्याग्रह-आन्दोलन में मैं जेल गया, तो बी क्लास के कारण मुझे भी फैजाबाद जेल में रहने का सौभाग्य मिला। वहीं किसी से लेकर पढ़ी उनकी पुस्तक 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण।' कहने को तो सचमुच इतिहास की प्रामाणिक पुस्तक है, पर इतनी सरल, इतनी सजीव कि निश्चित रूप से एक कलाकृति। पढ़कर मन मुग्ध हो गया और एक श्रेष्ठ लेखक के रूप में मेरे मन पर उनका प्रभाव अंकित हो गया।

इन प्रभावों के साथ एक और भी प्रभाव आरम्भ में ही मेरे मन पर पड़ा। वह था उनके अग्रलेखों का। 'अर्जुन' के १।।–१।।। कालम में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर उनके अग्रलेख होते। इतने स्पष्ट और समझाऊ कि पढ़कर अज्ञ भी विशेषज्ञ का अभिमान कर सके। 'अर्जुन' की एक और बात भी मुझे प्रभावित करती थी कि सार्वजनिक जीवन के सम्बन्ध में मैं कोई बात लिखता, तो तुरन्त उस पर कार्यवाही हो जाती थी। एक बार तो मेरे पत्र के आधार पर उन्होंने एक साम्प्रदायिक प्रश्न पर सम्पादकीय टिप्पणी भी लिख दी थी।

इस प्रकार बिना किसी विशेष जानकारी के मेरे मन पर उनके व्यक्तित्व का जो चित्र अंकित हो गया था, उसमें एक श्रेष्ठ लेखक, श्रेष्ठ पत्रकार और श्रेष्ठ व्यक्ति के गाढ़े रंग थे। १९४४ तक मेरा उनका यही अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा।

धधकते ज्वालामुखी में भी शीतल

जयपुर-हिन्दी -साहित्य-सम्मेलन के सभापति का चुनाव हुआ, तो वे भी उम्मीदवार थे। सम्मेलन के महन्त श्री एन०सी० मेहता आई०सी०एस० को सभापति चुनवाने पर तुले हुए थे, पर १९४२ की क्रान्ति के ठण्ढे पड़ जाने पर भी उसकी गरमी शेष थी। इसलिए जनसाधारण किसी राष्ट्रीय साहित्यकार को चुनने के पक्ष में था। खूब कन्वेसिंग हुई, खूब भागदौड़ हुई। एक-एक वोट पर ध्यान रखा गया और सब मत-पत्र सम्मेलन कार्यालय में पहुँच गये !

उन्हें गिनने के लिए तीन आदमियों की जो समिति बनी, उसमें श्री आनन्द कौशल्यायन भी थे। वह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मन्त्री थे और समिति की पत्रिका 'राष्ट्रभाषा'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के सम्पादक भी । उन दिनों वे सम्मेलन के अतिथि-भवन में ठहरे हुए थे और समय की बात वहीं ठहरे हुए थे तेजस्वी पत्रकार श्री विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी' !

वोटों की गिनती कर कौशल्यायनजी अतिथि भवन लौटे, तो तरंगीजी से कहा—"हमें 'राष्ट्रभाषा' के लिए इन्द्रजी पर एक जीवन-परिचय चाहिए । आप तो उनसे परिचित हैं । क्या आप लिख देंगे ?"

'तरंगीजी' महाघाघ पत्रकार । उन्होंने जीवन परिचय लिखने का वायदा किया और बिना कौशल्यायनजी को सूचना दिये, तुरन्त डाकघर पहुँच, दिल्ली के दैनिकों को तार खड़खड़ा दिया—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति सम्मेलन के सभापति चुने गये हैं ।

बात अभी गुप्त थी और कौशल्यायनजी ने उस गुप्तता की पूरी तरह रक्षा की थी, पर प्रवीण पत्रकार ने अपनी अनुमानचातुरी से उसका भण्डाफोड़ कर दिया था । यह एक साधारण बात थी, पर यह तब असाधारण हो गई, जब दूसरे ही दिन दिल्ली के पत्रों में इन्द्रजी के सभापति चुने जाने की खबर छपी और सम्मेलन-कार्यालय से रातभर की उथल-पुथल के बाद उसी दिन श्री मेहता के सभापति चुने जाने की घोषणा हुई ।

क्या हुआ यह स्पष्ट था, पर उसे पचाना मेरे गरम खून के लिए असम्भव था । मैंने पत्रों और साहित्यिकों को उसी दिन छपाकर एक वक्तव्य भेजा कि यदि सम्मेलन के महन्त जन-जन द्वारा निर्वाचित इन्द्रजी को सभापति नहीं मानते, तो मैं सम्मेलन-भवन में अमुक तारीख से आमरण अनशन आरम्भ करूँगा ।

महन्तों की नादिरशाही से जनता का मन उद्विग्न था, इसलिए सबको यह वक्तव्य अपना ही लगा और पत्रों में एक सनसनीदार आन्दोलन आरम्भ हो गया । इसी समय मैं पहली बार इन्द्रजी से मिला । उन्होंने मेरे साहसी कदम की प्रशंसा की, पर मुझ पर इस बात का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा कि इन घड़ियों में भी वे पूरी तरह शान्त-सन्तुलित थे और घण्टों साथ रहने पर भी उन्होंने कोई शब्द ऐसा नहीं कहा, जिसे किसी तरह भी तीखा या गरम कहा जा सके !

मैं अनशन की निश्चित तिथि से एक सप्ताह पूर्व प्रयाग जा पहुँचा और तैयारियाँ आरम्भ कर दीं । वातावरण बहुत पैना था । जहाँ सम्मेलन के कर्णधार इस पर तुले हुए थे कि मुझे सम्मेलन-भवन की सीमा में नहीं घुसने देंगे, वहाँ दूसरे प्रभावशाली लोग इस पर तुले हुए थे कि मुझे ४-५ हजार आदमियों के जुलूस के साथ सम्मेलन-भवन पहुँचायेंगे और किसी भी बाधा को तोड़ फेंकेंगे ।

इस ज्वालामुखी उष्णता में इन्द्रजी ने ऐसी वर्षा की कि चारों ओर हिमपात की ठंडक छा गई । उन्होंने अनशन से तीन दिन पूर्व पत्रों में यह वक्तव्य प्रकाशित करा दिया कि 'यदि मुझे सभापति बनाने के लिए एक घण्टा भी अनशन किया गया, तो मेरे लिए वह पद रक्तरंजित हो जायेगा और उस पर बैठने की इच्छा मैं करूँ, तो मेरी आत्मा मुझे धिक्कारेगी। सम्मेलन के सभापति पद से मैं स्वयं पृथक् हो गया हूँ और प्रभाकरजी से अनुरोध करता हूँ कि वे अनशन का विचार त्याग दें ।'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजी ने अनशन का आधार ही समाप्त कर दिया था। मैं लौट आया और दिल्ली में इन्द्रजी से मिला। मेरी सूचना थी कि यह वक्तव्य उन्होंने महन्तों के हाथ-पैर जोड़ने पर दिया था, जिन्होंने उनके हाथ वह नादिरशाही बरती थी। मैंने बारम्बार यह बात उनसे पूछी। वह हँसते रहे, पर उन्होंने भूलकर भी हाँ न की। वे कितने गम्भीर थे, कितने विश्वसनीय !

इस घटना के बाद मैं उनका आत्मीय हो गया था और मुझे बहुत बार उनके साथ मिलने और मन की बातें करने के अवसर मिले थे। वह स्पष्ट थे, खरे थे, सरस थे, सरल थे। उनसे मिलकर बुद्धि को स्पष्टता और मन को चिकनाई मिलती थी। असल में वह अपनी पीढ़ी के श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे।

दिल्ली की वृद्धत्रयी

दिल्ली की राजनीतिक वृद्धत्रयी थी—सर्वश्री हकीम अजमल खाँ, डाक्टर अंसारी और स्वामी श्रद्धानन्द। इन्होंने नवयुग के बीज बोये थे। इसके बाद की वृद्धत्रयी थी—सर्वश्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, बैरिस्टर आसफ अली और देशबन्धु गुप्त। इन्द्रजी अपनी त्रयी में अपने राजनीतिक ज्ञान, अपनी देश-सेवा, समाज-सेवा और चरित्र के कारण सीनियर थे, पर राजनीति की भागदौड़ में वह जूनियर हो गये थे। यह इसलिए कि वह धक्का देकर आगे बढ़ने को और किसी के हिज मास्टरस् वायस बनने को अनुचित समझते थे। उनमें सत्य, शिव, औचित्य और मर्यादा के पूर्ण भाव थे।

मैंने बहुत बार उनके मन को उलट-पलट कर देखा था कि क्या अपने को राजनीतिक पद पर न पा, वे अपनी असफलता अनुभव करते हैं ? पर असफलता का असन्तोष या रोष मुझे कभी उनके मन के किसी कोने में नहीं मिला। वे अपने जीवन से सन्तुष्ट थे, अपने में परिपूर्ण थे, अपने साहित्यिक कार्य का महत्व अनुभव करते थे और इसीलिए कोई-न-कोई अच्छी रचना करते रहते थे।

सरलता और व्यवस्था नीति

मेरे द्वारा सम्पादित 'नया जीवन' में गुरुकुल कांगड़ी की निर्माणशाला का विज्ञापन छपता था। उसी बीच एक नैतिक प्रश्न को लेकर मैंने एक टिप्पणी में गुरुकुल की आलोचना की। कुछ दिन बाद विज्ञापन बन्द हो गया, पर उस आलोचना के कारण ऐसा हुआ, इस बात पर मेरा ध्यान नहीं गया। कोई डेढ़ साल बाद मैंने इन्द्रजी को लिखा कि क्या 'नया-जीवन' को गुरुकुल का विज्ञापन और विकास प्रेस को छपाई का कार्य मिल सकता है ? वे तब गुरुकुल के वायसचांसलर थे।

उन्होंने गुरुकुल के अधिकारी से इस सम्बन्ध में पूछा तो उसने उन्हें लिखा कि इन्होंने अपने पत्र में गुरुकुल की आलोचना लिखी थी, इसलिए श्री···ने विज्ञापन बन्द कर दिया था। इस स्थिति में इन्हें विज्ञापन या छपाई का काम देना उचित नहीं है। इन्द्रजी ने वह पत्र ही मुझे भेज दिया और लिखा कि श्री···तो आपके मित्र हैं। आप उन्हें एक पत्र लिख दें, तो नाराजी दूर हो जायगी, काम तो मिलेगा ही, मुझे प्रसन्नता भी होगी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस बात से मुझ पर इन्द्रजी की सरलता का प्रभाव तो पड़ा ही, पर उनकी व्यवस्था नीति का परिचय भी मुझे मिला कि वे अपने मातहतों की स्वतंत्रता में दखल देना उचित न समझते थे और उनसे कोई काम कराना भी हो, तो उन पर अपना प्रभाव डालकर नहीं, स्वयं उनका ही मन अनुकूल बनाकर कराते थे ।

सोचते हैं, करते कुछ नहीं

प्रधान मन्त्री नेहरूजी गुरुकुल के विज्ञान-भवन का उद्घाटन करने जा रहे थे । इन्द्रजी उनका स्वागत करने सहारनपुर आये, तो उनका साथ मिला । वह लेटे हुए थे और श्री दीनदयालु शास्त्री एम० एल० ए० मुझसे बात कर रहे थे । मैंने पूछा—"शास्त्रीजी, आप एम०एल०ए० होने के कारण लखनऊ रहते हैं और बड़ों से मिलते हैं । मैं धरती का कार्यकर्ता हूँ और देख रहा हूँ कि कांग्रेस का महान् संगठन मौत के रास्ते जा रहा है । क्या कांग्रेस के बड़े भी इस बात को मानते हैं और इस बारे में सोचते हैं ?"

शास्त्रीजी बोले—"राज्यों में तो इस मसले पर सोचनेवाले अब रहे नहीं, हाँ, केन्द्र में कुछ लोग हैं, जो इस मसले पर सोचते हैं ।"

इन्द्रजी लेटे-ही-लेटे बोले—"प्रभाकरजी, केन्द्र के वे लोग भी कभी-कभी इस मसले पर बस सोचते ही हैं, पर करते कुछ नहीं ।"

हम सब लोग हँस पड़े, पर इन्द्रजी पूरी तरह गम्भीर थे । कौन जानता था कि मेरी उनकी यही अन्तिम मुलाकात है ?

कन्हैयालाल मिश्र
'प्रभाकर'

× × ×

श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय

"आर्य समाज की दूसरी पीढ़ी में श्री प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति का बहुत बड़ा स्थान है । धार्मिक जीवन की महत्ता तथा वैदिक-साहित्य के लिए श्रद्धा श्री इन्द्रजी की पैतृक-सम्पत्ति थी ।

श्री प्रो०इन्द्रजी को मैं जानता तो बहुत काल से था । मगर मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध उस समय हुआ, जब मैं सार्वदेशिक सभा का मन्त्री रहा और वे उपप्रधान तथा प्रधान रहे । पण्डितजी गुरुकुल कांगड़ी रूपी महावृक्ष के पहले फल थे । फल ही नहीं मूल भी थे । उन्हीं को लेकर तो महात्मा मुंशीरामजी ने गुरुकुल की नींव डाली । और अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरुकुल में प्रवेश कराया । महात्मा मुंशीरामजी ने जब अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल में प्रवेश कराया होगा उस समय वैदिक धर्म और आर्य समाज के विषय में उनकी उदात्त भावनाएँ क्या रही होंगी, उसकी कल्पना पाठकगण सुगमता से कर सकते हैं । मैं गुरुकुल के उद्घाटन के अवसर पर कांगड़ी गया था । हम लोगों ने उस युग के उत्साहपूर्ण लेखों को पढ़ा और वक्ताओं को सुना है । वह मेरे मस्तिष्क में अब भी गूँज रही हैं । ६४ वर्ष बीत गये । समय गुजर गया ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री पण्डित इन्द्रजी की एक विशेषता का मैंने अनुभव किया है । यदि कभी जटिल समस्याएँ उपस्थित हो जाती थीं तो वे कोई सीधा मार्ग खोज निकालते थे । वह हर एक काम बहुत बड़े पैमाने पर करना चाहते थे । यह शायद उन्होंने अपने पिताजी से सीखा होगा । श्री इन्द्रजी का जीवन सबके लिये प्रेरणादायी था ।"

गंगाप्रसाद उपाध्याय

× × ×

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

ब्रह्मचारी इन्द्रजी के साथ गुरुकुल कांगड़ी में मेरी बातें हो रही थीं । इस वार्तालाप का विषय "इन्द्रदेवता और उसकी युद्ध की तैयारी" था । गुरुकुल में हम दूसरे मंजिल के कमरे में बैठे थे । दोपहर को तीन बजे का समय था । इतने में पुलिस ने गुरुकुल को घेर लिया । कम-से-कम तीस चालीस तो पुलिसमैन होंगे । वे गुरुकुल के चारों ओर खड़े रहे और एक सिपाही गुरुकुल में आकर पूछने लगा कि "पं० सातवलेकर को कलेक्टर साहब ने बुलाया है ।" अर्थात् वे मुझे पकड़ने के लिए आये और मैं भाग न जाऊँ इस-लिए चारों ओर पुलिस के सिपाही खड़े थे ।

मैं ब्रह्मचारी इन्द्रजी के साथ वेद विषय पर बात कर रहा था । इतने में मुझे कहा गया कि, मुझे बुला रहे हैं । मैं नीचे गया तो मालूम हुआ कि सिपाही मुझे पकड़ने के लिए आये हैं ।

मुझे पकड़ने के लिए पुलिस पार्टी आ गयी है, यह बात जब गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्म-चारियों ने जान ली, तब वे सब ब्रह्मचारी इकट्ठे हुए और पुकार-पुकार कर कहने लगे कि "हम पण्डितजी को पकड़ने नहीं देंगे ।"

तब मैंने सबको कहा कि मैं उनके स्वाधीन हो जाता हूँ, आप कुछ न कीजिये । सबने यह मान लिया और वे सब अपने स्थान पर चले गये । मैं इन्द्रजी को नमस्ते करके पुलिस के साथ कलेक्टर के पास चला । कलेक्टर का मुकाम उस समय कांगड़ी के जंगल में तम्बू में था ।

कलेक्टर ने मेरा नाम वगैरह जो पूछना चाहा, वह सब पूछ लिया और मुझे पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। वहाँ से मुझे बिजनौर के जेल में एक महीना पर्यन्त पाँव में लोहे की जंजीरें डालकर रखा और वहाँ से मुझे कोल्हापुर में पुलिस के पहरे में रेल से भेजा ।

पूना के स्टेशन पर जब मुझे साथी पुलिस ने रेल में बिठलाया, तब कई विद्यार्थी जो उसी गाड़ी से जानेवाले थे, स्टेशन पर आकर गाड़ी में बैठ गये । उनको मेरे साथवाले उत्तर-भारतीय पुलिस ने मना किया और कहा 'मुल्जिम' बिठलाया है, वहाँ न बैठो । यह पुलिस का कहना उन विद्यार्थियों के समझ में नहीं आया और उनमें झगड़ा हुआ । उन विद्यार्थियों में से एक ने पुलिस को मारा, एक को जमीन पर गिराया और उसके छाती पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बैठ गया। तब मैंने उनको कहा कि मैं कैदी हूँ और मुझे ले जाने के लिए यह पुलिस आयी है, इनसे तुम न झगड़ो। ऐसा कहने से सब शान्त हुए और रेल चलने लगी।

मुझे साल भर कोल्हापुर की जेल में रखा और निर्दोष करके छोड़ दिया। निर्दोष मनुष्य को एक वर्ष जेल में रहना पड़ा। यह न्याय की रीति है।

कोल्हापुर के मासिक पत्र में मैंने एक लेख "वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता" नाम से लिखा था। इस लेख के छापने के कारण ही सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक को साढ़े तीन वर्ष की सख्त सजा हुई थी। परन्तु मैं केवल एक वर्ष में ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सका। इसका कारण यह था कि संपादक महाशय ने अपने साक्षी में कहा था कि इनके लेख में हमने कुछ फेरफार करके लेख छापा था। इस कारण मैं छूट गया। मैं छूटते ही गुरुकुल कांगड़ी पहुँचा। वहाँ पण्डित इन्द्र ने कहा "सम्पादक के कहने से आपका छुटकारा हुआ यह हमारा आनन्द बढ़ानेवाला वृत्त नहीं है"। अर्थात् पण्डित इन्द्र की इच्छा यह थी कि मैं कोर्ट में कहता कि, लेख सब मेरा जैसा था वैसा छापा है। इस कारण सब मेरा जिम्मा है। पर ऐसा नहीं हुआ। इसलिए ब्रह्मचारी इन्द्रजी नाराज हुए।

इससे पता लग सकता है कि ब्रह्मचारी इन्द्रजी के राजकीय विचार कैसे थे।

× × ×

श्री धर्मपालजी

पण्डितजी के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ उस समय आया जब कि उनकी धर्म-पत्नी विद्यावतीजी का स्वर्गवास हुआ। बच्चे छोटे थे। पण्डितजी का जीवन सार्वजनिक जीवन बन चुका था। बचपन से रहनेवाली स्थायी बीमारियों के कारण स्वास्थ्य व शारीरिक स्थिति ऐसी थी नहीं कि बिना किसी दूसरे व्यक्ति की सतर्क सेवा व देख-रेख के जीवन की रक्षा होती। पण्डितजी सार्वदेशिक आदि सभाओं के मन्त्री भी थे। विरोध तो था ही। मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ जब कि पण्डितजी ने मेरी सम्मति को व्यावहारिक मान कर अपना साथी चुनने का निश्चय कर लिया। अनुभव ने सिद्ध किया कि सती सावित्री के समान भाभीजी द्वारा सेवा किये जाने के कारण ही वे अपने आगामी ३५ वर्ष सुखपूर्वक दीर्घ जीवन प्राप्त कर सके। भाभीजी ने सब भार स्वतः ही अपने ऊपर ले लिया। इतना होने पर भी समय-समय पर पण्डितजी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही रहता था। इसलिए घर लौट आने पर भी देहली बार-बार आना-जाना पड़ता ही था। 'अर्जुन' के मैनेंजिग डायरे-क्टरों में मैं सम्मिलित कर ही लिया गया था। उन दिनों भाभीजी की तबीयत भी खराब हो गयी। निश्चय हुआ कि किसी पहाड़ पर इन्तजाम किया जाय। सोलन का स्थान चुना गया। १५-२० दिन ठहरना पड़ा। एक कोठी ली गयी जो रेलवे लाइन के पास मोड़ पर थी। बाजार से इस स्थान पर जाने के लिए एक छोटी पहाड़ी को लाँघना पड़ता था। पुष्पा साल, डेढ़ साल की होगी—उसे भी लाते, ले जाते थे। आर्थिक कठिनाई, बीमारी तथा अन्य प्रेस की परेशानियों आदि के होने पर भी पण्डितजी का परमात्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर इतना दृढ़ विश्वास था कि वे विचलित नहीं होते थे । यह देखने में आया कि उनके सामने जब-जब कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, उनका उपाय अचानक ही हो जाता था । "अर्जुन" की समस्या भी इसी प्रकार स्वयमेव हल होती रही ।

सम्भवतः सन् १९५१ अथवा १९५२ के कन्या गुरुकुल हाथरस के वार्षिकोत्सव पर आर्य सम्मेलन में मेरे निवेदन पर पण्डित इन्द्रजी ने आना स्वीकार किया । जब वे नहीं पहुँचे तो चिन्ता हुई । ऐसा कभी न हुआ था । जब मालूम किया तो पता चला कि पण्डितजी के फ्रेक्चर हो गया है । मैं देहली में 'खेड़ा' के हॉस्पिटल में पहुँचा । स्तब्ध रह गया ! पण्डितजी के मुँह पर किसी प्रकार का कष्ट नहीं देखा । जब उन्होंने सारी घटना सुनायी तो उनकी स्थिर चित्तता का प्रमाण मिला । अपने मकान में फिसलकर गिर जाने पर भी वे वैसे ही पड़े रहे जैसा कि फिसलने पर गिर गये थे । किसी को भी उठाने आदि कार्य के लिए उन्होंने मना कर दिया, जब तक कि डाक्टर ने आकर ठीक प्रकार से उनको न उठाया । हॉस्पिटल में उनके पाँव की हड्डी को छेद कर ऊपर सहारे से टाँग दिया गया था । हड्डी को छेदना कितना कष्टकर था । बेहोश करना उचित न था, इसलिए बिना बेहोश किये टाँग में से छिद्र करके धातु का धागा निकाला गया । परन्तु उन्होंने उफ तक नहीं की । यह धैर्य देखने योग्य ही था । पण्डितजी के धैर्य, सावधानी तथा कष्ट सहन के सामर्थ्य के कारण उनके टाँग में और चलने-फिरने में किसी प्रकार का विकार नहीं आ पाया ।

पण्डितजी प्रथम बार पार्लियामेण्ट के सदस्य हुए, तब लखनऊ में सैकड़ों आदमियों का जमघट था । पण्डितजी, उनकी धर्मपत्नी तथा मैं माननीय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, जो कि उस समय उत्तर प्रदेश की विधान सभा के स्पीकर थे, उनके पास पचबंगलिया के एक बँगले में पहुँचे । वहाँ भारी भीड़ थी । सैकड़ों उम्मीदवार उनके मकान को घेरे खड़े थे । हम लोग भी एक वृक्ष के नीचे अलहदा जा खड़े हुए और सोचा कि इस तमाशे से तो यही अच्छा है कि वापस लौट चलें । क्या होगा । रेलवे में रिजर्वेशन हो गया था । इतने में टण्डनजी बाहर आये । उन्होंने खड़े देखा तो पूछा कि आप यहाँ कैसे खड़े हैं ? जब उन्हें मालूम हुआ कि हम पार्लियामेण्ट की सदस्यता के सम्बन्ध में बुलाये गये हैं और आज रात्रि की गाड़ी से ही बिना कुछ बातचीत किये ही देहली वापस जा रहे हैं तो उन्होंने कहा कि आप आज न जायें, मेरी प्रतीक्षा करें । हम आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के नारायण स्वामी भवन में लौट रहे थे कि रास्ते में टण्डनजी कार से आये और रास्ते में रोककर आग्रह किया कि रात्रि को न जायें । रात को टंडनजी ने सभा भवन में आकर सूचना दी कि आप पार्लियामेंण्ट की मेम्बरी के लिए फार्म भर दें । परन्तु कठिनाई यह हुई कि पण्डितजी का नाम यू० पी० की मतदाताओं की लिस्ट में न था । तार से बातचीत हो रही थी । ठीक दूसरे दिन १२ बजे कलकत्ते से 'सेन' महोदय से लिस्ट में नाम अंकित किये जाने की स्वीकृति मिल गयी और इस प्रकार अचानक ही समस्या हल हो गयी ।

दूसरी बार पार्लियामेण्ट में जाने का अवसर उस समय हुआ जब कि उनकी टाँग में फ्रेक्चर हो चुका था । यद्यपि बहुत कुछ टाँग ठीक हो गयी थी, तब भी लखनऊ में स्पेशल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्तजाम करना पड़ा और दुबारा नोमिनेशन भी हो गया । पण्डितजी का ईश्वर पर दृढ़ विश्वास था, वैसा ही हुआ । कुछ कठिनाई भी न हुई ।

इसके बाद पण्डितजी ने मुझे गुरुकुल कांगड़ी में बुला लिया । पण्डितजी ने गुरुकुल आने के लिए गुरुकुल के एक अधिकारी द्वारा मुझे गुरुकुल पहुँच जाने का सन्देश भेजा । मेरे गुरुकुल न आ सकने की बात का जब पण्डितजी को ज्ञान हुआ तो उन्होंने पत्र लिखकर आने के लिए आज्ञा भेज दी । पण्डितजी की आज्ञा के विरुद्ध विचार कर ही नहीं सकता था—अब उन सब परिस्थितियों और समस्याओं का यहाँ उल्लेख करना उचित नहीं, जो गुरुकुल में उत्पन्न हो गयी थीं । इतना ही कहना काफी है कि आन्तरिक संघर्ष रहने पर भी यदि पण्डितजी गुरुकुल की उन समस्याओं का समाधान धैर्यपूर्वक न कर पाते तो यह कहना कठिन है कि गुरुकुल पर उसका क्या परिणाम होता ।

इस बीच पण्डितजी जब-जब रोगी होते, मैं आता-जाता रहा । पण्डितजी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिर रहा था। सन् १९५९ में पण्डितजी का स्वास्थ्य एकदम बहुत गिर गया, तार आया । गुरुकुल की आब-हवा उनके अनुकूल नहीं रही । गुरुकुल में ही उन्हें बुखार आने लगा । उन्हें दिल्ली ले गये—जब उनकी तबीयत ज्यादा खराब हुई तो डा० बेरी के परामर्श पर २५ मई को "सेन" के नर्सिंग होम में प्रविष्ट करा दिया । कुछ बेहोशी थी । तापमान १०६ तक हो गया था और श्वास कष्ट से चल रहा था, हम लोगों का दिल बैठा जा रहा था। हॉस्पिटल में ले जाने से पहले पण्डितजी आश्वासन देते थे कि आप लोग घबराएँ नहीं, मैं अवश्य स्वस्थ हो जाऊँगा। हॉस्पिटल के डाक्टरों के प्रयत्न से, पण्डितजी के अटल विश्वास से और परमात्मा की कृपा से उचित उपचार के कारण उनका टेम्परेचर १०२ तक आ गया और श्वास-प्रश्वास ठीक हो गया। २८ मई को भारत सरकार के शिक्षा विभाग का एक पैनल गुरुकुल आ रहा था, जिसने गुरुकुल के लिए मैण्टीनैंस ग्राण्ट देने का निश्चय करना था । इससे सम्बन्धित सब कागजात भी मैं अपने साथ देहली ले गया था । पण्डितजी की बीमारी से सभी चिन्तित थे और मैं देहली में ही ठहरना चाहता था । २६ तारीख की प्रातःकाल जब मैं उन्हें देखने गया तो इशारे से बुलाकर धीमे से कहा कि तुम्हें अवश्य गुरुकुल चले जाना चाहिए, कमीशन आ रहा है । मेरी चिन्ता न करें । मैं स्वस्थ हो जाऊँगा । मेरे संकोच को देखकर उन्होंने तसल्ली दी और गुरुकुल लौट आने की आज्ञा दे दी—और क्या करता । जीवन इतना संकटमय होने पर भी गुरुकुल उनके जीवन में रम गया था—वह और 'गुरुकुल' एक हो गये थे—एक थे । अन्त समय तक पण्डितजी ने स्वर्गीय श्रद्धानन्दजी के आरम्भ किये कार्यों को पूर्ण करने में अपने जीवन को लगा दिया—उनका जीवन सार्थक हो गया ।"

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मान्यवर्येन्द्रप्रशस्तिः

(समर्पकः--श्री धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः ज्वालापुरम्)

गम्भीरो, प्रतिभान्वितो गुणगणैर्योऽभूत्सदा भूषितो
धीरो यो न जहौ धृतिं सुविषमे, प्राप्तेऽपि कालेऽ शुभे ।
निर्भीको भुवनेऽखिले सुविदितः सम्पादको योऽभवत्
श्रीमानिन्द्र महोदयो गुणिवरो वन्द्यःसतामग्रणीः ।।

राष्ट्रीयोज्ज्वलभावनां मनसि यः शुद्धे सदाऽधारयत्,
सेहे कष्टमनेकधा प्रमुदितः, कारासुतत्प्रेरितः ।
स्वातन्त्र्यं स्वमवाप्तुमेव सतते, यो यत्नशीलोऽभवत्,
श्रीमानिन्द्रमहोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

साहित्यं विबुधैः प्रशंसिततमं, यो निर्ममे स्फूर्तिदं,
शैली यस्य बुधां वरस्य सततं, सर्वानुकृत्याऽभवत् ।
सेवां धर्मसमाजराष्ट्र सहितो, चक्रेऽनिशं यः सुधीः
श्रीमानिन्द्रमहोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

प्रत्युत्पन्नमतिर्विपत्तिहरणेऽन्येषां सदैवोद्यतः ।
संकोचेन विना सुपीडितजनैः, सूपायनो योऽभवत् ।
औदार्येण युतः परोपकार करणे, रात्रिन्दिनंतत्परः
श्रीमानिन्द्रमहोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

निष्ठा भारत संस्कृतौ सुविमला यस्याचला चाभवत्,
तस्याश्चारु सदा प्रचार करणे, लेखादिभि स्तत्परः ।
शिक्षानीतिविशारदेषु विबुधो लेभेवरेण्यं पदं
श्रीमानिन्द्रमहोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

वैदुष्यं सुरभारतीविषयकं, यस्याभिनन्द्यंमहत्,
ऐतिह्यं शुभ भारतस्य सुमतिर्यो वैलिलेखाद्भुतम् ।
हिन्दीकोविदसत्तमः शुभकवि;, सत्पत्रकारोत्तमः
श्रीमानिन्द्र महोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लेभे स्वीयगुणैः प्रतिष्ठित पदं, क्षेत्रेषु सर्वेषुयो
योग्यत्वं समवेक्ष्य राष्ट्रपतिभिः, सम्मानितो यो भृशम् ।
आसीत्सद्गुणसागरोऽपि सुकृती, दर्पेण हीनोऽमलः ।
श्रीमानिन्द्रमहोदयो गुणिवरो वन्द्यः सतामग्रणीः ।।

विनयावनतो
धर्मदेवः (विद्यामार्तण्डः)
देवमुनिर्वानप्रस्थः

आनन्दकुटीरम्
ज्वालापुरम्
१८–८–१९६५

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य इन्द्र विद्यावाचस्पति की "जीवन-ज्योति"

डा० हरिशंकर शर्मा डी० लिट्०

श्री आचार्य इन्द्र विद्या-वाचस्पति शुचिता-साधक थे,
वैदिक धर्म-विधायक थे, वे मातृ-भूमि-आराधक थे।
पण्डितजी का उज्जवल जीवन सबको शिक्षा-दायक था,
गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति का वह सक्रिय सबल सहायक था।

वाणी और लेखनी ने नित भद्र भाव बरसाए थे,
करणी ने भी कर्म वीरता के प्रिय पाठ पढ़ाए थे।
वेद-शास्त्र-निष्णात सुधी, सद्धर्म्म-प्रचारक पण्डित थे,
सद्गुण-गरिमा अथवा वैदिक महिमा से वे मण्डित थे।

मानवता की मंजु मूर्ति वे शान्ति-क्रान्ति-उन्नायक थे,
दयानन्द ऋषि के अनुयायी, देश-जाति के नायक थे।
हिन्दी की सेवा करने में सदा अग्रणी कहलाए,
'पत्रकारिता में पारंगत हो आदर्श उच्च भाए।

ग्रन्थों की रचना करने में, पूर्ण सफलता पायी थी,
सूक्ष्म भावनाओं की गति-विधि क्षमता से समझायी थी।
भारतीय भावों का सौरभ दूर-दूर तक फैलाया,
विश्व-बन्धुता की महिमा का दिव्य दृश्य नित दिखलाया।

आर्य जगत् तो सदा आपको 'नेता' कह गर्वाता था,
समय-समय पर निश्चय ही वह 'मार्ग-प्रदर्शन' पाता था।
विश्व-वन्द्य गांधीजी जब कल्याण अर्थ आगे आये,
सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह सिद्धान्त सभी को समझाए।

पण्डित इन्द्र बड़ी श्रद्धा से 'बापू' के सद्भक्त रहे,
उनके आदेशों-उपदेशों से सदैव अनुरक्त रहे।
राजनीति में रमे, राष्ट्र हित संकट-कष्ट सहे भारी,
हुआ 'स्वराज्य' बने तब वे 'संसद-सदस्य' सद्गुण धारी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सफल संघटन कर्त्ता-धर्ता, सज्जन, सुबुध, सुधारक थे,
निर्भयता से भव्य भावनाओं के प्रबल प्रचारक थे।
दिल्ली की जनता का जब हिन्दी से न नाता था,
अंग्रेजी-उर्दू आदिक का ही रस-रंग सुहाता था।

ऐसे युग में पण्डितजी ने हिन्दी पत्र निकाले थे,
जिनका प्रचुर प्रचार हुआ था, भाव-प्रभाव निराले थे।
'पत्रकारिता' का जीवन ऊँचा, आदर्श महान रहा,
निर्भय हो निष्पक्ष लेख लिखने में अति अभिमान रहा।

त्याग तपस्या-मूर्ति धन्य श्री श्रद्धानन्द महान् हुए,
धर्म-वीरता, ध्रुवता की वर वेदी पर बलिदान हुए।
वही प्रतापी पिता आपके 'अमर शहीद' सुनेता थे,
भारतीयता के वर वैभव, वैदिक प्राण-प्रणेता थे।

विद्वद्वर मर्मज्ञ इन्द्रजी राष्ट्र-धर्म-संलग्न रहे,
जन-जनता की सेवा करने में ही सदा निमग्न रहे।
ऐसे महा मानवों का भौतिक शरीर मिट जाता है,
पर, आदर्श चरित्र जगत् में जीवन-ज्योति जगाता है।

—:०:—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA